Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
029469
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

Stock Verification-2004

Stock Verification-2004

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

अदिति

सह

भारत माता

साठवीं कला

श्रीअरविन्दके सिद्धि-दिवस, २४ नवंबर १९५७ के उपलक्ष्य में

आश्रमके बच्चोंके साथ श्रीमाताजीकी बातचीत

(धारावाहिक–३)

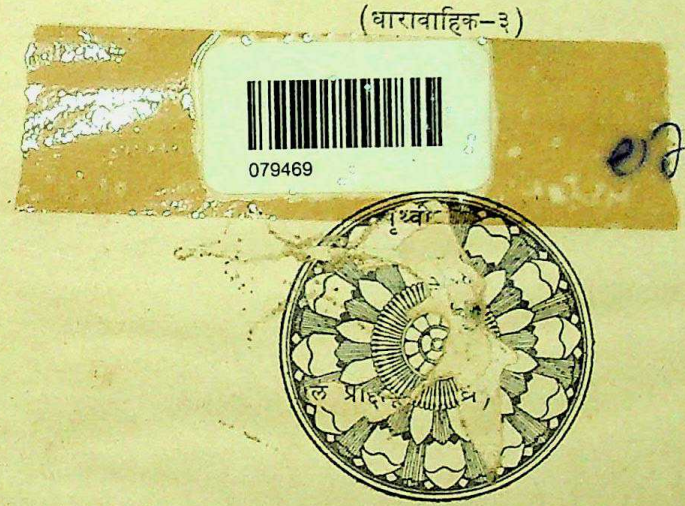
079469

अदिति कार्यालय, श्रीअरविन्द आश्रम
पांडिचेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४ नवंबर १९५७

अतिमानव कौन है? वह है जो जड़-तत्त्वपर ही केंद्रित, सबसे पृथक् इस मनोमय मानवी सत्तासे ऊपर उठ सकता हो और भागवत शक्ति, भागवत प्रेम और आनंद तथा भागवत ज्ञानको प्राप्त करके विराट् दिव्य पुरुष बन सकता हो।

यदि तू इस सीमाबद्ध मानुषी अहंको बनाये रखे और फिर अपनेको अति-मानव समझे तो तू अपने ही मिथ्याभिमानका मूर्ख दास है, अपनी ही व्यक्तिगत शक्तिके हाथोंका खिलौना है और अपनी ही भूल-भ्रांतियोंका यंत्र है।

—श्रीअरविंद

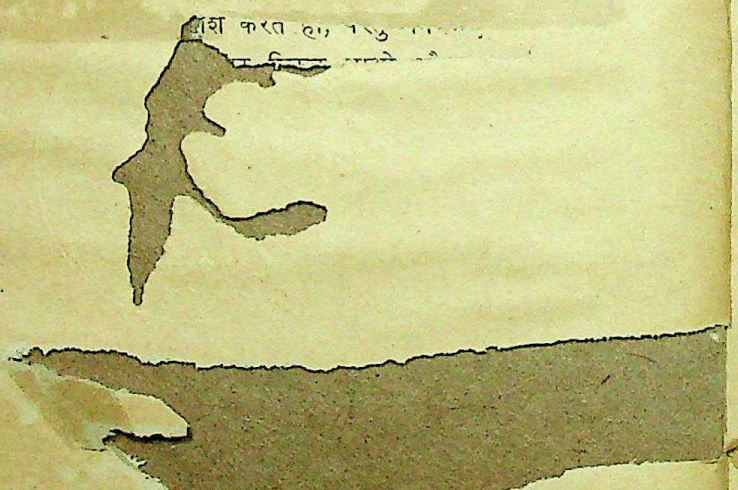

प्रबन्ध-संपादक, श्रीकेशवदेव पोद्दार (३२ राम [illegible], फाट, बम्बई) तथा श्री श्यामसुन्दर झनझुनवाला (४/१ क्लाईड रो, कलकत्ता–२२); प्रकाशक, श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर (एस० एन० संडरसन एण्ड क०, कनाट सरकस, नई देहली)।

Le Directeur: Haradhan Bakshi, Imprimerie de Sri Aurobindo Ashram, Pondichéry.
931/57/10/1009

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

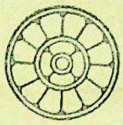

Let your life be
a sincere search for the
Truth and it will be
worth living

30-4-57

अपने जीवनको सत्यकी सच्ची [illegible] परिणत कर दो और वह जीनेके योग्य बन जायगा।

३०.९.५७ —श्रीमां

(श्रीअरविंद सर्किल प्रोद्दातूर (आंध्र) के सातवें वार्षिकोत्सवके लिये लिखित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशीर्वाद-वचन

३० सितंबर १९५७

श्रीअरविन्दके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेका इससे अच्छा उपाय और कोई नहीं है कि उनकी शिक्षाकी सजीव अभिव्यक्ति बना जाय।

—श्रीमां

*

२ अक्तूबर १९५७

जो केवल स्थूल आंखोंसे ही देखते हैं उनके लिये यह विजय तबतक प्रत्यक्ष नहीं हो सकती जबतक कि वह सर्वांगपूर्ण रूपमें अर्थात् भौतिक न बन जाय।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"शाश्वत जन्म"

प्रश्न—आपने श्रीअरविन्दके जन्मको विश्वके इतिहासमें 'शाश्वत' कहा था। यहां 'शाश्वत' शब्दका ठीक-ठीक अर्थ क्या है?

उत्तर—इस वाक्यको चेतनाके चार क्रमोन्नत स्तरोंपर चार अलग-अलग रूपोंमें समझा जा सकता है:

(१) भौतिक रूपमें—इस जन्मके परिणामोंका महत्त्व संसारके लिये शाश्वत होगा।

(२) मानसिक रूपमें—यह एक ऐसा जन्म है जो विश्वके इतिहासमें शाश्वत रूपसे स्मरण किया जायगा।

(३) आंतरात्मिक रूपमें—यह एक ऐसा जन्म है जो पृथ्वीपर युग-युगमें निरंतर हुआ करता है।

(४) आ[illegible]र शाश्वत भगवान्‌का जन्म है।

—श्रीमाताजी

"समर्पणका अर्थ क्या है?"

समर्पणका अर्थ है संपूर्ण रूपसे श्रीमाताजीके हाथोंमें आ जाना, और अहंकार या अन्य किसी चीजके द्वारा किसी रूपमें उनकी ज्योति, ज्ञान, संकल्प तथा उनकी शक्तिकी क्रिया आदिका विरोध न करना।

३१.८.१९३३

—श्रीअरविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रश्न

प्रश्न—आपने कहा है कि हमें "अतिमानसिक शक्तियोंके प्रकंपनोंके साथ एक घनिष्ठ, सतत, अखंड और अनिवार्य एकत्व" स्थापित करना चाहिये। इस प्रकंपनको अनुभव करनेकी क्षमता कोई कैसे आयत्त कर सकता है? क्या अतिमानसिक अभिव्यक्तिके फलस्वरूप जो एक नया जगत् उत्पन्न हुआ है और नयी जागतिक परिस्थितियां पैदा हुई हैं उनके साथ-साथ साधनाकी पद्धतिमें भी परिवर्तन आया है? नयी परिस्थितियोंमें अपनी उन्नतिमें तेजी ले आनेके लिये साधकको क्या करना चाहिये?

उत्तर—हां, साधनामें एक महान् परिवर्तन घटित हुआ है, क्योंकि अब यह स्वयं भौतिक स्तरमें ही चल रही है और यहीं तुम्हें इसे करना है।

भौतिक रूपांतरपर अपना ध्यान एकाग्र करो; भौतिकसे मेरा मतलब है मानसिक, प्राणिक और शारीर चेतना।

तुम अपने मनमें अनुभव प्राप्त करनेकी कोशिश करते हो, परंतु मनमें ऐसी क्षमता नहीं है कि वह इसे प्राप्त कर सके। अपने मनसे बाहर निकल आओ और तब मैं जो कुछ कहती हूं उसे समझने लगोगे।

—श्रीमां

"सच्ची अभीप्साका ठीक-ठीक अर्थ क्या है?"

ऐसी अभीप्सा जिसमें कोई स्वार्थपूर्ण और अहंकारमय लेखा-जोखा शामिल न हो।

१२. १. १९३४

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रमके बच्चोंके साथ

श्रीमाताजीकी बातचीत

(१५ अगस्त १९५७ के अंकसे आगे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

अदिति सह भारत माता, २४ नवंबर १९५७

१. आशीर्वाद-वचन iv

२. शाश्वत जन्म v

३. एक प्रश्न vi

४. आश्रमके बच्चोंके साथ श्रीमाताजीकी बातचीत–भाग २

(१) खंड २ १४५

(२) खंड ३ १६२

(३) खंड ४ २०४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

विचार और विचार-शक्ति

सृजनकारी विचार

मनुष्यका विचार सर्वदा मानसिक जगत्‌में रूपोंका निर्माण करता है। यह एक सृष्टि करनेवाली शक्ति है। तुम निरंतर विचारमय आकारोंकी सृष्टि कर रहे हो और उन्हें अपने चारों ओरके वातावरणमें फैला रहे हो। वे आकार अपना काम करनेके लिये बाहर निकल जाया करते हैं। तुम स्वयं भी बराबर ऐसी रचनाओंसे घिरे रहते हो। निःसंदेह कुछ लोग ऐसे होते हैं जो स्पष्ट रूपमें विचार नहीं कर सकते; वे अपने चारों ओर केवल एक प्रकारका भंवर उत्पन्न करते हैं। परंतु जो लोग स्पष्ट और प्रबल रूपमें विचार करते हैं वे विचारमय रूपोंका सृजन करते हैं जो अपना कार्य पूरा करनेके लिये बाहर निकल जाते हैं और जब उनका पुनः चिंतन किया जाता है तब वे वापस आ जाते हैं। ऐसे लोग भी हैं जो अपनी ही रचनाओंद्वारा सताये जाते हैं। वे रचनाएं मानो उन्हें अभिभूत करनेके लिये उनके पास आती हैं या उनपर आक्रमण करती हैं और वे उनसे छुटकारा पानेमें असमर्थ होते हैं। वे यह नहीं जानते कि एक बार अपने बनाये हुए आकारको कैसे बिगाड़ा जा सकता है। जब तुम कोई विशिष्ट प्रबल आकार बना लेते हो तब वह सदा ही तुम्हारे साथ जुड़ा रहता है; वह बार-बार वापस आता और तुम्हारे मस्तकसे टकराता है तथा शक्ति आहरण करता है। अंतमें वह तुम्हारी एक आवश्यकता बन जाता है। इस विषय-में रहस्योंका एक बड़ासा संसार ही है जिसका ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है। मनुष्य अज्ञान-में रहते हैं; उनमें जो शक्तियां निहित हैं उनके विषयमें वे सर्वथा अनजान हैं या बहुत थोड़ा ही जानते हैं।

बौद्ध लोग, मेरा मतलब उन लोगोंसे है जो अधिक कट्टर परंपराको मानते हैं, भगवान् या किसी शाश्वत सद्वस्तुमें विश्वास नहीं करते; वे देवताओंमें भी विश्वास नहीं करते, अर्थात् उन सत्ताओंको नहीं मानते जो सचमुच दिव्य हैं। परंतु वे अत्यंत अद्‌भुत रूपमें मन और मनकी शक्तिका प्रयोग करना जानते हैं; बौद्ध-मतकी साधना मनुष्यको उसके मनोमय यंत्रका स्वामी बना देती है। एक बार बौद्धमतके अनुसार साधना करनेवाला एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति मेरे पास आया और बोला कि मैंने एक प्रयोग किया है। उसने अपने विचारके द्वारा एक सत्ताका निर्माण किया था, उसने महात्मा-जैसी एक सत्ताका सृजन किया था। वह यह जानता था और यह एक प्रमाणित तथ्य है कि कुछ दिनोंके बाद ये मानसिक रचनाएं व्यक्तिगत जीवन यापन करना आरंभ कर देती हैं, अपने जन्मदातासे स्वतंत्र होकर कार्य करने लगती हैं,—वे उसके साथ संबद्ध हो सकती हैं। फिर भी वे एकदम स्वतंत्र होती हैं, अर्थात् उनकी अपनी एक अलग इच्छा होती है। अब उस व्यक्तिको एक भीषण कठिनाईका सामना करना पड़ रहा था। उसने बताया :"आप शायद नहीं जानतीं कि मैंने अपने महात्माकी रचना इतनी अच्छी तरह की है कि वह मुझसे बिलकुल स्वतंत्र एक व्यक्ति बन गया है और निरंतर मुझे परेशान करनेके लिये आता है। वह आता है, एक-न-एक बातके लिये मुझे डांटता है, चाहे जिस किसी विषयपर मुझे सलाह देता है और पूर्ण रूपसे मेरे जीवनपर अधिकार जमाना चाहता है। मैं उससे छुटकारा पानेमें असमर्थ हूं। मेरे लिये यह काम अत्यंत कठिन हो गया है और मैं नहीं समझ पाता कि इस विषयमें मैं क्या करूं, मेरा महात्मा बहुत अधिक दुःखदायी बन गया है। वह मुझे चैनसे नहीं रहने देता। वह मेरे सभी कार्य-कलापोंमें हस्तक्षेप करता है, मुझे मेरा काम नहीं करने देता और फिर भी मैं जानता हूं कि वह मेरी ही सृष्टि है और मैं उसे नष्ट करनेमें असमर्थ हूं।" उसने मुझे समझाया कि कैसे-कैसे उसने उस चीजसे छुट्टी पानेकी कोशिशें कीं। मैंने उसे बतलाया कि उसके असफल होनेका कारण यह था कि उसे उसका ठीक नुस्खा ही नहीं मालूम था। मैंने उसे ठीक प्रक्रिया बतला दी और दूसरे दिन सवेरे वह बहुत प्रसन्न और खिले हुए चेहरेके साथ आया और बोला, "वह विदा हो गया।" वह व्यक्ति संपर्कको नहीं काट पाता था; और फिर संपर्कको काटना ही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि उस हालतमें वह सत्ता पृथक् और स्वतंत्र रूपसे बनी रह जाती है। आवश्यकता इस बातकी है कि जिस चीजको उत्पन्न किया गया हो उसे फिरसे अपने अंदर आत्मसात् कर लिया जाय, जो कुछ बाहर निकाला गया हो उसे निगल लिया जाय।

*
**

विचार और कल्पना

जब तुम किसी मनुष्य या वस्तुकी बात सोचते हो तब तुम तुरत उसके पास पहुंच जाते हो और अपने चिंतनके विषयके संपर्कमें आ जाते हो। परंतु यह संपर्क विचार-जगत्में ही प्राप्त होता है; उस समय तुम उस विषयकी प्राणिक या भौतिक स्थितिके बारेमें कुछ भी नहीं जानते। विचार मानसिक जगत्में केवल विचारके विषयमें ही सचेतन होता है; अपने विचारके द्वारा तुम किसी दूरस्थित विषयके मानसिक वातावरणके, जिस व्यक्तिकी बात तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचते हो उसके विचारोंके विषयमें अवगत हो सकते हो, पर उससे अधिक कुछ नहीं; उसके प्राण या शरीरके संबंधमें तुम एकदम कुछ भी नहीं जान सकते।

यदि तुम प्राणके विषयमें कुछ जानना चाहो तो तुम्हें प्राणिक रूपमें उस वस्तुके पास जाना होगा; इसका मतलब है एक प्रकारसे शरीरसे बाहर निकल जाना जो शरीरको कम-से-कम तीन-चौथाई अंशमें समाधिमें छोड़ देता है। और यदि तुम चीजोंको भौतिक रूपमें देखना चाहो तो तुम्हें अपने अत्यंत भौतिक सूक्ष्म शरीरसे वहां जाना होगा; उस समय शरीर पूर्ण रूपसे एक प्रकारकी मूर्च्छाकी अवस्थामें पड़ा रहता है। ये चीजें तबतक नहीं की जा सकतीं जबतक कि कोई ऐसा व्यक्ति तुम्हारे पास न हो जिसे सच्चा ज्ञान हो और जो तुम्हारी रक्षा कर सकता हो।

परंतु मानसिक रूपसे बाहर निकल जाना बराबर ही होता रहता है। इससे तुम्हें मानसिक जगत्के साथ संपर्क प्राप्त होता रहता है। यदि तुम खूब सचेतन होओ, और जिस व्यक्तिको तुम अपने विचारके अंदर देखते हो वह भी खूब सचेतन हो तो उस समय वह व्यक्ति अपने मनमें जिन विचारों और रायोंको बनायेगा उन्हें तुम जान सकोगे, परंतु फिर भी अप्रत्यक्ष रूपमें ही जानोगे, प्रत्यक्ष रूपमें नहीं।

जब तुम किसी चीजकी कल्पना करते हो तब इसका मतलब है कि तुम एक मानसिक रचना तैयार करते हो जो तुम्हारी रचनाकी क्षमताके अनुसार सत्यके निकट भी हो सकती है या उससे एकदम बहुत दूर भी। कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनमें रचना करनेकी यह शक्ति इतनी अधिक मात्रामें होती है कि जो कुछ वे कल्पना करते हैं उसे चरितार्थ करनेमें भी समर्थ होते हैं। वे किसी चीजकी कल्पना करते हैं और उसको इतना सुगठित आकार प्रदान करते हैं कि उसे भौतिक रूप देनेमें भी सफल हो जाते हैं। वे वास्तवमें 'स्रष्टा' होते हैं। इस तरहके लोग बहुत नहीं होते, पर होते जरूर हैं।

तुम अपने विचारके अंदर किसी मृत व्यक्तिसे भी मिल सकते हो यदि वह मानसिक जगत्में अब भी बना हुआ हो; उसके मनके साथ तुम्हारा संपर्क हो सकता है और वहांके उसके जीवनके विषयमें तुम्हें मानसिक रूपसे एक प्रकारका दर्शन प्राप्त हो सकता है। परंतु वह अगर चैत्य जगत्में चला गया हो तो उसके विषयमें विचार करना ही पर्याप्त नहीं है; तुम्हें यह जानना होगा कि चैत्य जगत्में जाकर किस तरह उससे मिला जा सकता है।

मनकी अपनी निजी दृष्टि-शक्ति है; वह भौतिक आंखोंकी दृष्टि नहीं है; पर फिर भी है वह एक प्रकारकी दृष्टि ही, आकारोंके द्वारा देखना ही। वह कल्पना नहीं है, कल्पना तो एक बिलकुल अलग वृत्ति है। मान लो कि तुम अपने मनमें एक आदर्श व्यक्तिका आकार तैयार करते हो और उसमें अपने आदर्शसंबंधी सभी धारणाओंको आरोपित करते हो। तुम कहते हो कि उसे ऐसा होना चाहिये, उसे वैसा होना चाहिये, उसके विचार ऐसे हों और उसका चरित्र वैसा हो; तुम छोटी-मोटी सभी बातोंको भर देते हो और उस पुरुषका निर्माण करते हो। हां, तो यह काम कल्पनाका है। साहित्यिक मनुष्य, उपन्यास-लेखक बराबर ही इस प्रकारकी रचना करते हैं। निस्संदेह, कुछ लेखक जीवनमेंसे ही चीजोंको चुनते हैं, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे लेखक ऐसे होते हैं जो चीजोंकी कल्पना करते हैं और उन्हें जीवनपर आरोपित करते हैं। वे अपने मस्तिष्कके भीतरसे एक चरित्र, परिस्थितियोंके एक समूह, घटनाओंकी एक समूची शृंखलाका निर्माण करते हैं। और अगर वे शक्तिशाली हों और उनमें पर्याप्त सृजन-शक्ति हो तो यह बिलकुल संभव है कि उनके कल्पित आकार-प्रकारको मूर्त्तिमान् करनेवाली कोई पार्थिव मानव-सत्ता एक दिन वास्तवमें प्रकट हो जाय।

तुम किसी उच्च उद्देश्यके लिये अपनी कल्पना-शक्तिका उपयोग कर सकते हो। उसकी सहायतासे तुम अपना आंतर और बाह्य जीवन नये सिरेसे गढ़ सकते हो। यदि तुम्हें यह मालूम हो कि कल्पना-शक्तिका व्यवहार कैसे किया जाता है और तुममें शक्ति-सामर्थ्य हो तो तुम पूर्ण रूपसे अपने जीवनको गढ़ सकते हो। सच पूछा जाय तो संसारमें चीजोंको उत्पन्न करने और निर्मित करनेकी यह अत्यंत साधारण और प्रारंभिक पद्धति है। मेरी सर्वदा ही यह धारणा रही है कि यदि किसीमें कल्पना करनेकी क्षमता न हो तो वह किसी प्रकारकी प्रगति नहीं कर सकेगा। तुम्हारी कल्पना सदा-सर्वदा तुम्हारे जीवनसे आगे जाती है। जब तुम अपने विषयमें विचार करते हो तब तुम साधारणतया यह कल्पना करते हो कि तुम क्या होना पसंद करोगे—वह पहले आता है अर्थात् तुम्हें पूर्वदर्शन होता है, और तब तुम उसका अनुसरण करते हो; तुम कल्पना करना और उसे संसिद्ध करना, संसिद्ध करना और कल्पना करना जारी रखते हो। कल्पना सिद्धिका द्वार खोल देती है। जिन लोगोंमें कल्पना-शक्ति नहीं है उनके लिये चलना बड़ा ही कठिन है। वे बस वही चीज देख पाते हैं जो ठीक उनकी नाकके सामने होती है, वे बस उसी चीजका अनुभव कर पाते हैं जो एक खास मुहूर्त्तमें वहां होती है। वे आगे नहीं बढ़ सकते, वे चलित वर्तमानसे अवरुद्ध होते हैं। कल्पना-शक्ति ही वह चीज है जो ऐसी अवस्थामें पूर्ण परिवर्तन ले आती है।

वैज्ञानिक पुरुषोंमें भी कल्पनाकी एक विशाल शक्ति होती है और होनी ही चाहिये; अन्यथा वे किसी चीजकी खोज ही नहीं कर सकते। कल्पना, सचमुच, वह शक्ति है जिसके द्वारा हम उपलब्ध वस्तुओंसे बाहर अनुपलब्ध वस्तुओंकी ओर अपने-आपको फैला देते हैं और उस फैलनेकी शक्तिके द्वारा ही उन्हें खींच लाते हैं। यह सच है कि एक अग्रगामी और दूसरी पश्चाद्गामी कल्पना भी होती है। कुछ ऐसे लोग होते हैं जो सभी संभवनीय विपत्तियोंकी बराबर कल्पना करते रहते हैं और उनमें उन विपत्तियोंको ले आनेकी भी शक्ति होती है। पर, जो हो, कल्पनाका अपना निजी शुभ उपयोग है। यह मानो एक ऐसे जगत्में मूंछवाले कीड़ोंकी तरह स्पर्शसे ज्ञान प्राप्त करनेवाली अपनी मूंछें भेजती है जो अभीतक ज्ञात न हुआ हो, और वे वहां जाकर कुछ चीजोंको पकड़ लेती हैं और उसे यहां खींच लाती हैं। स्वभावतः ही इसका मतलब होता है पृथ्वीके वातावरणमें कुछ जोड़ देना, ऐसी चीजें जोड़ देना जो अभिव्यक्तिकी ओर अग्रसर होती हैं। अतएव कल्पना एक ऐसी कार्यकारिणी शक्ति है जिसे हम शिक्षित और अनुशासित कर सकते हैं और अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहृत कर सकते हैं। यह उन प्रधान क्षमताओंमेंसे एक है जिन्हें हमें विकसित करना चाहिये और उपयोगम लाने योग्य बनाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहांतक कि तुम भगवान्‌की भी कल्पना कर सकते हो और उनके साथ संपर्क प्राप्त कर सकते हो। निस्संदेह तुम उस वस्तुका संस्पर्श प्राप्त कर लेते हो जिसकी तुम कल्पना करते हो। क्या तुम जानते हो कि तुम ऐसी किसी चीजकी कल्पना नहीं कर सकते जो कहीं भी न हो? वह चीज भले ही यहां पृथ्वीपर न मौजूद हो, पर वह अन्यत्र है और उसे होना ही चाहिये। जैसा कि मेरा कहना है, ऐसी किसी वस्तुकी कल्पना करना असंभव है जो कम-से-कम तत्त्वतः इस विश्वके अंदर विद्यमान न हो। अन्यथा वह वस्तु एक विचारके रूपमें भी नहीं रह सकती।

विश्व विकसनशील है। यानी, यहां निरंतर अधिकाधिक वस्तुएं अभिव्यक्त होती रहती हैं। अब, कल्पना एक शक्ति है जिसकी सहायतासे तुम अभिव्यक्त वस्तुओंके क्षेत्रसे परे चले जाते हो; यदि तुमने इतनी अधिक प्रगति कर ली हो कि तुम अबतक अभिव्यक्त न होनेवाली वस्तुओंकी कल्पना कर सको तो तुम उन वस्तुओंको नीचे उतार लाने और उन्हें साकार सद्वस्तुका अंग बनानेमें सहायता कर सकते हो। स्वभावतः ही, विश्वमें क्या-क्या चीजें नहीं हैं इसकी कल्पना करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये तुम्हें यह जानना होगा कि अभिव्यक्त विश्वके परे कैसे जाया जाता है। और वहां ऐसी बहुत, बहुतसी चीजें हैं।

पार्थिव अभिव्यक्तिके अंदर किसी नयी चीजकी कल्पना करनेके लिये सबसे पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि इस अभिव्यक्तिके परे कैसे जाया जाय। कितने लाखों वर्षोंसे यह पृथ्वी है! कितनी नयी चीजोंका उत्पादन यहां हुआ है? अनगिनत, क्योंकि पृथ्वीपर कोई दो चीजें ठीक एक जैसी नहीं हैं, यद्यपि वे बहुत मिलती-जुलती हो सकती हैं। अपने मनके द्वारा पार्थिव वातावरणसे बाहर निकल जाना आसान काम नहीं है। परंतु तुम यदि वैसा करनेमें सफल हो गये तो तुम्हें विश्वजीवनसे भी बाहर चले जाना होगा। फिर, पृथ्वीपर उसके प्रादुर्भावके आरंभसे लेकर आजतक जो कुछ उत्पन्न हुआ है उस सबके साथ संस्पर्श प्राप्त करनेके लिये तथा उसके बाद उस विश्वके संस्पर्शमें आनेके लिये—जिसका यह पृथ्वी, अपने आरंभसे लेकर आजकी अपनी रचनातक, केवल एक नन्हासा कण ही है—बस इतना ही पर्याप्त नहीं है। तुम्हें और भी परे जाना होगा, विश्वके भी परे, परात्परमें, अनभिव्यक्तमें चले जाना होगा। उसके बाद तुम किसी नयी चीजकी कल्पना करने और उसे अभिव्यक्तिके अंदर तथा पृथ्वीके ऊपर उतार लानेकी बात सोच सकते हो। यह बात नहीं कि ऐसा कोई कर ही नहीं सकता। परंतु ऐसा करना उतना आसान नहीं है।

*
**

काव्य और काव्य-प्रेरणा

मैंने कहा है :"काव्य मनका इंद्रिय-भोग है।" यह कैसे? क्योंकि काव्यका संबंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावनाओंके रूपों और प्रतीकोंके साथ होता है और भावनाओंसे संबंधित रूप, प्रतीक, संवेदन, धारणाएं और हृदयावेग ये सब चीजें इंद्रियभोग्य हैं अथवा, यदि तुम ऐसा कहना पसंद करो तो, ये वस्तुओंका वह पक्ष हैं जो इंद्रियभोग्य होता है। ऐसे सभी संबंध इंद्रियभोग ही होते हैं। और काव्यका संबंध मन और विचारकी इस भावनाके साथ ही होता है। काव्य भावनाओंके जगत्में उनके बाह्य आकारोंकी सहायतासे, उनके इर्दगिर्द लगे हुए इंद्रियानुभवों और हृदयावेगोंकी क्रीड़ाकी सहायतासे पहुंचता है। यह दर्शन या तत्त्वज्ञानकी जैसी कोई चीज नहीं है जो भावनाओंके अंदर ताकनेका प्रयास करते हैं। काव्य, इसके विपरीत, काव्य ही नहीं रह सकता जबतक कि वह भावनाको नहीं जगाता, अर्थात् जबतक वह भावनाको एक आकार, एक इंद्रियभोग्य आकार नहीं प्रदान करता। मैंने एक संक्षिप्त पद इस सत्यको प्रकट करनेके लिये प्रयुक्त किया है और उसे तीक्ष्ण बनानेके लिये प्रबल शब्दतकका चुनाव किया है। लोगोंको इंद्रियपरायण उस समय कहा जाता है जब वे एकदम भौतिक जीवनके इंद्रियानुभवमें ही व्यस्त रहते हैं, भौतिक जगत्के रूपों, रचनाओं और क्रियाओंमें ही संलग्न रहते हैं, जब वे अपनी इंद्रियोंके द्वारा जीवन यापन करते हैं और इंद्रियोंके विषयोंका उपभोग करते हैं। बस वही प्रवृत्ति जब बाहरी जीवन, भौतिक जगत्की ओर जानेके बदले मनके विषयोंके प्रति, भावनाओंके प्रति मुड़ जाती है तब वह काव्यकी सृष्टि करती है। काव्य एक जगत् है जो रूपके सौंदर्य-पक्षके अधीन रहता है। यह भावनाके सौंदर्यको, विचारके छंद-तालकी समस्वरताको प्रकट करता है और इन सबको एक ठोस आकार या प्रतीकात्मक रूप प्रदान करता है; यह प्रतीकोंकी, स्वरोंकी, शब्दोंकी क्रीड़ा बन जाता है। इस तरह जड़-तत्त्वकी इंद्रियपरायणताके स्थानमें हम मनकी इंद्रियपरायणता पाते हैं। मैंने यह शब्द निंदात्मक अर्थमें नहीं प्रयुक्त किया है और न नैतिक अर्थमें ही; यह तो महज एक वर्णन है।

दूसरे शब्दोंमें, मेरा मतलब यह नहीं है कि ऐसी दृष्टि, कवित्वकी दृष्टि आवश्यक रूपसे तुम्हें वस्तुओंके सत्यको देखनेसे रोकती है। यह केवल उस तरीकेका वर्णन है जिससे कवि कविके रूपमें वस्तुओंको देखता है। निस्संदेह, यदि पढ़नेके लिये अच्छी कविताकी पुस्तक और दर्शनशास्त्रकी पुस्तकके बीच चुनाव करनेकी बात हो तो मैं व्यक्तिगत रूपसे कविताको ही पसंद करूंगी। क्योंकि वह कम नीरस होगी! काव्यकी मेरी परिभाषा, मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं, कोई निंदा नहीं है, वह केवल एक वर्णन है, वास्तविक वस्तुका वर्णन है, अर्थात्, काव्य है सत्यके पास इंद्रियपरायणता या इंद्रियभोगके द्वारा पहुंचना। यह शायद अपनी बातको थोड़े-बहुत विरोधाभासके साथ कहना है; पर इसका उद्देश्य है विचारपर आघात करना, उसे उस सद्वस्तुको अनुभव करनेके लिये जागृत करना जो साधारणतया अभ्यासगत, परंपरागत या "प्राचीन" चिंतन-पद्धतिके द्वारा अस्पष्ट-सी बना दी गयी होती है।

अगर अंतःप्रेरणासे तुम्हारा मतलब यह हो कि कवि जब कविता लिखता है तब विचार नहीं करता, अर्थात्, वह समस्त विचारके परे चला जाता है, अपने मनको शांत, नीरव और निश्चल बना देता है, अपने-आपको आंतरिक या उच्चतर क्षेत्रोंकी ओर खोले रखता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०७० ५६१

प्रायः सहज-स्वाभाविक रूपमें लिखता जाता है तो ऐसी बात शायद हजार वर्षोंमें एक बार ही घटित होती है। यह सामान्य घटना नहीं है। हां, योगीमें ऐसा करनेकी शक्ति होती है। परंतु साधारण रूपमें अंतःप्रेरित कविसे तुम्हारा मतलब जो कुछ होता है वह एकदम इससे भिन्न होता है। जिन लोगोंमें किसी प्रकारकी प्रतिभा होती है, जो लोग किन्हीं अन्य और उच्चतर क्षेत्रोंकी ओर कुछ खुले होते हैं उन्हें 'अंतःप्रेरित' कहा जाता है; जिन लोगोंने कोई आविष्कार किया है उन्हें भी उसी श्रेणीमें सम्मिलित किया जाता है। जब कभी तुम्हारा संपर्क सामान्य मानव-चेतनासे उच्चतर किसी लोककी किसी वस्तुके साथ हो जाता है तब तुम 'अंतःप्रेरित' बन जाते हो। और जब तुम पूर्ण रूपसे अत्यंत साधारण स्तरसे बंधे हुए नहीं होते तब तुम ऊपरसे 'प्रेरणाएं' प्राप्त करते ही हो। बस यही बात कविके विषयमें भी घटित होती है। उसकी सृष्टिका मूल साधारण मनसे परे ऊपरके किसी लोकमें होता है; इसके लिये उसके मनको खाली और सूना होनेकी कोई आवश्यकता नहीं।

*
**

दिव्य जीवन

जो कुछ अभी हम नहीं हैं और अभी हम होना चाहते हैं, जो कुछ केवल हमारी की हुई प्रत्येक चीजसे ही नहीं बल्कि भविष्यमें संभवतः हम जो चीजें कर सकेंगे उनमेंसे भी प्रत्येक चीजसे अनंतगुना अधिक ऊंचा प्रतीत होता है, जो कुछ हमारी वर्तमान क्षमता और परिकल्पनाके परे है, उस सबको हम सर्वदा "दिव्य" नामसे ही पुकारते हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि हम कुछ हजार वर्ष पहलेके कालमें वापस चले जायं तो हम देखेंगे कि उन दिनों जब किसीने भगवान्‌की चर्चा की तो वह भगवान् एक ऐसी सत्ता थे जो बहुत कुछ एक 'अधिमानसिक' देवताके सदृश थी। इन अधिमानसिक देवताओंने बहुत दीर्घकालतक पृथ्वीपर शासन किया है और यहां बहुतसी चीजें उत्पन्न की हैं। परंतु अब इन देवताओंसे संबंधित जीवन-यापनकी विधि उस विधिसे हमें बहुत अधिक निम्न कोटि-की प्रतीत होती है जिसकी कल्पना हम 'अतिमानसिक' के रूपमें करते हैं। फिर जिस 'अतिमानसिक' को हम इस समय भगवान् कहते हैं और जिसे हम पृथ्वीपर उतार लानेकी चेष्टा करते हैं उसका भी प्रभाव कुछ हजार वर्ष बाद हमपर वही पड़ेगा जो हमपर इस समय 'अधिमानसिक' का पड़ रहा है।

दूसरे शब्दोंमें, अभिव्यक्तिके अंदर, अपने आत्मप्राकट्यके अंदर भगवान् क्रमवर्द्धमान होते हैं।..अभिव्यक्तिके बाहर और उसके परे वह ऐसी चीज हैं जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते। परतु जब वह सतत संभूतिकी इस स्थितिके अंदर अपने-आपको प्रकट करते हैं तब वह धीरे-धीरे अपने-आपको अभिव्यक्त करते हैं, मानो अपनी सत्ताकी सबसे अधिक सुंदर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीजोंको उन्होंने सबसे अंतमें प्रकट करनेके लिये बचा रखा हो।

जैसे-जैसे जगत् प्रगति करता है वैसे-वैसे भगवान् जो कुछ अपने अंदरसे जगत्में प्रकट करते हैं वह अधिकाधिक दिव्य बनता जाता है।

श्रीअरविन्दने 'अतिमानसिक' शब्दका प्रयोग किया है जिसमें कि उनकी बात उन लोगोंके सामने स्पष्ट हो जाय जो विकसनशील बाह्य चेतनामें निवास करते हैं और जो उसी तरीकेको जानते हैं जिस तरीकेसे यह पार्थिव जगत् विकसित हुआ है; श्रीअरविन्द उन लोगों-को यह बतलाते हैं कि वह (अतिमानसिक) मनुष्यकी सृष्टिसे महत्तर कोई वस्तु है, उस मनुष्यकी सृष्टिसे जिसे वह बराबर ही मनोमय पुरुष कहा करते हैं। वह यह बतलानेके लिये उसे 'अतिमानसिक' नाम देते हैं कि वह मनसे परे है।

परंतु हम यह भी कह सकते हैं कि वह, उससे पहले जो कुछ अभिव्यक्त हो चुका है, उससे अधिक दिव्य कोई वस्तु है। क्योंकि वहां तो अनंतता विद्यमान है और उसकी कोई सीमा नहीं है। अतएव वहां एक वर्द्धमान पूर्णता सदा ही बनी रहेगी। आज हमें जो कुछ अपूर्ण मालूम होता है वह पहले कभी पूर्ण वस्तु प्रतीत हुआ होगा जिसके लिये इति-हासके कुछ युगोंने आकांक्षा और अभीप्सा की होगी।

और इसका कोई कारण नहीं की वह गति बंद हो जाय। अगर वह बंद हो जाय तो इसका अर्थ होगा सारी वस्तुओंका अंत—एक नवीन प्रलय।

*
**

पूर्णता और प्रगति

पूर्णता एक आपेक्षिक शब्द है। कोई वस्तु वर्तमान या भूतकालके मुकाबले पूर्ण हो सकती है; भविष्यमें जो कुछ आनेवाला है उसके मुकाबले वह पूर्ण नहीं हो सकती। सृष्टि एक शाश्वत गतिशीलता है, एक शाश्वत प्रगतिशीलता है। जब-जब पृथ्वीपर एक नयी चेतना प्रकट हुई तब-तब उस युगके मनुष्योंके लिये यह अत्यंत स्वाभाविक ही था वे यह समझें कि यही अंतिम सर्वश्रेष्ठ अनुभूति है, कम-से-कम एक अत्यंत महान् प्रगति है।

फिर भी हमें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि एक पशुके लिये, जैसे हाथी या कुत्तेके लिये, मानवीय क्षमताएं अद्भुत प्रतीत होती हैं; वे यह अनुभव करते हैं, कुत्ते तो अनुभव करते ही हैं कि मनुष्यमें करीब-करीब दिव्य शक्तियां ही मौजूद हैं। अतएव मनुष्य भी उस स्तरसे जहां कि वे हैं, परेकी चीजोंका संकेत प्राप्त करते हैं; यही कारण है कि हम पूर्ण संतुष्ट नहीं हैं; हमने जो सब चीजें प्राप्त की हैं उनके बावजूद भी हमें ऐसा लगता है कि अन्य कोई चीज भी है जो रह गयी है, निश्चय ही सत्य वस्तु खिसक गयी है, हम उसके चारों ओर घूमते हैं पर उसे छू नहीं पाते। इसका मतलब है कि मनुष्य और आगे प्रगति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेके लिये तैयार हो गया है। यदि ऐसी बात न होती, यदि वह जो कुछ कर सकता है केवल उसीसे संतुष्ट रहता तो वह उसीको, शायद अधिकाधिक अच्छे रूपमें, करनेका प्रयास करता, पर करता उसी पुरानी लीक़पर। जो हो, पर बात ऐसी नहीं है; वह किसी अन्य चीजकी, किसी एकदम भिन्न वस्तुकी खोज करता है जो वास्तवमें सत्य है, जिसपर हम भरोसा कर सकते हैं, जो किसीके अवलंब लेनेपर भहरा नहीं जाती, जो एक स्थायी, शाश्वत वस्तु है, अक्षय आधार-शिला है। शाश्वतताकी, एक पूर्ण 'शिव' और एक पूर्ण 'सुंदर' की यह आवश्यकता ठीक उसी मुहूर्त्तमें जागृत होती है जब मनुष्य एक नयी चेतना ग्रहण करनेके लिये तैयार होता है।

अत्यंत दीर्घकालसे, संभवतः एकदम आरंभसे ही—मेरा मतलब मनुष्यके विकासके आरंभसे नहीं है, क्योंकि पहले ऐसे युग हो चुके हैं जब, सच्चे मनुष्यके प्रकट होनेसे पहले, मध्यवर्त्ती जीवोंपर सबसे पहले प्रयोग किया गया था और वे पशुके बहुत अधिक नजदीक थे; मेरा मतलब उस समयसे है जब पर्याप्त रूपसे विकसित मानव आकार प्रकट होना आरंभ हुआ था और जब वह ऊपरसे कोई चीज ग्रहण करनेके लिये तैयार हो गया था—ऐसे व्यक्ति सर्वदा ही हुए हैं और अभी भी हैं जो अपने अंदर शाश्वत और अखंड तत्त्वकी इस आवश्यकताको वहन करते हैं। और महज धीरे-धीरे ही, बहुत हौले-हौले, प्रकाश और अंधकारके चक्रोंमेंसे गुजरती हुई ही मानवजातिकी समष्टिगत चेतना-जैसी कोई चीज ऐसे एक उच्चतर जीवनकी आवश्यकताके प्रति जागृत होती है। और आज यह आवश्यकता स्पष्ट ही बहुत व्यापक रूपमें, मनुष्यजातिके सभी कोलाहलों और मूढ़ताओंको चीरकर प्रकट हुई प्रतीत होती है: यह बात सूचित करती है कि समय समीप आ गया है।

हां, बहुत लंबे अरसेसे, मनुष्योंको कहा गया था, "यह होगा, यह होगा", उन्हें वचन दिया गया था। हजार-हजार वर्ष पूर्व यह वादा किया गया था कि एक नयी चेतना, एक नया जगत्, भगवान्‌की कोई चीज पृथ्वीपर अभिव्यक्त होगी; यह बात सर्वदा ही भविष्यकी थी, युगोंके चक्रके अंदर कहीं होनेवाली थी। मनुष्यको ऐसा नहीं लगता था, ऐसा नहीं महसूस होता था कि यह बात यहीं और अभी होने जा रही है।

मनुष्यजातिके एक बहुत बड़े भागको, सच पूछा जाय तो, इसके अधिकतम भागको, यह कल्पना करनेके लिये कि भविष्य कैसा होगा, बहुत अधिक प्रयास करनेकी आवश्यकता होती है। जो कुछ अभी है उसके साथ उसकी चेतना इतनी अधिक बंधी हुई है कि उसे यह कल्पना करनेमें भी कठिनाई होती है कि चीजें अन्य प्रकारकी हो सकती हैं। जो कुछ आगे होगा वह जब, कम-से-कम एक व्यक्ति-समूहकी चेतनाके लिये, एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाता है तथा जो कुछ हो चुका है और है वह उस चेतनाको एक ऐसी हास्यास्पद वस्तुके रूपमें दिखायी देता है जो टिक नहीं सकती, तब और केवल तभी परिवर्तन घटित होनेका मुहूर्त्त आता है, उससे पहले नहीं।

फिर भी यह प्रश्न तो बना ही रहता है कि आया यह चीज समष्टिगत रूपसे घटित होनेसे पहले व्यष्टिगत रूपमें घट सकती है या नहीं और घटेगी या नहीं। परंतु कोई भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यष्टिगत सिद्धि पूर्ण नहीं हो सकती या पूर्णतातक नहीं पहुंच सकती यदि और जबतक वह नये जगत्का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक सामूहिक चेतनाके साथ अपना मेल नहीं बैठा लेती। व्यष्टिगत और समष्टिगत चेतनाएं सदा ही एक-दूसरीपर निर्भर करती हैं और इतना अधिक निर्भर करती हैं कि व्यष्टिगत सिद्धि एक अननुकूल वातावरणमें सीमित और खंडित होनेके लिये बाध्य हो जाती है। पार्थिव जीवनको अपने समग्र रूपमें प्रगतिकी एक विशेष धाराका अनुसरण करना पड़ता है जिसमें कि उसके अंदर एक नवीन जगत् और एक नूतन चेतना प्रकट हो सके।

अतएव भावी सिद्धि, कम-से-कम आंशिक रूपमें, व्यक्तिगत रूपसे और समष्टिगत रूपसे, निश्चय ही तुमपर निर्भर करती है। क्या तुमने कभी यह समझनेकी चेष्टा की है कि नयी चेतना कैसी होगी, नयी जाति तथा नया जगत् कैसा दिखायी देगा?

यह स्पष्ट है कि पृथ्वीपर मनुष्यके आविर्भावने भौतिक अवस्थाओंको बदल दिया है। हम यह नहीं कह सकते कि इससे सबकी बहुत अधिक भलाई हुई है, क्योंकि इसके कारण बहुतसे स्थानोंमें बहुत अधिक दुःख-कष्ट आया है। फिर यह भी स्पष्ट है कि मनुष्य अपने साथ जिस जटिलताको जीवनमें ले आया है वह उसके लिये और दूसरोंके लिये सर्वदा उपयोगी नहीं सिद्ध हुई है। परंतु दूसरे दृष्टिकोणसे देखें तो उसके आगमनसे एक प्रगति हुई है, निम्नतर योनियोंमें एक सुनिश्चित उन्नति आयी है। मनुष्यने पशुओंके जीवनके साथ, पेड़-पौदोंके जीवनके साथ, यहांतक कि धातुओं और खनिज पदार्थोंके जीवनके साथ भी अपने-आपको मिला दिया है और यह बात, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, उन सब जीवों और वस्तुओंके लिये बहुत आनंददायी नहीं रही है जिनके साथ मनुष्यने अपने-आपको व्यस्त रखा है। पर फिर भी इस हस्तक्षेपके कारण उनके जीवनकी अवस्थाएं परिवर्तित हुई हैं। उसी तरह यह संभव है कि अतिमानसिक जीव, चाहे जैसा भी वह हो, जब आयेगा तब, पृथ्वीके जीवनमें बहुत कुछ परिवर्तन ले आयेगा। हम अपने हृदय और मनमें इस आशाका पोषण करते हैं कि जिन-जिन बुराइयोंसे पृथ्वी दुःख भोग रही है वे, यदि पूर्ण रूपसे दूर नहीं होंगी तो कम-से-कम बहुत अधिक मात्रामें, कम हो जायंगी और यहांके जीवनकी अवस्थाएं अधिक सुखदायी और सुसमंजस हो जायंगी, कम-से-कम सबके लिये सामान्य रूपसे अच्छी हो जायंगी। ऐसा होना बिलकुल संभव है। मनुष्यके अंदर मानसिक चेतनाने, जिसे कि उसने अभिव्यक्त किया, अपने स्वभावकी शक्तिके द्वारा, अपनी निजी तुष्टिके लिये, अपने निजी विकासके लिये काम किया और इस बातका बहुत विचार नहीं किया कि उसके कार्योंका क्या परिणाम होगा। दूसरी ओर, अतिमानसिक चेतना उससे भिन्न रूपमें कार्य करेगी; कम-से-कम यही हमारी आशा है।

परंतु मानवजीवन छोटा है और स्वभावतः ही मनुष्यकी एक प्रवृत्ति है अपने आकारके अनुपातमें दूरियोंको कम करना। फिर भी एक समय आयेगा जब यह चीज घटित होगी; एक ऐसा क्षण या एक ऐसी गतिविधि होगी जो अंतमें सद्वस्तुके अंदर उतरेगी। एक समय एक क्षण आया जब मनोमय जीव पृथ्वीपर प्रकट हुआ। आरंभ शायद मामूली था, बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपूर्ण, अतिशय आंशिक था, पर आखिरकार आरंभ हुआ था। अब वैसी ही बात क्यों नहीं घटित हो सकती?

जो लोग आदिकालसे इस शुभ समाचारकी घोषणा कर रहे थे वे निश्चय ही सबसे अधिक जानकार व्यक्ति होंगे। और मैं तुम्हें यह बतला दूं कि पृथ्वीके इतिहासके आरंभसे ही श्रीअरविन्द सर्वदा, एक-न-एक आकार और एक-न-एक नामसे, इन महान् पार्थिव रूपांतरोंकी अध्यक्षता करते आ रहे हैं। और इस बार यदि वह आये और उन्होंने यह कहा कि यह अंतिम रूपांतर है, तो यह अवश्य ही अंतिम होगा। शायद वह जानते हैं।

ऐसी अवस्थामें, यदि इस बार यह अंतिम रूपांतर है तो, जो लोग तैयार हैं या अपने-आपको तैयार कर रहे हैं, वे स्वभावतः ही वे लोग होंगे जो इस नये पथपर सबसे पहले रवाना होंगे। मैं आशा करती हूं कि ऐसे लोग बहुतेरे होंगे। परंतु मेरा अपना दृष्टिकोण यहां यह है: यदि इस बातकी केवल आधी भी संभावना हो तो भी इसके लिये कष्ट उठाना उचित है। मैं समझती हूं कि मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूं कि बहुतोंके जीवनमें एक क्षण ऐसा आता है जब कि अभी जीवन जैसा है, अभी मानव-चेतना जैसी है, वह इस रूपमें पूर्णतः असह्य हो जाती है, उससे केवल विरक्ति और घृणा ही उत्पन्न होती है; मनुष्य उसे अब अधिक बनाये रखना नहीं चाहता, वह अब अपना समस्त प्रयास, समस्त शक्ति, अपना समस्त जीवन और अंतरात्मा इसी एक संभावनाके लिये, आज अंतिम रूपमें दिये गये एक-मात्र इसी सुअवसरके लिये झोंक सकता है जिसमें कि वह (जीवन-सरिताके) उस पार चला जाय। कितनी शांति मिलती है उस पथपर अपने पैर रख देनेपर जो तुम्हें उस पार पहुंचा देता है! इस बातके लिये अपने सभी बोझोंको पीछे फेंक देने, समस्त भारोंसे अपने-आपको मुक्त कर देनेका कष्ट उठाना उचित ही है जिसमें कि तुम खूब अच्छी तरह छलांग भर सको। इसी रूपमें मैं इस बातको देखती हूं। यह सबसे महान् साहसिक कार्य है; यदि तुम्हारे अंदर साहसिक कार्य करनेकी सच्ची प्रवृत्ति जरा भी हो तो तुम अनुभव करोगे कि यह चीज अपना सर्वस्व न्योछावर कर देनेके योग्य है। परंतु जो लोग डरते और हिचकिचाते हैं, जो यह पूछते हैं कि "क्या मैं छायाके पीछे अपना सर्वस्व नहीं लुटा रहा हूं?"—मेरे मतके अनुसार यह एक अत्यंत मूर्खतापूर्ण बात है,—जो लोग उस वस्तुकी आशामें जो कल हो सकती या नहीं हो सकती है, अपना सर्वस्व खो देनेका खतरा उठानेके बजाय उनके पास जो कुछ है उससे लाभ उठाना अधिक पसंद करते हैं, ऐसे व्यक्ति, मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं, उस परिवर्तनको, यदि वह ठीक उनकी आंखोंके सामने ही घटित हो तो भी, नहीं देख सकेंगे। वे कहेंगे कि, "बस, ठीक है, हम कोई परवा नहीं करते, इसमें कुछ भी पछतानेकी बात नहीं।" बिलकुल संभव है; पर कहना मुश्किल है, शायद उन्हें पछताना भी पड़े।

जो हो, सच्चाईसे मेरा मतलब यही है। अर्थात्, अगर तुम देखते हो कि नयी अनुभूति एकमात्र ऐसी वस्तु है जो सचमुच जीवनमें उतारने योग्य है, जो कुछ अभी है वह यदि असहनीय है, केवल अपने लिये ही नहीं, संभवतः उतना अपने लिये नहीं जितना कि समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसारके लिये असहनीय है तो, यदि तुम तुच्छ और अहंकारपूर्ण न होओ तो, तुम उसकी आवश्यकताको अनुभव करते हो; तुम अनुभव करते हो कि वर्तमान जीवन बहुत दीर्घकालसे बना हुआ है और तुम इसके सिवा और कुछ नहीं कर सकते कि तुम स्वयं जो कुछ हो और जो कुछ कर सकते हो वह सब ले लो और अपने-आपको पूर्ण रूपसे--सिरके बल, पीछेकी ओर बिना देखे, क्या होगा या नहीं होगा इसका कोई विचार न कर--इस साहसिक कार्यमें झोंक दो। अतल गह्वरके किनारे खड़े होकर कांपनेकी अपेक्षा उसमें कूद पड़ना कहीं अधिक अच्छा है।

*
**

आंतरिक परिपूर्णता

एक फूल है जिसे हमने यह नाम दिया है। यह प्रसिद्ध चंपाका फूल है। इस फूलमें पांच दल होते हैं। प्रत्येक दल चेतनाके एक गुण या गतिको सूचित करता है; पांचों गुण या गतियां मिलकर आंतरिक पूर्णताका निर्माण करती हैं। आरंभमें मैंने उन्हें नाम दिया था—(१) समर्पण, (२) सच्चाई, (३) श्रद्धा, (४) भक्ति और (५) अभीप्सा। निश्चय ही अर्थ बदला जा सकता है। वास्तवमें जब मैं यह फूल किसीको देती हूं तब मेरा मतलब सर्वदा उन्हीं गुणोंसे नहीं होता। मैं उस व्यक्तिकी तथा उस मुहूर्त्तकी आवश्यकताके अनुसार अर्थ बदल देती हूं। परंतु फिर भी हम एक साधारण योजना बना सकते हैं। हर हालत-में, सभी समुच्चयोंमें (गुणोंके समुदायोंमें) और चाहे जिसे भी मैं दूं, इन गुणोंमें सबसे पहला है और बराबर ही होना चाहिये सच्चाई। क्योंकि, अगर सच्चाई न हो तो मनुष्य आधा पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। अतएव सच्चाई सबसे पहली आवश्यक वस्तु है और उसे सर्वदा ही बने रहना चाहिये।

यदि तुम चाहो तो इसे दूसरे शब्दद्वारा व्यक्त किया जा सकता है। वह शब्द होगा 'पारदर्शकता'। मैं इसे समझा दूं।

जब कोई आदमी मेरे पास आता है और मैं उसकी ओर ताकती हूं तो मैं उसकी आंखों-में, सीधे उसकी आंखोंमें देखती हूं। यदि वह मनुष्य सच्चा होता है, अर्थात् 'पारदर्शक' होता है तो मैं उसकी आंखोंके भीतरसे होकर उसके अंदर पैठ जाती हूं और साफ-साफ उसके अंतरात्माको देखती हूं। परंतु मैं जब उसकी ओर ताकती हूं और उसकी आंखोंमें एक बादल देखती हूं, और फिर एक पर्दा या और आगे बढ़नेपर एक दीवाल या कोई बड़ी काली चीज पाती हूं तथा जब मैं देखती हूं कि आगे बढ़नेके लिये मुझे इन सब चीजोंको पार करना होगा और जगह-जगहपर छेदकर सुराख बनाना होगा और फिर भी अंतिम मुहूर्त्तमें मुझे यह विश्वास नहीं होता कि मैं किसी ऐसी लोहेकी दीवालके सामने नहीं उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थित हूंगी जो प्रवेश नहीं करने देगी, तब, ऐसी अवस्थाओंमें मैं अंतरात्माको नहीं पाती और घोषित कर सकती हूं कि वह आदमी सच्चा नहीं है। ठीक-ठीक अर्थमें कहा जाय तो ऐसा व्यक्ति पारदर्शक नहीं होता। अतएव यही है सबसे पहली चीज।

दूसरी चीज है श्रद्धा और वह भी स्पष्ट ही सब प्रकारकी प्रगतिके लिये आवश्यक है। इसके लिये भी एक दूसरा शब्द है जो यद्यपि देखनेमें तो सीमित है, पर कम-से-कम मेरे लिये वह बहुत अधिक महत्त्व रखता है। मेरा मतलब है 'विश्वास' से। यदि तुम्हारी श्रद्धा भगवान्‌में पूर्ण विश्वासके द्वारा नहीं गठित है अथवा यदि तुम विश्वास खोना आरंभ कर देते हो तो धीरे-धीरे तुम भागवत शक्तिपरसे या भागवत कृपापरसे या भगवान्‌का जो तुमपर विश्वास है उसपरसे अपनी श्रद्धा खोने लगते हो। ये तीन महान् बाधाएं हैं।

यदि बहुत बार नहीं तो कभी-कभी ऐसा होता है कि तुम श्रद्धासे आरंभ करते हो और उसे तुम अटल श्रद्धा कहते हो, वह श्रद्धा कहती है कि एकमात्र भगवान् ही सब कुछ करते हैं और वह सब कुछ कर सकते हैं, जो कुछ मेरे अंदर या दूसरोंके अंदर, सर्वत्र, घटित होता है वह भगवान्‌का ही कार्य होता है और भगवान्‌के सिवा अन्य किसीका भी नहीं होता, फिर तुम इस तरह, कम-से-कम ऊपरसे देखनेमें, अपनी श्रद्धाको युक्तिसंगत अंतिम छोरतक जारी रखते हो और फिर कुछ समयके बाद अत्यंत भयावह कुकर्मोंका दोषारोपण भगवान्‌पर करना आरंभ कर देते हो, उन्हें इस जगत्‌की समस्त बुराइयोंका रचयिता या प्रवर्त्तक एक सच्चा दानव बना देते हो।

अथवा तुम कहते हो, तुम्हें भगवान्‌में श्रद्धा है, परंतु, जहांतक इस जगत्‌का संबंध है तुम जानते हो कि यह क्या है और तुम्हें इसपर कोई विश्वास नहीं है। तुम कहते हो "सबसे पहले, मैं बहुत दुःख भोग रहा हूं, मैं अभागा हूं, अन्य किसी भी व्यक्तिसे बहुत अधिक दुर्भाग्यशाली हूं"—सच मानो, मनुष्य बराबर ही अपने पड़ोसीकी अपेक्षा अपनेको अधिक दुःखी समझता है और कहता है—"जीवन मेरे प्रति कठोर है। अब, यदि भगवान् भगवान् हैं, संपूर्ण दया, पूर्ण उदारता, परिपूर्ण प्रेम और सामंजस्य हैं, तब यह कैसी बात है कि मैं इतना दुर्भाग्यशाली हूं? तब निश्चय ही भगवान् शक्तिहीन होंगे। अन्यथा, यदि वह इतने कृपालु हैं तो फिर वह मुझे दुःखमें कैसे छोड़ सकते हैं?" यही दूसरी बाधा है। तीसरी बाधा यह है: कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अत्यंत विनीत होते हैं, अत्यधिक और भ्रमात्मक दीनतासे भरे होते हैं, जो कहते हैं, "निस्संदेह, भगवान्‌ने मुझे त्याग दिया है, मैं किसी कामका नहीं हूं, वह मेरे द्वारा कुछ भी नहीं कर सकते, मेरे लिये यही अधिक अच्छा है कि मैं यह सब छोड़ दूं।" यदि श्रद्धाके साथ तुममें भगवान्‌के प्रति पूर्ण विश्वास न हो तो ऐसी कठिनाइयां बराबर ही उत्पन्न होती रहेंगी।

इस धारामें उसके बाद आती है भक्ति। निश्चय ही भक्ति बड़ी अच्छी चीज है; परंतु यहां भी, जबतक यह अन्य बहुतसी चीजोंके साथ युक्त न हो तबतक, यह तुम्हें बहुतसी भूल-भ्रांतियोंमें खींच ले जा सकती है। क्योंकि मनुष्य भक्तिके साथ-साथ अपने अहंकारको भी बनाये रखता है। भक्तिके वश होकर भी तुम अत्यंत अहंकारपूर्ण ढंगसे बर्ताव कर सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। तुम अपनी भक्तिकी बात, केवल अपनी भक्तिकी ही बात सोचते हो, तात्पर्य, तुम एकमात्र अपनी ही बात सोचते हो, तुम दूसरोंकी बात, संसारकी बात, जो कार्य तुम करते हो और जिसे तुम्हें करना चाहिये उसकी बात नहीं सोचते—तुम भीषण रूपमें अहंकारपूर्ण बन जाते हो। और जब तुम देखते हो कि किसी-न-किसी कारणसे भगवान् तुम्हारी भक्ति-का प्रत्युत्तर, उनकी ओरसे जितने उत्साहके साथ तुम प्रत्युत्तर पानेकी आशा करते हो उतने उत्साहके साथ प्रत्युत्तर, नहीं देते तो तुम निराश हो जाते हो और ठीक ऊपर जिन कठि-नाइयोंका जिक्र मैंने किया है उनमेंसे किसी एक या तीनों ही कठिनाइयोंमें जा गिरते हो। लोग समझते हैं कि या तो भगवान् क्रूर होंगे—हम ऐसे भक्तोंकी बात जानते हैं जो अपना सारा क्रोध भगवान्पर झाड़ा करते हैं, उनपर उपेक्षा और कठोरताका इलजाम लगाते हैं,—अथवा फिर वे सोचते हैं, "मैंने अवश्य ही कोई बड़ी भारी भूल की होगी, उनकी दृष्टिमें मैं बेकार हूं और मुझे त्याग दिया गया है।"

अब, एक ऐसी क्रिया है जिसे हम भक्तिके साथ, उसके पूरकके रूपमें, रख सकते हैं और निरंतर रख सकते हैं—वह है कृतज्ञताका भाव, यह भाव कि भगवान् हैं और मनुष्य उनके प्रति विस्मयसे उत्पन्न एक प्रकारकी कृतज्ञताका भाव अनुभव करता है जो तुम्हें यथार्थमें एक महान् आनंदसे भर देता है; स्वयं यह तथ्य कि भगवान् हैं, विश्वमें कोई वस्तु है जो भगवान् है, हम जो कुछ यहां नीचे देखते हैं वह महज कोई वीभत्सता नहीं है, तुम्हारे अंदर अवर्णनीय प्रसन्नताकी एक धारा ले आता है। प्रत्येक बार ही जब अत्यंत तुच्छ वस्तु भी तुम्हें भगवान्के अस्तित्वकी इस महान् सत्यताके संस्पर्शमें, प्रत्यक्ष रूपमें हो या अप्रत्यक्ष रूपमें, ले आती है, तब तुम्हारा हृदय इतने तीव्र, इतने अपूर्व अनुभवसे भर जाता है,—वह अनुभव निश्चित रूपसे एक ऐसी गभीर कृतज्ञताका होता है जिसमें सब वस्तुओंसे अधिक मीठा स्वाद होता है,—जिसे दूसरा कोई हर्ष प्रदान नहीं कर सकता। इसलिये मैं कहती हूं कि भक्ति अपने-आपमें अपूर्ण होती है, उसके साथ कृतज्ञता अवश्य होनी चाहिये।

अब हम दूसरी वस्तुपर आते हैं। एक बार मैंने तुम लोगोंसे साहसकी बात कही थी; मैंने कहा था साहसका अर्थ है कठिन काम करनेकी, परम कठिन काम करनेकी रुचि। परम कठिन काम करनेकी इस रुचिका नाम है अभीप्सा—वह अभीप्सा जो पूर्णतः तुम्हें अभिभूत कर डालती है और बिना विचारे या बिना कुछ बचाये, पीछे हटनेकी संभावनाके बिना, भग-वान्को खोज निकालनेके महान् कठिन काममें, भगवान्का साक्षात्कार पानेके महान् दुष्कर कार्यमें तथा भगवान्को उपलब्ध करनेके और भी महत्तर दुःसाध्य कार्यमें, तुम्हें झोंक देती है। इसका अर्थ होता है पीछेकी ओर देखे बिना, एक क्षणके लिये भी यह पूछे बिना कि क्या होने जा रहा है, अपने-आपको एक अपरिचित खतरेके काममें झोंक देना—क्योंकि यदि तुम पूछो कि तुम कहां गिर रहे हो तो तुम कभी आरंभ नहीं करोगे, जहां तुम हो वहीं अचल खड़े रहोगे, तुम्हारे दोनों पैर उसी स्थानपर दृढ़तासे गड़े रहेंगे और तुम्हें भय होगा कि कहीं तुम अपनी समतोलता न खो बैठो। यही कारण है कि मैं उस चीजको साहसके नामसे पुकारती हूं। परंतु सच पूछा जाय तो वह है अभीप्सा। ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों साथ-साथ रहते हैं। सच्ची अभीप्सा एक ऐसी चीज होती है जो साहससे भरी होती है।

इस तरह अबतक हमें चार वस्तुएं मिली हैं। पांचवीं वस्तु धैर्यको मैं जोड़ना चाहती हूं। क्योंकि, यदि तुम अपनी कठिनाइयोंको हताश हुए बिना, उनके अत्यंत कठिन होनेके कारण उन्हें छोड़े बिना, उनका सामना करनेके योग्य न होओ, और यदि तुम आघातोंको सहन न कर सको, उनका मुकाबला न कर सको तथा बिना कुछ ख्याल किये आगे न बढ़ सको—क्योंकि आघात तुम्हारे दोषों और भूलोंके कारण आते हैं—तो तुम बहुत दूरतक अग्रसर नहीं हो सकते: सबसे पहली मोड़पर ही जब तुम अपने तुच्छ अभ्यासगत जीवनको नहीं देखोगे तब तुम निराश हो जाओगे और अपना प्रयास ही छोड़ बैठोगे।

अपनी स्थूल अभिव्यक्तिमें धैर्य बन जाता है अध्यवसाय। कहनेका तात्पर्य है कि यदि आवश्यक हो तो तुम्हें एक ही कार्यको बार-बार, हजार बार करनेके लिये तैयार रहना होगा। तुम एक पग आगे बढ़ते हो, तुम समझते हो कि तुम दृढ़तापूर्वक खड़े हो गये हो; परंतु बराबर ही कोई-न-कोई ऐसी चीज उत्पन्न हो जायगी जो पुरानी कठिनाईको ही वापस ले आयगी। तुम समझते हो कि तुमने समस्याको हल कर लिया है, परंतु तुम्हें फिरसे उसे हल करना होगा: वह थोड़े बदले हुए रूपमें आयेगी, पर वह ठीक वही समस्या होगी। तुम्हें उसी समस्याका सामना करनेके लिये तत्पर रहना होगा, उन्हीं कठिनाइयोंमेंसे हजारों-लाखों बार गुजरनेके लिये तैयार रहना होगा। तभी तुम इस विषयमें निश्चित हो सकते हो कि तुम अपने लक्ष्यपर पहुंच जाओगे।

हमने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण वस्तुको छोड़ दिया है—वह है समर्पण। अब, श्रीअरविन्दका कहना है कि योग करनेके लिये सर्वप्रथम और सर्वोपरि शर्त है समर्पण। इसके बिना योग हो ही नहीं सकता। अतएव हम कह सकते हैं कि योगसाधना आरंभ करनेकी क्षमता रखनेवाले व्यक्तिके आवश्यक गुणोंमेंसे वह एक गुण नहीं है, बल्कि यह तो उसका प्रारंभिक अनिवार्य मनोभाव है। अगर तुमने समर्पण करनेका निश्चय नहीं किया है तो तुम उस रास्तेपर पैर ही नहीं रख सकते। परंतु इस समर्पणको पूर्ण और सर्वांगीण बनानेके लिये इन पांचों चीजोंकी आवश्यकता होती है जिनकी चर्चा हमने की है। तब हमारा प्रस्ताव इस प्रकार है। हम समर्पणको सबसे ऊपर शीर्ष-स्थानमें रखते हैं; क्योंकि पूर्णयोग-की साधना करनेके लिये सबसे पहले मनुष्यको भगवान्‌के प्रति संपूर्ण समर्पण कर देनेका संकल्प करना चाहिये, इससे भिन्न दूसरा रास्ता नहीं है, यही एकमात्र पथ है। उसके बाद मनुष्यको अंतःकरणकी इन पांचों पूर्णताओंको आयत्त करना चाहिये।

*
**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामनाका मूल-स्रोत

कामना कहांसे आती है? बुद्धने कहा था कि वह अज्ञानसे आती है। बात प्रायः ऐसी ही है। कामना हमारी सत्तामें रहनेवाली एक ऐसी चीज है जो यह कल्पना करती है कि उसे अपनी संतुष्टिके लिये अपनेसे भिन्न किसी दूसरी चीजकी आवश्यकता है। यह नितांत अज्ञान ही है, और इसका सबूत यह है कि एक सौमेंसे निन्यानवे प्रसंगोंमें जब मनुष्य अपनी काम्य वस्तुको पा जाता है तो वह फिर उसकी कोई परवा नहीं करता।

मैं समझती हूं कि अपनी एकदम मूल अवस्थामें यह अपनी वृद्धि या फैलावके लिये एक अंध आवश्यकता थी। सबसे नीची योनियोंमें हम देखते हैं कि प्रेम विस्तारित होने, फूल जाने, आत्मसात् करने, अपने-आपको दूसरे शरीरके साथ जोड़ देनेकी एक सहजप्रेरणात्मक और अदम्य आवश्यकतामें परिणत हो गया है। अपने अंदर ले लेनेकी यह आवश्यकता ही है कामना। अतएव यदि तुम काफी दूरतक निश्चेतनाकी अंतिम गहराइयोंमें वापस चले जाओ तो तुम देखोगे कि कामनाका अंतिम स्रोत है प्रेम। यह प्रेमका अत्यंत अंधकारपूर्ण और निश्चेतन रूप है। यह, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, अपने-आपको बढ़ानेकी एक आवश्यकता है, अपनेसे बाहरकी एक वस्तुके लिये, उसका आलिंगन करने, उसे निगल जाने, उसे अपना एक अंग बना लेने और इस तरह अधिक बड़ा होनेके लिये एक आकर्षण है। अब, मान लो कि तुम्हारे सामने कोई सुंदर, सुसमंजस, आकर्षक चीज रखी है: यदि तुम्हें सच्ची चेतना प्राप्त हो तो तुम उसका आनंद उपभोग करोगे और पूर्ण मात्रामें प्रसन्न होगे, और होगे महज उस चीजकी ओर ताककर, वहां जो सौंदर्य और सामंजस्य विद्यमान है उसके साथ अपनी चेतनामें आंतर संपर्क प्राप्त करके। और बस वहीं मामला खत्म हो जाता है। तुम्हें प्रसन्नता हुई और वही सब कुछ है। ऐसी क्रिया कलाकारमें बहुत सामान्य रूपसे पायी जाती है। वह एक सुंदर व्यक्तिको देखता है, वह शरीरकी शोभा, उसकी चाल-ढालकी समस्वरता आदि देखकर हर्षित होता है। परंतु वह उससे आगे नहीं बढ़ता। जब वह कोई मनोहर वस्तु देखता है तब वह पूर्णतः प्रसन्न, संपूर्ण रूपमें संतुष्ट होता है।

परंतु, इसके विपरीत, एक साधारण चेतना, मेरा मतलब है, बहुत साधारण चेतना, जो साधारण वस्तुओंकी तरह चपटी होती है अर्थात् जिसमें जरा भी गहराई नहीं होती, वह जब किसी सुंदर वस्तुको देखती है, वह चाहे कोई स्थूल पदार्थ हो या कोई व्यक्ति, वह तुरत उसपर झपट पड़ती है और चिल्ला उठती है कि "मुझे यह मिलना ही चाहिये!" यह बड़े दुःखकी बात है, ना? और फिर, ऐसी चेतनाके द्वारा तुम सौंदर्यका उपभोग नहीं कर सकते, क्योंकि कामनाकी ताड़ना तुम्हारा पीछा करती रहेगी। इस तरह तुम सच्चा सुखोपभोग तो खो बैठते हो और बदलेमें कोई चीज नहीं पाते। किसी चीजकी कामना करनेमें कोई सुख नहीं है। यह महज तुम्हें एक दुःखकी स्थितिमें डाल देता है।

बुद्धने भी कहा था कि कामनाकी तृप्तिकी अपेक्षा कामनाको जीतनेमें अधिक सुख है। प्रत्येक व्यक्ति यह परीक्षण कर सकता है और अनुभव ले सकता है। ऐसा करना बड़ा ही आनंददायी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तुम किसी कामनाका त्याग कर देते हो तब उसी क्षण तुम्हारे चैत्य पुरुषके साथ एक आंतरिक संपर्क स्थापित हो जाता है और यही कारण है कि मनुष्य कामनाकी चरितार्थताकी अपेक्षा उसके त्यागमें कहीं अधिक प्रसन्नता प्राप्त करता है। इसके अलावा, जब तुम अपनी कामनाको तृप्त करते हो तब सर्वदा ही उसके बाद कहीं-न-कहीं एक तिक्त स्वादका अनुभव होता है, एक प्रकारकी विरक्ति आती है। ऐसी कोई कामना नहीं जो तृप्त होनेपर ऐसी तिक्तता तुम्हारे अंदर न छोड़ जाय, जैसे कि, जब तुम कोई बहुत मीठी चीज खाते हो तो तुम्हारा मुंह एक बुरे स्वादसे भर जाता है। कामनाका स्वभाव बस ऐसा ही है। इसे झाड़ फेंकनेकी, पर सच्चाईके साथ झाड़ फेंकनेकी कोशिश तुम्हें अवश्य करनी चाहिये। तुम्हें ऐसा करनेका बहाना करके उसे किसी कोनेमें बनाये नहीं रखना चाहिये। ऐसी हालतमें वह अवश्य ही तुम्हारे ऊपर विपत्तिका पहाड़ ढा देगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

साधना

कृच्छ्र साधना

तुमने कीलोंपर सोये हुए संन्यासियोंको अवश्य देखा होगा। वे लोग यह क्यों करते हैं? संभवतः अपनी साधुताको सिद्ध करनेके लिये। परंतु जब वे खुले आम ऐसा करते हैं तब यह संदेह करना न्यायसंगत ही प्रतीत होता है कि यह दिखावेकी जैसी कोई चीज है। शायद ऐसे लोग भी हैं जो सच्चाई और गंभीरताके साथ यह सब करते हैं, अर्थात् वे महज दिखावा नहीं करते। ऐसे प्रसंगोंपर हम पूछ सकते हैं कि वे यह क्यों करते हैं। वे कहते हैं कि इससे उन्हें शरीरके प्रति अपनी अनासक्तिका परिचय मिल जाता है। कुछ दूसरे लोग हैं जो थोड़ा और आगे जाते हैं और कहते हैं कि अपने आत्माको मुक्त करनेके लिये हमें शरीरको अवश्य कष्ट पहुंचाना चाहिये। परंतु मैं कहती हूं कि प्राण-पुरुषको दुःखका चस्का लगा होता है और दुःख-कष्टके इस विकृत स्वादके लिये वह शरीरपर दुःख-कष्ट लाद देता है। मैंने ऐसे बच्चोंको देखा है जो जखमी होनेपर अपने जखमको जोरसे दबाते हैं जिसमें उन्हें अधिक दर्द हो और इसमें उन्हें एक प्रकारका सुख मिलता है। मैंने बड़े लोगोंको भी ऐसा करते हुए देखा है—अवश्य ही नैतिक रूपमें। यह बहुत प्रसिद्ध बात है। मैं सर्वदा ही लोगोंसे कहती हूं, "यदि तुम दुःखी हो तो इसका कारण यह है कि तुम दुःखी होना पसंद करते हो। यदि तुम कष्ट भोगते हो तो इसका कारण यह है कि तुम कष्ट पाना पसंद करते हो, नहीं तो वह तुम्हारे पास न होता।" मैं इसे एक अस्वस्थ अवस्था मानती हूं; क्योंकि यह सामंजस्य और सौंदर्यकी उलटी अवस्था है; यह तीव्र संवेदन प्राप्त करनेकी एक प्रकारकी गंदी आवश्यकता है। क्या तुम जानते हो कि चीन एक ऐसा देश है जहां अत्यंत क्रूरतापूर्ण यंत्रणाओंका, कल्पनातीत पद्धतियोंका आविष्कार किया गया है? जब मैं जापानमें थी तब मैंने एक जापानीसे, जो चीनी लोगोंको बहुत अधिक पसंद करता था, पूछा कि ऐसा आविष्कार क्यों किया गया। उसने मुझे उत्तर दिया, "इसका कारण यह है कि सुदूर पूर्वके लोगोंमें, जापानियोंमें भी, संवेदनाकी शक्ति बड़ी कुंद होती है। वे कम ही किसी चीजको अनुभव करते हैं; जबतक यंत्रणा बहुत तीव्र नहीं होती तबतक वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भी अनुभव नहीं करते।" उन्हें चरम कोटिकी तीव्र यंत्रणाओंकी खोजमें अपनी बुद्धिका उपयोग करनेके लिये बाध्य होना पड़ा। हां, जो लोग चैतन्यरहित या तामसिक होते हैं, वे जितना ही अधिक चैतन्यहीन होते हैं उतना ही अधिक उनमें तमस् होता है, ऐसे सभी लोगोंकी संवेदना-शक्ति कुंद हो जाती है; यदि उन्हें अनुभव करना हो तो उन्हें बड़ी तीव्र संवेदनाकी आवश्यकता होती है। इसी कारण साधारणतया वे क्रूर बन जाते हैं, क्योंकि क्रूरता बहुत तीव्र संवेदनाएं प्रदान करती है। जब तुम किसी आदमीको कष्ट पहुंचाते हो तब तुम्हारे अंदर जो स्नायविक तनाव उत्पन्न होता है वह एक प्रकारका संवेदन ले आता है; उन्हें अनुभव करनेके लिये उस तनावकी आवश्यकता होती है, अन्यथा वे कुछ भी नहीं अनुभव करेंगे। यही कारण है कि सारीकी सारी जातियां ही विशेष रूपसे निर्दयी हो गयी हैं। वे चेतनाहीन हैं, अपने प्राण-भागमें एकदम निर्जीव हैं। वे मानसिक रूपमें या अन्य रूपमें अचेतन न भी हों, परंतु प्राणिक रूपमें और शारीरिक रूपमें, सबसे अधिक शारीरिक रूपमें, अचेतन हैं।

यदि किसीमें सौंदर्य-बोध हो तो क्या वह क्रूर बन सकता है?

यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है। यह उस भागपर निर्भर करता है जहांपर सौंदर्य-बोध होता है। मनुष्यमें भौतिक सौंदर्य-बोध, प्राणिक सौंदर्य-बोध और मानसिक सौंदर्य-बोध हो सकता है। अगर तुममें नैतिक सौंदर्य-बोध हो, यदि तुममें सभ्यता और सज्जनताका बोध हो तो तुम कभी क्रूर नहीं हो सकते। तुम बराबर ही उदार बने रहोगे; तुम्हारे चाल-चलनमें सुंदर भाव-भंगिमाएं विद्यमान रहेंगी। परंतु, जैसा कि मैं प्रायः ही कहती हूं, मनुष्य एक साथ ही बहुतसे भिन्न-भिन्न टुकड़ोंसे बना हुआ है। उदाहरणार्थ, मैं कलाकारोंसे बहुत अधिक मिलती-जुलती रही हूं। विगत शताब्दिके अंतिम कालके तथा वर्तमान शताब्दीके आरंभिक कालके प्रायः सभी महान् कलाकारोंको मैं जानती थी। मैं उनके बीच रहती थी। वास्तवमें उनमें बहुत अधिक सौंदर्य-बोध था। परंतु नैतिक रूपमें उनमेंसे कुछ लोग बड़े ही क्रूर थे। इसका कारण यह है कि जब तुम किसी कलाकारको उसकी चित्रशालामें काम करते हुए देखते हो तब तुम उसे महान् सौंदर्यके वातावरणमें निवास करते हुए देखते हो, परंतु जब तुम उन महाशयको घरमें देखते हो तब वह एक दूसरे ही व्यक्ति होते हैं, चित्रशालाके कलाकारसे उनका बहुत ही कम संपर्क होता है। यहां वह साधारण और नीच बन जाते हैं। उनमेंसे बहुतेरे सचमुचमें ऐसे ही थे। परंतु अपवाद सर्वदा ही होता है। कुछ लोगोंमें एकीभूत व्यक्तित्व है, तात्पर्य, वे अपनी कलाके अनुरूप जीवन यापन करते हैं और यथार्थमें उदार, महान् होते हैं।

*
**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या कभी-कभी कृच्छ्र साधन सहायक नहीं होते?

मैं नहीं समझती। उस पथसे तुम कुछ भी सुधार नहीं कर सकते। तुम अपने-आप-को इस भ्रममें डालते हो कि तुम उन्नति कर रहे हो, पर सच पूछा जाय तो तुम किसी चीजसे मुक्त नहीं होते। इसका प्रमाण यह है कि जैसे ही तुम उन अभ्यासोंको बंद कर देते हो पुरानी चीजें बदला लेनेकी भावनाके साथ भयंकर रूपमें वापस आ जाती हैं।

परंतु स्वभावतः ही सारी बात उस अर्थपर निर्भर करती है जो तुम उस शब्दपर आरोपित करते हो। यदि इसका अर्थ हो अपनी कामनाओंके अधीन न होना तो निश्चय ही यह कृच्छ्रता नहीं है, यह समझदारीकी बात है, एक अच्छी बात है। कृच्छ्रताका सामान्यतया लोग अर्थ समझते हैं उपवास करना, कठोर शीत या तपती हुई गर्मीको झेलना, तेज कीलोंके बिछौनेपर पड़े रहना, अर्थात् किसी-न-किसी रूपमें शरीरको यंत्रणा प्रदान करना। यह चीज तुम्हें महज आत्मगौरवका भाव या आध्यात्मिक अहंकार प्रदान करती है, इससे अधिक कुछ नहीं। इस तरीकेसे न तो तुम्हें सच्चा संयम प्राप्त होता है न प्रभुत्व। लोग इसे इसलिये करते हैं कि यह सीधा और आसान काम है, यह तुम्हारे दंभको तुष्ट करता है। तुम अपने तपस्वी होनेके गुणोंका दिखावा करते हो और इस छद्मवेशके द्वारा बहुतसी अन्य चीजोंको छिपा रखते हो।

जो हो, साधुओंके कठिन करामातोंके द्वारा शरीरका दमन करनेके बदले शांत भावसे, समझ-बूझकर अपनी वृत्तियोंको वशमें करना, उन्हें उबल पड़नेसे रोकना बहुत अधिक कठिन है। किसी वस्तुको पानेकी अपेक्षा अपने पास रहनेवाली वस्तुके प्रति आसक्त न होना बहुत अधिक कठिन है। फिर भी यह एक सीधासा सत्य है जिसे लोग युगोंसे स्वीकार करते आ रहे हैं। कोई चीज अपने अधिकारमें न रखना या अपने अधिकारमें रहनेवाली चीजोंको घटाकर कम-से-कम कर देना आसान है: परंतु कठिन है उन चीजोंके प्रति आसक्त न होना जो तुम्हारे अधिकारमें आ जाती हैं। इसका मतलब होता है एक उच्च स्तरका नैतिक मूल्य। इसे बस करनेकी कोशिश करो और तुम्हें पता चल जायगा कि इसके लिये क्या मूल्य चुकाना पड़ता है; जब कोई चीज तुम्हारे पास आती है तब उसे स्वीकार करो और उसका व्यवहार करो और यदि वह, किसी भी कारणसे, चली जाय तो उसे चली जाने दो, उसके लिये दुःख मत करो, उसे पकड़ रखनेकी कोशिश मत करो; जब वह आवे तब उसे अस्वीकार मत करो, जब वह जाय तब दुःख मत करो—स्वभावतः ही मैं स्थूल वस्तुओंकी, जीवनमें व्यवहार करनेके लिये आवश्यक वस्तुओंकी चर्चा कर रही हूं।

भौतिक त्यागसे कोई समाधान नहीं होता। क्योंकि दोष तो भीतर हैं। तुम बाहरसे आनेवाले संस्पर्शोंसे डरते हो और गुफाओं, जंगलों तथा पहाड़के शिखरोंपर, एकदम अकेले रहनेके लिये चले जाते हो। परंतु तुम्हें दूसरोंसे कुछ उधार लेनेकी कोई जरूरत नहीं; स्वयं तुम्हारे ऊपर ही काफी बोझ लदा हुआ है। सच पूछो तो, वे चीजें यदि तुममें न होतीं तो तुम्हें वे दूसरोंमें भी न दिखायी दी होतीं। तुम्हें बाहरसे महज इसी कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छूत लग जाती है कि तुम्हारे भीतर रोगके कीडे मौजूद हैं। बहुत सत्यताके साथ हम कह सकते हैं कि आवेगकी महान् लहरें मनुष्यके भीतर खेल रही हैं, वे उनके अंदर उत्पन्न नहीं होतीं। पर कोई मनुष्य यदि पूर्ण रूपसे पवित्र हो, उसमें किसी आवेगकी कोई संभावना न हो तो वे लहरें लगातार शताब्दियोंतक उसके ऊपरसे गुजरती रह सकती हैं पर वह उनसे प्रभावित नहीं होगा या उसे वे छू भी नहीं सकेंगी। वह उन्हें देख सकता है, जब वे गुजरती हैं तब उन्हें वह आकाशमेंसे गुजरनेवाले तूफानकी तरह देख सकता है, पर वह अपने अंदर कुछ भी अनुभव नहीं करेगा।

जब हमारे अंदर बाहरी प्रकंपनका उत्तर देनेवाला कोई प्रकंपन होता है तब इसका मतलब है कि वह प्रकंपन पहलेसे ही हमारे भीतर था, नहीं तो कोई भी बाहरी प्रकंपन हमारे भीतर नहीं घुस पाता या अपनी कोई छाप नहीं छोड़ पाता। अचानक बिना किसी कारण भय फैलनेका——किसी भीड़के अंदर प्रत्येक व्यक्तिमें एक साधारण आतंक घुस आनेका ——कारण बस यही है। परंतु ऐसे आतंकको रोका जा सकता है यदि वहां दो-एक व्यक्ति ऐसे हों जो इसका प्रतिरोध कर सकें, जो उससे अछूते हों, जो उसके प्रकंपन-क्षेत्रके बाहर हों। ऐसे व्यक्ति उस परिस्थितिको सुधार सकते हैं और भगदड़को रोक सकते हैं। ऐसी बात बार-बार घटित हुई है। प्रत्येक हलचल, प्रत्येक प्रकंपन, प्रत्येक शक्ति संक्रामक होती है, क्योंकि छूत लगनेका कारण वहां पहलेसे ही मौजूद रहता है।

उन्नति करनेके लिये प्रयास करनेकी प्रवृत्ति सर्वदा सहजभावसे क्यों नहीं आती, विशेषकर हम लोगोंमें जो कि यहां आश्रममें रहते हैं?

इसका कारण यह है कि मनुष्यकी भौतिक प्रकृति साधारणतया तामसिक होती है। प्रयास करनेकी प्रवृत्ति प्राणमें स्वाभाविक होती है। परंतु सामान्यतया प्राण अपनी निजी तुष्टिके लिये प्रयास करता है। मैं नहीं समझती कि स्थूल प्रकृति स्वयं अकेली छोड़ दी जानेपर सहजभावसे किसी प्रयासमें प्रवृत्त हुआ करती है; उसे कुछ क्रियाशीलताकी आवश्यकता तो होती है पर होती है खूब दबी हुई।

यहांपर बात कुछ दूसरे प्रकारकी है। शिक्षण या अभ्यासका जो सिद्धांत यहां अपनाया जाता है वह है स्वतंत्रताका सिद्धांत। यहांका जीवन अधिक-से-अधिक स्वतंत्रताके ऊपर संगठित किया गया है; दूसरे शब्दोंमें, यहां नियम-कानून, विधि-निषेध घटाकर कम-से-कम कर दिये गये हैं। संसारमें माता-पिता जिस तरीकेका अनुसरण करते हैं और जिसमें निरंतर ऐसे उपदेश दिये जाते हैं: इसे मत करो, उसकी मनाही है, इसे अवश्य करना चाहिये पर उसे नहीं इत्यादि, उसके साथ यदि तुम हमारे तरीकेका मुकाबला करो तो तुम अंतर समझ जाओगे। स्कूल और कालेजमें, सर्वत्र ही, हमारे यहांके नियमोंसे अनंतगुना अधिक कठोर नियम हैं। अतएव, अपनी उन्नतिके लिये अपने ऊपर कोई अलंघ्य शर्त्त न होनेके कारण, तुम जब चाहते हो तभी उसके लिये कार्य करते हो और जब तुम्हें उसे करनेकी इच्छा नहीं होती तब तुम उसे नहीं करते; तुम बहुत हलके रूपमें ही विषयको लेते हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निस्संदेह, कुछ लोग ऐसे हैं जो स्वाभाविक ढंगसे प्रयास करते हैं। और आध्यात्मिक दृष्टिसे उसका मूल्य अनंतगुना अधिक है। तुम उन्नति करते हो, क्योंकि तुम अपने अंदर वैसा करनेकी आवश्यकताका अनुभव करते हो, क्योंकि यह एक ऐसा प्रवेग है जो तुम्हारी सत्ताकी गहराइयोंमेंसे उमड़ पड़ता है, इसलिये नहीं कि एक विवश करनेवाली बाहरी शक्ति-से तुम चालित होते हो। जो कुछ तुम सहजभावसे और सच्चाईके साथ अपने-आप करते हो वह तुम्हारी सत्ताका ही कोई अंश और तंतु होता है। तुम कोई काम करते हो पर इसलिये नहीं कि अगर तुम उसे करोगे तो तुम इनाम पाओगे और अगर तुम नहीं करोगे तो सजा पाओगे। परंतु कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि कोई चीज तुम्हारे पास या तुम्हारे अंदर आवे और तुम्हें यह भान करावे कि तुम्हारे प्रयासको लोग पसंद करते हैं, परंतु वह प्रयास स्वयं उस कारणसे ही नहीं किया जाता। निःसंदेह, यहांपर सारी बातें इस ढंगसे व्यवस्थित की गयी हैं कि कुछ करने और उसे अच्छी तरह करनेका संतोष ही वह सबसे उत्तम पुरस्कार है जो यहां मनुष्यको मिलता है और कोई काम बुरे ढंगसे करने-पर या उसे एकदम न करनेपर मनुष्य स्वयं ही अपनेको पूरे तौरसे दंड देता है; कोई दूसरा दंड उससे अधिक सच्चा या अधिक ठोस नहीं हो सकता। यह सब आध्यात्मिक विकासके दृष्टिकोणसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण और बहुमूल्य है, बाहरी नियम-कानून और दबावके द्वारा उत्पन्न चीजोंसे कहीं अधिक अर्थपूर्ण और मूल्यवान् है।

आध्यात्मिक अनुभवका ठीक-ठीक स्वरूप क्या है?

यह एक ऐसी चीज है जो तुम्हें तुम्हारी साधारण चेतनासे अधिक ऊंची किसी चेतनाके संपर्कमें ला देती है। तुम एक विशेष स्थितिमें निवास करते हो और तुम यह जानते भी नहीं कि यह स्थिति ठीक किस तरहकी है। यही है साधारण चेतना। अब एकाएक तुम अपने अंदर एक ऐसी चीजके विषयमें सचेतन हो जाते हो जो एकदम भिन्न प्रकारकी और बहुत उच्च कोटिकी होती है—यही है आध्यात्मिक अनुभव, फिर वह चाहे जो कुछ भी क्यों न हो। तुम उसे एक मानसिक विचारके रूपमें व्यक्त कर भी सकते हो या नहीं भी, तुम उसकी व्याख्या कर भी सकते हो या नहीं भी, वह बना रह भी सकता है या नहीं भी, वह एकदम क्षणिक भी हो सकता है। परंतु चेतनाके मौलिक गुणमें यदि यह अंतर हो, ऊपरसे आनेवाली, एक महत्तर ऊंचाईसे आनेवाली किसी चीजको वह सूचित करती हो, ऐसी चीजको सूचित करती हो जो शुद्ध या सत्य हो, साधारणतया जो कुछ तुम अनुभव करते हो उससे अधिक सत्य और अधिक शुद्ध हो तो उसे ही मैं आध्यात्मिक अनुभव कहती हूं, यद्यपि इस श्रेणीसे संबंध रखनेवाली हजारों वस्तुएं हैं।

*
**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-जन्म

गत सप्ताह मैंने जन्मके विषयमें कुछ कहा था और यह बतलाया था कि किस तरह अंतरात्मा शरीरमें प्रवेश करता है। मैंने तुम्हें बताया था कि लगभग सभी मनुष्योंके प्रसंग-में शरीरका निर्माण बहुत असंतोषजनक रीतिसे होता है और अपवाद इतने विरल होते हैं कि उनकी चर्चा नहीं की जा सकती। मैंने तुमसे कहा था कि इस अंधकारपूर्ण जन्मके कारण मनुष्यको अपने साथ विभिन्न वस्तुओंकी एक खासी गठरी ले आनी पड़ती है जिससे पीछे चलकर सामान्यतया उसे मुक्त होना पड़ता है, यदि वह जीवनमें सच्चे रूपमें प्रगति करना चाहता हो। मैंने तुम्हें बताया था कि वस्तुतः तुम्हें आनेके लिये बाध्य किया जाता है, जबर्दस्ती तुम्हारे ऊपर अवस्थाएं लाद दी जाती हैं, और दबावके वश तुम वंशपरंपराके नियमोंको मानते हो। अब, मुझसे पूछा गया है कि कौन सत्ता या कौन वस्तु ऐसी है जो बाध्य करती है? मैं यथासंभव स्पष्ट रूपमें उत्तर देनेकी चेष्टा करूंगी।

शरीरका निर्माण एक पुरुष और एक स्त्रीके द्वारा होता है जो पिता और माता होते हैं; जब ये शरीरका निर्माण करते हैं तब इनके पास कोई उपाय नहीं होता कि ये जिस जीवको जगत्‌में ला रहे हैं उससे यह पूछें कि वह इस शरीरको पसंद करता है या नहीं अथवा यह शरीर उसकी भवितव्यताके साथ मेला खाता है या नहीं। ये, अवश्यंभाविताके नियमवश, शरीरके ऊपर एक पूर्वजानुकृतिको, एक परिस्थितिको और पीछे एक शिक्षाको लाद देते हैं जो सब प्रायः सदा ही भावी उन्नतिके लिये अड़चनें साबित होती हैं। एक विकसनशील अंतरात्माको, अथवा शरीरमें जन्म लेनेवाले एक पूर्ण-विकसित जीवको अपना सच्चा रास्ता पानेके लिये तथा अपने निजी पूर्ण स्वरूपको ढूंढ़ निकालनेके लिये इन सब परि-स्थितियोंके विरुद्ध, जो कि पश्वोचित जन्मके कारण उसपर लाद दी गयी हैं, युद्ध करना पड़ता है।

परंतु माता-पिताके लिये यह संभव है कि वे इस कार्यको पशुके ढंगसे, महज सहजप्रेरणा और कामनासे चालित होकर न करें,—अधिकांश समय तो लोग संतानकी इच्छा हुए बिना भी ऐसा करते हैं,—बल्कि उसके बदले इस कामको सज्ञान संकल्पके साथ करें, इस बातकी अभीप्सा करते हुए, प्रायः यह प्रार्थना करते हुए करें कि जिस शरीरको वे जन्म देने जा रहे हैं वह उनकी पुकारपर आनेवाले जीवके लिये एक उपयुक्त आकार हो। मैं ऐसे लोगोंको जानती हूं,—ऐसे लोग बहुत नहीं, फिर भी कुछ हैं अवश्य,—जिन्होंने विशेष परिस्थितियोंको चुना, एकाग्रता, ध्यान और अभीप्साका भाव ग्रहण करके अपनेको तैयार किया, तथा जिस शरीरको वे बनानेवाले थे उसमें आनेके लिये किसी विशिष्ट जीवका आवाहन किया। इसके लिये मनुष्यको कुछ गुह्य ज्ञान भी अवश्य होना चाहिये जो साधारण तौरपर लोगोंके पास नहीं होता।

प्राचीन युगोंमें, कुछ सभ्यताओंमें और आज भी कुछ देशोंमें गर्भवती स्त्रियोंको विशेष रूपसे सौंदर्य, सामंजस्य, शांति और सुखके वातावरणमें तथा बहुत स्वस्थ शारीरिक स्थितिमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखा जाता है जिसमें आनेवाला बच्चा सर्वोत्तम परिस्थितियोंमें आकार ग्रहण कर सके। यह स्पष्ट है कि बात ऐसी ही होनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करना मनुष्यके लिये संभव है। मनुष्य इतनी पर्याप्त मात्रामें विकसित हो चुके हैं कि वे ऐसा नहीं समझ सकते कि यह कोई असाधारण बात है। और फिर भी सच पूछा जाय तो, यह एक असाधारण बात है; क्योंकि ऐसे बहुत थोड़ेसे लोग होते हैं जो इस बातका विचार करते हैं, अधिकांश लोग इस बातका कोई विचार किये बिना ही बच्चे उत्पन्न करनेके आदी हैं। परंतु मनुष्यसे जिस बातकी कम-से-कम आशा की जाती है वह यह है कि उसे कुछ सचेतन होना चाहिये और जो कार्य उसे करना हो उसे सबसे उत्तम अवस्थाओंमें करना चाहिये।

अब, पूर्ण-आकार-प्राप्त सचेतन जीव जब जन्म लेना चाहता है तब वह साधारण तौरपर अपने चैत्य धामसे पृथ्वीके ऊपर किसी स्थानमें अपने अनुकूल चैत्य ज्योतिको खोजनेके लिये अपनी दृष्टि दौड़ाता है। अपने पूर्व जन्ममें, पार्थिव वातावरण छोड़नेसे पहले, उस जीवनमें प्राप्त अपने संपूर्ण अनुभवके फलस्वरूप, उसने अपने भावी जन्मकी अवस्थाओंको चुना था, पर पूर्ण ब्योरेके साथ नहीं, बल्कि मोटा-मोटी साधारण रूपमें। पर ऐसे उदाहरण बहुत विरल होते हैं। संभवतः यहां हम इसकी चर्चा कर सकते हैं, पर अधिकांश मानव-समाजके लिये, यहांतक कि अत्यंत शिक्षित लोगोंके विषयमें भी, यह प्रश्न नहीं उठता।

साधारण रूपमें हम यहां ऐसे जीवकी ही बात कर रहे हैं जो विकसित हो रहा है, जिसके विकासकी प्रक्रिया अभी चल रही है। अब, विकासकी बहुतेरी अवस्थाएं हैं, थोड़ा-सा चमकना आरंभ करनेवाली छोटी-से-छोटी चिनगारीसे लेकर पूर्ण सचेतन तथा पूर्णतः आकार-प्राप्त जीवतक अनेक श्रेणियां हैं। अपना निजी संकल्प रखनेवाली और अपनी निजी भवितव्यताका निश्चय करनेवाली एक पूर्ण सचेतन सत्ता बननेके लिये अंतरात्माका जो यह आरोहण है, उसके पूरा होनेमें प्रायः हजारों वर्ष लग जाते हैं।

परंतु, जब कोई मुक्त और सचेतन अंतरात्मा पृथ्वीपर फिरसे शरीर ग्रहण करना चाहता है तब वह जन्मके पहलेसे ही शरीरपर कार्य करना आरंभ कर देता है। ऐसी अवस्थामें ऐसा कोई कारण नहीं कि वह अपने माता-पिताके अज्ञानके कारण उत्पन्न असुविधाओंको न स्वीकार करे। उसने किसी कारणसे अपने स्थानको चुना है जो अज्ञानसंभूत कारण नहीं है : उसने एक ज्योति देखी थी—वह महज संभावनाकी ही ज्योति हो सकती है; परंतु वहां ज्योति थी और यही कारण है कि वह वहां आया था। और जब उसने चैत्य-लोकसे पृथ्वीकी ओर देखा और अपने जन्मके स्थानको चुना है तब उस चुनावमें पर्याप्त विवेक-शक्ति है जिससे वह कोई भारी भूल नहीं कर सकता।

सबसे उत्तम परिस्थितियोंमें भी, जब कोई जीव जान-बूझकर नीचे आता है और जब उसने भौतिक शरीरके निर्माणमें सज्ञान रूपसे कार्य किया है तो भी, जबतक शरीर सामान्य पश्वोचित ढंगसे निर्मित होता है तबतक, उसको संघर्ष करना ही होगा और जो कुछ इस मानवीय पशुत्वसे आता है उस सबको उसे सुधारना ही होगा।

माता-पिताओंकी स्वाभाविक रूपमें एक विशेष गठन होती है, उनका एक विशेष प्रकार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अच्छा या बुरा स्वास्थ्य होता है; बहुत उत्तम अवस्थामें भी, उनमें बहुतसी वंशपरंपरागत प्रवृत्तियां होती हैं, उनके अपने जन्म, पारिपार्श्विकता और जैसा जीवन वे बिताते हैं उस जीवनसे आनेवाले अभ्यास तथा अवचेतन और यहांतक कि सचेतन जटिल मानसिक ग्रंथियां भी होती हैं। और यदि वे, अपने निजी ढंगके, असाधारण व्यक्ति भी हों, यदि वे बहुत उत्तम प्रकारके, अत्यंत सचेतन व्यक्ति हों तो भी वे सामान्यतया ऐसी चीजोंकी एक खासी संख्या अपने अंदर लिये रहते हैं जो सच्चे चैत्य जीवनके विरुद्ध होती हैं। और जब माता-पिता अपने बच्चोंको अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देनेकी यथाशक्ति चेष्टा कर चुकते हैं तो भी बच्चे सब प्रकारके दूसरे लोगोंके संपर्कमें आते हैं जिनका बहुत अधिक प्रभाव उनपर पड़ता है, विशेषकर जब वे बहुत छोटे होते हैं; ये प्रभाव अवचेतनाके अंदर घुस जाते हैं और पीछे उन्हें उनसे संघर्ष करना पड़ता है।

अतएव मैं कहती हूं, वर्तमान समयमें जिस ढंगसे शरीर उत्पन्न होता है उसके कारण तुम्हें असंख्य कठिनाइयोंका मुकाबला करना पड़ता है, जो कम या अधिक अवचेतनासे आती हैं, जो ऊपरी चेतनामें आ जाती हैं और जिनके साथ, यदि तुम पूर्ण रूपसे मुक्त होना और स्वाभाविक रूपमें विकसित होना चाहो तो, तुम्हें युद्ध करना पड़ता है।

*
**

शरीरकी बात

शरीरकी थकावट एक आंतरिक असामंजस्यके कारण आती है। बाहरी दूसरे कारण बहुतसे हो सकते हैं, परंतु सबका फल होता है वही मूलगत परिस्थिति अर्थात् सत्ताके विभिन्न भागोंमें समतोलताका अभाव। यह समतोलताका अभाव एक ऐसे दिन हो सकता है जब, उदाहरणार्थ, तुम्हारे पास काफी शक्ति तो थी पर तुमने उसमेंसे बहुत अधिक शक्ति खर्च कर दी। परंतु साधारणतया बच्चोंके साथ ऐसा नहीं होता। वे खर्च करते हैं और तब-तक खर्च करते रहते हैं जबतक कि वे असमर्थ ही नहीं हो जाते। एक बच्चा अंतिम क्षण-तक बहुत क्रियाशील रहता है और उसके बाद ही वह गहरी नींद में चला जाता है। एक मिनट पहले वह इधर-उधर घूम रहा था, दौड़ रहा था, चिल्ला रहा था, अब एकाएक वह गहरी नींद में डूब जाता है। और इसी तरह वह बड़ा होता और शक्ति प्राप्त करता है। अतएव कठिनाई खर्च करनेमें नहीं है। खर्च की हुई शक्तिकी पूर्त्ति आसानीसे आवश्यक विश्रामके द्वारा की जा सकती है। थकावट और आलस्य भी एक दूसरे ही स्रोतसे आते हैं।

लोग समझते हैं कि जो कुछ वे रोज करते हैं बस उसे ही उन्हें निरंतर करते रहना चाहिये, एक ही कामको, चेतनाकी एक ही स्थितिमें रहते हुए नियमपूर्वक संपादित करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना चाहिये और फिर सब कुछ एकदम ठीक हो जायगा। पर बराबर बातें इसी ढंगसे नहीं घटित होतीं। एकाएक नियमित काम-काजके भीतर, तुम नहीं जानते कि क्यों और कैसे, तुम्हारी सत्ताका एक भाग--कोई भावना या विचार--उन्नति करता है, एक नयी चीजका आविष्कार करता है, एक प्रकारकी ज्योति या कोई उच्चतर प्रेरणा ग्रहण करता है। वह भाग मानो बाहरकी ओर निकल पड़ता है और आगे चला जाता है; अन्य अंग पीछे पड़े रह जाते हैं। इससे एक प्रकारका बेमेलपन उत्पन्न हो जाता है और वह थकावट लाने-के लिये, बहुत अधिक थकावट उत्पन्न करनेके लिये बिलकुल पर्याप्त होता है। परंतु वास्तव-में वह थकावट नहीं होती, बल्कि शांत बने रहनेकी, एकाग्र होनेकी, अपने अंदर बने रहनेकी तथा बेमेल अंगोंमें एक नया सामंजस्य तैयार करनेकी कामना होती है। और ऐसी स्थिति या काल बिलकुल आवश्यक होता है जो सीखी हुई बातोंको हजम करनेका, सभी अवयवोंमें सामंजस्य स्थापित करनेका काल होता है।

मनुष्य अपनी भौतिक सत्ता-संबंधी भीषण अज्ञानमें निवास करते हैं। तुम लोगोंमेंसे कितने लोग जानते हैं कि शरीरको ठीक-ठीक कितने भोजनकी और किस प्रकारके भोजनकी आवश्यकता है? हां, महज यही बात कि कितना खाना चाहिये और कब खाना चाहिये, तुम लोग नहीं जानते। तुम्हें सभी प्रकारकी बातें सिखायी जाती हैं। तुम पढ़ते हो कि क्यों और कैसे यह पृथ्वी घूमती है या सूर्य नहीं घूमता, क्यों और कैसे त्रिभुज दो समकोणों-से बना होता है: तुम्हारी कल्पना और विचार-विवेककी वृत्तियां कार्यमें लगा दी जाती हैं और तीक्ष्ण बन जाती हैं। परंतु इतना छोटासा सही ज्ञान तुम्हें नहीं होता--कितना भोजन तो तुम्हें लेना चाहिये और किस समय शरीरको उसकी आवश्यकता होती है। हो सकता है कि ठीक जिस समय उसकी आवश्यकता हो उस समय तुम उस विषयमें एकदम अनजान न होओ। परंतु उचित रूपमें जाननेके लिये एक साधनाकी, संभवतः वर्षों लगातार प्रयास करनेकी आवश्यकता होती है। और निश्चय ही उस समय तो तुम्हें वर्षों लग ही जाते हैं जब तुम्हारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अपने मनपर तुम्हें अधिकार जमाना चाहिये, एक ऐसी यथेष्ट सूक्ष्म चेतना प्राप्त करनी चाहिये जो तुम्हारा संपर्क रूपांतर और प्रगतिके तत्त्वोंसे करा दे, यह जानना चाहिये कि किस तरह अपने शरीरके लिये भौतिक प्रयास, स्थूल क्रियाकलाप और शक्ति खर्च करने और ग्रहण करनेकी ठीक-ठीक मात्रा निश्चित की जाती है, जो कुछ ग्रहण किया गया है और जो कुछ निकाल दिया गया है उन दोनोंके बीचका अनुपात कैसे निश्चित किया जाता है, किस तरह शक्तिका उपयोग करना चाहिय जिससे कि जो संतुलन भंग हो गया था वह फिरसे स्थापित हो जाय और उसके फलस्वरूप वे नये कोष आगेकी ओर ढकेल दिये जायं जो प्रगतिमें पीछे रह गये थे, और उसके बाद किस तरह ऐसी अवस्थाओंका निर्माण किया जाता है जिनमें ऊपरकी ओर प्रगति करनेके लिये आगेकी ओर एक पग उठाना संभव हो इत्यादि-इत्यादि। यह कार्य बहुत ही कठिन है। और फिर भी यह एक ऐसा काम है जिसे करना ही होगा यदि तुम चाहो कि शरीर भी रूपांतरित हो जाय। सबसे पहले, तुम्हें अपने शरीरको आंतरिक चेतनाके साथ संपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्वर बनाना होगा। इसका अर्थ है कि तुम्हें शरीरके प्रत्येक कोषमें, प्रत्येक छोटी-से-छोटी क्रियामें, सभी अवयवोंकी प्रत्येक गतिविधिमें काम करना होगा। और कुछ नहीं, बस वही एक काम तुम्हें दिन-रात व्यस्त रख सकता है और तुम अन्य किसी चीजकी ओर दृष्टि नहीं डाल सकते। इस प्रयासको, एकाग्रताको, सतत रूपमें कार्य करनेवाली इस आंतरिक दृष्टिको बनाये रखना आसान नहीं है।

यदि शरीरको अवतरित होनेवाली शक्तिका प्रत्युत्तर देना हो तो तुम्हें कोषोंके स्वभावमें, अपने आंतरिक भौतिक संगठनमें पैठ जाना होगा। सर्वप्रथम, तुम्हें अपने स्थूल कोषोंके विषयमें सचेतन होना होगा, उनकी विभिन्न क्रियाओंको, प्रत्येककी ग्रहणशीलताकी मात्राको, उनमें कौनसी अच्छी अवस्थामें है और कौन नहीं है आदि बातोंको जानना होगा। तुम तो इतनी मामूलीसी बातको भी नहीं जानते हो कि तुम थके हुए हो या नहीं, तुम क्यों थके हुए हो यह तो और दूरकी बात है। तुम यह नहीं जानते कि तुम्हें कहीं दर्द हो रहा है और वह दर्द वहां क्यों है। ठीक यही कारण है कि तुम डाक्टरके पास दौड़ा करते हो। क्योंकि तुम्हें भ्रम हो गया है कि डाक्टर तुम्हारे भीतर देखकर तुमसे अधिक अच्छे रूपमें यह जान जायगा कि तुम्हारे शरीरके अंदर क्या है और वहां क्या हो रहा है। यह बात बिलकुल ही युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होती पर अभ्यास ऐसा ही है। कौन भला अपने अंदर इतने सुनिश्चित, यथार्थ और स्पष्ट रूपमें देख सकता है कि वह ठीक-ठीक यह जान ले कि कौनसी चीज बिगड़ गयी है, वह क्यों बिगड़ गयी है, कैसे वह ऐसी हो गयी है? यह सब विशुद्ध पर्यवेक्षणकी बात है। और फिर केवल उसके बाद ही वह कार्य करनेका प्रश्न उठता जो एक नयी व्यवस्थाको उत्पन्न करेगा और उस नयी व्यवस्थाको उत्पन्न करना तो बहुत अधिक कठिन कार्य है। और फिर भी यह शरीरके रूपांतर-कार्यका महज श्रीगणेश ही है।

***

साधना शरीरमें ही करनी होगी!

कुछ लोग जीवनसे उकता जाते हैं। वे इस आशासे चले जाना चाहते हैं कि दूसरी बार जीवन अधिक अच्छा हो जायगा। परंतु हम तुमसे कहते हैं: अपने शरीरसे निकल भागनेमें कोई लाभ नहीं है, शरीरके बिना काम अधिक आसान नहीं हो जायगा। इसके विपरीत, वह और भी अधिक कठिन हो जायगा। यह शरीर तुम्हें योग करनेके लिये दिया गया है। हम लोग यहां पृथ्वीपर मौजूद हैं और सच पूछा जाय तो इस पृथ्वीपर अपने जीवन-कालमें ही हम प्रगति कर सकते हैं।

तुम पार्थिव जीवनसे बाहर जाकर उन्नति नहीं कर सकते। पार्थिव जीवन, यह स्थूल जीवन मूलतः उन्नति करनेका जीवन है। यहींपर हम विकसित होते और आगे बढ़ते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्थिव जीवनसे बाहर जाकर तुम विश्राम करते हो, अन्यथा तुम अचेतन पड़े रहते हो। तुम कहीं अन्यत्र आत्मसात् करनेके इस समयको, विश्रामके कालको या निश्चेतनताके कालको प्राप्त कर सकते हो। परंतु प्रगतिका काल प्राप्त करनेके लिये तुम्हें इस पृथ्वीपर और इस शरीरमें ही आना होगा।

अतएव, जब तुम शरीर ग्रहण करते हो तब वह उन्नति करनेके लिये होता है और जब तुम उसे छोड़ देते हो तब उन्नतिका काल समाप्त हो जाता है। सच्ची प्रगतिका अर्थ है साधना करना, दूसरे शब्दोंमें, अत्यंत सचेतन रूपसे और अत्यंत तीव्र गतिसे प्रगति करना। यों तो प्रकृति देवीके अग्रगमनके साथ-साथ भी एक प्रकारकी प्रगति होती है परंतु उसमें महज थोड़ासा आगे बढ़नेमें शताब्दियां और शताब्दियां, सैकड़ों शताब्दियां लग जाती हैं।

सच्ची प्रगति साधनाके द्वारा होती है। योगके द्वारा तुम एक ऐसा काम बहुत थोड़े समयमें कर सकते हो जिसमें दूसरी तरह बड़ा लंबा, प्रायः अनंत काल लग सकता है। परंतु सर्वदा यह पृथ्वीपर और शरीरके द्वारा ही किया जा सकता है, अन्यत्र नहीं। इसीलिये यह कहा जाता है कि जबतक तुम शरीरमें हो तबतक तुम्हें इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये, समय नष्ट नहीं करना चाहिये, ऐसा नहीं कहना चाहिये, 'पीछे देखा जायगा, पीछे देखा जायगा।' तुरत-फुरत यह काम करना ही कहीं अधिक अच्छा है। जो वर्ष तुम उन्नति किये बिना व्यतीत करते हो वे वर्ष बेकार चले जाते हैं, उनके लिये पीछे तुम सिर्फ पश्चात्ताप ही कर सकते हो।

* *

यहां इस पृथ्वीपर प्रत्येक मनुष्यके अंदर, वह चाहे कोई भी क्यों न हो और वह चाहे जो कुछ भी क्यों न हो, एक चैत्य पुरुष होता है, बस होता है विकासकी विभिन्न अवस्थाओंमें। परंतु शरीरधारी व्यक्तिमें अनेक दूसरी चीजें भी होती हैं, जैसे, चेतनाकी स्थितियां और आकार। पृथ्वीपर उसका कार्य है इन सब चीजोंको रूपांतरित करना जो मानो उसे रूपांतरका कार्य करनेके लिये दिये हुए विश्वके अंग हों। और, यदि अपने निजी व्यक्तित्वसे परे उसे कोई विशालतर कार्य भी करना हो तो भी वह उसे तबतक नहीं कर सकता जबतक कि वह अपने व्यक्तिगत कार्यको सबसे पहले नहीं कर लेता। तुम अपनेसे बाहरके जगत्को तबतक नहीं बदल सकते जबतक तुम अपने निजी स्वरूपमें परिवर्तन लाना आरंभ नहीं करते। यह सबसे पहली और अनिवार्य शर्त्त है और यह, चाहे कोई युवक हो या वृद्ध, छोटा हो या बड़ा, सबके लिये सत्य है। बस, इसी कामके लिये चैत्य पुरुषको यह जीवन प्रदान किया गया है: उन्नति करनेका सुअवसर बस मनुष्यको ही प्राप्त है। पार्थिव जीवनकी अवधि प्रगति करनेकी अवधि है। पार्थिव जीवनसे परे कोई प्रगति नहीं होती। केवल पार्थिव जीवनमें ही प्रगति करनेकी संभावना तथा साधन मौजूद हैं। अतएव मनुष्यको अपनी ही प्रगतिसे आरंभ करना चाहिये। जब अपने अंदर यह कार्य हो जायगा तब उसके बाद ही वह अन्यत्र आरंभ हो सकता है। पर सबसे पहले अपने घरमें काम करना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तुम कायर बनते हो तब तुम अपनी ही हत्या करने जाते हो। चैत्य पुरुष कोई निश्चित उद्देश्य लेकर किन्हीं विशेष अनुभवोंको एकत्र करनेके लिये, कुछ सीखनेके लिये, प्रगति करनेके लिये आता है। यदि इस कामके होनेसे पहले तुम चले जाओ तो तुम्हें वापस आना होगा और इसे फिर करना पड़ेगा, पर करना पड़ेगा पहलेसे भी बहुत अधिक कठिन परिस्थितियोंमें। एक जीवनमें तुम जो कुछ टाल दोगे उसे तुम कहीं अधिक कठिन रूपमें फिरसे प्रकट होते हुए देखोगे। बहुत दूर न जाकर, उदाहरणके रूपमें तुम अपने जीवनकी इस मामूली कठिनाईको, जो परीक्षा तुम्हें पास करनी है उसीको, ले लो। अगर तुम इसे पास न करो, अगर तुम इससे पीठ फेर लो, तो तुम्हें इसे दूसरी बार पास करना ही होगा और उस बार वह अधिक कठिन हो जायगी।

मनुष्य कितने अज्ञानी हैं! वे समझते हैं कि जीवन भी है और मृत्यु भी, जीवन कष्टोंका एक ढेर है, मृत्यु शांति देती है। परंतु बात बिलकुल ही ऐसी नहीं है। सामान्यतया जब कोई अस्वाभाविक ढंगसे जीवनसे बाहर चला जाता है, किसी अज्ञानपूर्ण और अंधकारमय आवेगसे अभिभूत होकर चला जाता है तब वह सीधे प्राणमय लोकमें प्रवेश करता है जो सब प्रकारके ऐसे आवेगों तथा अज्ञानपूर्ण गतिविधियोंसे बना हुआ है। जिस कठिनाईसे वे बचना चाहते हैं वह फिर उनके सामने उपस्थित हो जाती है, पर अब उनके पास वह संरक्षण नहीं होता जो शरीर उन्हें प्रदान करता है। यदि तुम्हें कभी कोई दुःस्वप्न आया हो अर्थात् तुमने कभी प्राणमय लोकमें साहसपूर्वक विचरण किया हो तो तुम्हें पता होगा कि उसमेंसे निकल आनेके लिये तुम जग जाते हो, दूसरे शब्दोंमें, तुम अपने शरीरमें वापस भाग आते हो। पर जब तुम जान-बूझकर अपना शरीर नष्ट कर देते हो तब तुम अपनी सुरक्षाका कवच खो देते हो। उस अवस्थामें तुम्हें निरंतर दुःस्वप्नमें रहना होगा। यह बहुत सुखदायी अवस्था नहीं है।

दुःस्वप्नसे बचनेके लिये तुम्हें अपनी चैत्य चेतनामें निवास करना होगा; क्योंकि, जब तुम उस चेतनामें रहते हो तब कोई चीज तुम्हें तकलीफ नहीं देती और न तुम्हें दुश्चिंता प्रदान करती है। जब तुम अज्ञानकी क्रियामें संलग्न रहते हो केवल तभी तुममें खतरेका सामना करनेके लिये न तो साहस होता है न बल।

कायरता आती कहांसे है?

अज्ञानसे आती है। अज्ञान ही सभी बुराइयोंका कारण है। परंतु मेरा ख्याल है कि जब कोई तामसिक होता है, अर्थात् प्रयास करनेसे डरता है तब वह कायर बन जाता है।

*
**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन

मैं समझती हूं कि आदिम मनुष्य पशुओंके बहुत समीप था। वह बुद्धिकी अपेक्षा सहज-प्रेरणाके द्वारा अधिक जीवन यापन करता था। वह बिना किसी निश्चित नियमके जब भूखा होता था तभी खाता था। हो सकता है कि उसकी अपनी रुचि और पसंद भी हो, पर इस विषयमें हम अधिक कुछ नहीं जानते; परंतु यह हम जानते हैं कि वह बहुत अधिक शारीरिक जीवन यापन करता था और आजकलकी तरह उसका मानसिक अथवा प्राणिक जीवन बहुत कम था।

मूलतः, बहुत कुछ पशुकी भांति ही, मनुष्य भी अपने स्वभावमें अत्यंत भौतिक था अर्थात् शरीर और उसकी आवश्यकताओंके अंदर ही उसकी चेतना आबद्ध थी; फिर अनेक शताब्दियों या सहस्राब्दियोंकी अपनी क्रमोन्नतिके द्वारा वह अधिकाधिक मानसिक, अधिकाधिक प्राणिक बना। और जैसे-जैसे वह अधिकाधिक मानसिक और अधिकाधिक प्राणिक बनता गया वैसे-वैसे उसके सुसंस्कृत होनेकी संभावना भी उत्पन्न होने लगी, उसमें बुद्धि बढ़ने लगी, पर साथ ही विच्युति और विकृतिकी संभावना भी पैदा हो गयी। यह एक बात है कि हम अपनी इंद्रियोंको इस प्रकार शिक्षित करें कि उनमें प्रत्येक प्रकारका उत्कर्ष आ जाय, उनका विकास हो, उनमें ज्ञान, मूल्यांकनकी शक्ति, सुरुचि आदि उत्पन्न हो, अर्थात् चेतनामें प्रगति हो; पर यह एकदम अलग ही बात है कि हम अपनी इंद्रियके विषयके प्रति आसक्त हो जायं, लोभ-लालसाका पोषण करें, महा पेटू बन जायं।

तुम रस (स्वाद) का बहुत विशद अध्ययन कर सकते हो, उदाहरणार्थ, तुम विभिन्न वस्तुओंके विभिन्न स्वादोंका, स्वादसे संबंधित भावनाओं या धारणाओंका विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकते हो, जिसका अर्थ शायद प्राणकी उन्नति नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है कम-से-कम इस विशेष इंद्रियका विकास। यह चीज तो विधेय है पर इसमें और लोभके वश खानेमें, सदा-सर्वदा भोजनकी ही बात सोचते रहनेमें, आवश्यकताके वश नहीं बल्कि भोजनकी वासना और पेटूपनके कारण खानेमें जमीन-आसमानका अंतर है।

सच पूछा जाय तो जो लोग अपने स्वादको विकसित करनेकी चेष्टा करते हैं उनमेंसे बहुत कम लोग ही भोजनके प्रति अत्यधिक आसक्त होते हैं। वे खानेके लिये नहीं, बल्कि अपनी इंद्रियोंको विकसित और परिमार्जित करनेके लिये अपने स्वादको उन्नत करनेका अभ्यास करते हैं। इसी तरह एक कलाकार, जैसे चित्रकार, अपनी आंखोंको शिक्षित करता है जिसमें कि वह यह जान सके कि भौतिक प्रकृतिमें पाये जानेवाले रूप और रंगके, रेखा और रेखा-चित्रके, रचना और सामंजस्यके सौंदर्यका मूल्यांकन कैसे किया जाता है। उसे महज कामना या भूख ही परिचालित नहीं करती, बल्कि दर्शनेन्द्रियका रस, संस्कार और विकास, सौंदर्यका मूल्यांकन ही होता है उसका मुख्य कार्य। साधारणतया जो कलाकार सच्चे कलाकार होते हैं, जो अपनी कलाको प्यार करते और उसे अपने जीवनमें उतारते हैं, जो सौंदर्यकी खोज करते हैं, उनमें बहुत अधिक कामनाएं नहीं होतीं। वे अपने रसात्मक बोधमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवास करते हैं, अपनी इंद्रियोंमें वास करते हैं जो सौंदर्यका भोग और सृजन करनेकी ओर मुड़ी होती हैं। वे ऐसे लोग नहीं होते जो अपने प्राणगत प्रवेगों और शारीरिक कामनाओं-के द्वारा जीवन यापन करते हैं।

साधारण तौरपर, अपनी भद्दी सहजप्रेरणा और कामना और आवेगकी क्रियाओंको सुधारनेका उपाय है इंद्रियोंको सुशिक्षित, सुसंस्कृत और परिमार्जित करना। उन्हें नष्ट कर डालना उन्हें सुधारना नहीं है। बल्कि उन्हें तो उन्नत करना होगा, बौद्धिक रूपमें ढालना होगा और सुंदर रूप प्रदान करना होगा। यही उन्हें सुधारनेका सबसे अधिक अचूक उपाय है। चेतनाकी प्रगति और विकासकी दृष्टिसे उन्हें इस प्रकार अधिक-से-अधिक विकसित करना चाहिये जिसमें कि मनुष्य सामंजस्य-बोध और यथार्थ अवलोकन-शक्ति प्राप्त कर सके। मानव-सत्ताकी संस्कृति और शिक्षाका यह भी एक अंग है। मनुष्य अपनी बुद्धिको इसी भांति उन्नत करते हैं। वे पढ़ते हैं, सोचते हैं, तुलना करते और अंतर समझते हैं, वे इस तरह एक प्रकारका अध्ययन करते हैं। इससे उनका मन विस्तारित होता है, वह उन लोगोंके मनकी अपेक्षा अधिक विशाल और अधिक व्यापक हो जाता है जो मानसिक शिक्षाके बिना जीवन यापन करते हैं, जिनमें महज थोड़ेसे विचार होते हैं और वे भी शायद एक-दूसरेके विरोधी। वैसे लोग पूर्ण रूपसे उन्हीं विचारोंके द्वारा चालित होते हैं, क्योंकि उनके पास दूसरे विचार होते ही नहीं; वे समझते हैं कि केवल ये ही विचार ऐसे हैं जिनके द्वारा उन्हें परिचालित होना चाहिये। ऐसे मन अत्यंत संकीर्ण और सीमित होते हैं। दूसरी ओर, जिन लोगोंने अपनी बुद्धिको समुन्नत किया है, जिन्होंने अध्ययन और चिंतन किया है, जिन्होंने अपने मनके क्षेत्रको थोड़ा विस्तृत किया है और इसलिये जो अन्य विचारों और संभवनीय धारणाओंको देख सकते और ध्यानमें रख सकते तथा उनका मिलान कर सकते हैं, उन्हें सहज ही यह मालूम हो जाता है कि किसी सीमित विचार-समूहके प्रति आसक्त होना और बस उसे ही सत्यकी अभिव्यक्ति समझना महज अज्ञान और मूर्खता है।

रुचिका यह प्रशिक्षण, इंद्रियोंका यह शिक्षण चेतनाको उच्चतर विकासके लिये तैयार करनेका एक बहुत अच्छा और आवश्यक साधन है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपने स्व-भावमें बहुत अनगढ़ और अत्यंत सरल होते हैं। उन्हें एक प्रबल अंतःप्रेरणा प्राप्त हो सकती है और वे एक विशिष्ट आध्यात्मिक उन्नतितक पहुंच सकते हैं, परंतु नींव सदा ही निम्न कोटिकी एक चीज बनी रह जायगी; और जब वे अपनी साधारण चेतनामें वापस आयेंगे तब वे वहां महान् बाधाओंके सम्मुखीन होंगे; क्योंकि वहां असली सत्त्व ही गायब होगा, वहां तो प्राणगत और शारीर चेतनामें वे तत्त्व ही पर्याप्त मात्रामें नहीं हैं जो निम्न आधार-को उच्चतर शक्तिके अवतरणको धारण करनेकी क्षमता प्रदान कर सकें।

उपवास भला किस तरह ग्रहणशीलताकी अवस्था ले आता है?

साधारणतया प्राणपुरुष बहुत अधिक शरीरमें केंद्रीभूत होता है। और जब शरीर अच्छी तरह भोजन पाता है तब वह भोजनके द्वारा अपनी शक्ति-सामर्थ्य प्राप्त करता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जीवनकी वर्तमान अवस्थाओंमें शक्ति आत्मसात् करनेका एक तरीका है, प्रायः एकमात्र तरीका है, कम-से-कम अधिक महत्त्वपूर्ण तरीका है, परंतु है यह तामसिक।

यदि तुम इस विषयपर विचार करो तो तुम सहज ही यह स्वीकार करोगे कि जिस शक्तिको हम इस तरह अपने अंदर लेते हैं वह वही प्राण-शक्ति है जो पौदों या पशुओंमें होती है और युक्तिकी दृष्टिसे देखें तो यह उस शक्तिसे निम्नतर कोटिकी होती है जो कि मनुष्यकी होनी चाहिये, क्योंकि वह तो योनियोंकी परंपरामें एक उच्चतर स्तरका प्राणी माना जाता है। अतएव अचेतनताकी एक बहुत बड़ी मात्राको चूसे बिना कुछ खाना असंभव है। अनिवार्यतः यह चीज तुम्हें भारी और घनीभूत बना देती है। और यदि तुम्हें अधिक खानेका अभ्यास हो तो तुम्हारी चेतनाका अधिक भाग जो कुछ तुम खाते हो उसे पचाने और आत्मसात् करनेमें ही संलग्न रहता है। अतएव यदि तुम भोजन न करो तो यह बात तुम्हें इस अचेतनतासे मुक्त रखती है जिसे कि अब तुम्हें अपने अंदर आत्मसात् करने और रूपांतरित करनेकी कोई आवश्यकता नहीं; यह चीज तुम्हारे अंदरकी शक्तिको स्वतंत्र कर देती है। फिर, चूकि खर्च की हुई शक्तिको पूरा करनेकी सहजवृत्ति सत्तामें मौजूद है, इसलिये उसे यदि तुम भोजनसे अर्थात् नीचेकी ओरसे, एकत्र नहीं करते तो तुम स्वाभाविक रूपसे ही उसे अपने चारों ओर खुले रूपमें विद्यमान विश्वगत प्राणशक्तिसे खींचनेका प्रयास करते हो। और यदि तुम उस शक्तिको आत्मसात् कर सको, सीधा उसे अपने अंदर ले सको तो तुम्हारी शक्तिकी कोई सीमा नहीं रहेगी।

यह कार्य तुम्हारे पेटके कार्य जैसा नहीं है जो भोजनका एक सीमित परिमाण ही हजम कर सकता है और फिर वह भोजन अपनी शक्तिका एक अंश ही—बहुत थोड़ासा अंश ही—प्रदान कर सकता है। क्योंकि खाने, चबाने और हजम करने आदिमें शक्ति खर्च करनेके बाद उसका कितनासा अंश और प्राप्त करने योग्य बाकी रह जाता है? परंतु दूसरी ओर यदि तुम सहजभावसे—क्योंकि यह एक प्रकारकी सहजवृत्ति है—जगत्में खुले तौरपर प्राप्य और चाहे जितनी मात्रामें प्राप्य विश्वशक्तिसे आहरण करना सीख लो तो तुम उतनी मात्रामें उसे अपने अंदर ले सकोगे और आत्मसात् कर सकोगे जितनी मात्रामें लेने और आत्मसात् करनेकी क्षमता तुममें है। इस प्रकार, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, जब नीचेसे भोजनसे आनेवाला सहारा नहीं मिलता तब शरीर अपने परिपार्श्वसे इच्छित शक्ति पानेकी एक स्वाभाविक चेष्टा करता है। वह शक्ति उसे कभी-कभी प्राप्त होती है, आवश्यकतासे अधिक प्राप्त होती है, यहांतक कि अतिरिक्त रूपमें प्राप्त होती है और उसके कारण तुम एक प्रकारकी तनावकी स्थितिमें आ जाते हो, या शक्तिसे भरपूर हो उठते हो। और यदि तुम्हारा शरीर मजबूत हो और कुछ समयतक भोजनके बिना रह सकता हो तो तुम अपनी समतोलता बनाये रख सकते हो और सभी तरीकोंसे शक्तियोंका उपयोग कर सकते हो—जैसे, आंतरिक उन्नति करनेमें, अधिक सचेतन होनेमें, अपने स्वभावको परिवर्त्तित करने आदिमें व्यवहार कर सकते हो। परंतु तुम्हारे शरीरमें यदि अधिक शक्ति सुरक्षित न हो, वह उपवासके कारण आसानीसे दुर्बल हो जाय, तो फिर आत्मसात् की हुई शक्तियोंकी तीव्रता तथा उन्हें धारण करनेकी शरीरकी क्षमताके बीच एक प्रकारका असामंजस्य उत्पन्न हो जाता है

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वह तुम्हें विपर्यस्त कर देता है। तुम अपना सम-भाव खो बैठते हो, शक्तियोंका संतुलन भंग हो जाता है और कुछ भी घटित हो सकता है। किसी भी दशामें, यदि ऐसी बात घटित हो तो, तुम आत्मसंयमका बहुतसा अंश खो बैठते हो, तुम उत्तेजित हो जाते हो और इस अस्वाभाविक उत्तेजनाको तुम चेतनाकी एक उच्चतर अवस्था समझते हो। परंतु यह तो एक आंतरिक असमताकी अवस्था है, इससे अधिक कुछ नहीं। अन्यथा, उस स्थितिमें तो तुम्हारी इंद्रियां शुद्ध और ग्रहणशील बन जाती हैं। इस तरह जब तुम उपवास करते हो और नीचेसे शक्ति नहीं आहरण करते तब तुम यदि कोई फूल सूंघते हो तो तुम अपने अंदर शक्ति अनुभव करते हो, जो सुगंध तुम सांसके साथ खींचते हो वह भोजनका काम करती है, वह तुम्हें शक्ति देती है और उपवास किये बिना तुमने इस बातको कभी न जाना होता।

इस उपवासकी स्थितिमें कुछ वृत्तियां बड़ी तेज हो जाती हैं और इसे एक आध्यात्मिक प्रभाव माना जाता है। पर सच पूछा जाय तो आध्यात्मिकताके साथ इसका बहुत थोड़ा ही संबंध होता है। जो हो, निरंतर भोजनके विषयमें ही सोचते रहने, कैसे भोजन प्राप्त किया जाय और खाया जाय इसी चिंतामें डूबे रहनेके बदले, यदि कोई भोजनके विषयमें ही संलग्न रहनेके बंधनसे मुक्त होनेके लिये, चेतनाकी क्रमपरंपरामें थोड़ासा ऊपर उठनेके लिये उपवासका आश्रय ले तो यह एक अच्छी ही बात होगी। अगर तुममें विश्वास हो तो उपवाससे तुमको लाभ ही होगा, यह तुम्हें शुद्ध करेगा, थोड़ी प्रगति करनेमें तुम्हारी सहायता करेगा। इस दृष्टिसे यह ठीक ही है; यह हमारे शरीरको भी कोई हानि नहीं पहुंचायेगा सिवा इसके कि वह थोड़ा पतला हो जाय। परंतु तुम यदि उपवास करो और फिर बार-बार भोजनकी ओर मुड़कर जो भोजन तुमने खाया होता या उपवासके बाद जो भोजन खानेकी संभावना हो, उसकी बात सोचो तो, सच जानो, ऐसा उपवास भूरि-भोजनसे भी कहीं बुरा है।

'ब्लू बर्ड' (Blue Bird) नामक पुस्तकके लेखक मैटरलिकका नाम तुम लोगोंने जरूर सुना होगा; वह बड़े ही स्थूलकाय व्यक्ति थे। उन्हें चूंकि थोड़ासा सौंदर्य-बोध था इसलिये वह मोटेपनको नापसंद करते थे और उसे कम करनेके लिये या उसे एक सीमाके अंदर बनाये रखनेके लिये नियमपूर्वक सप्ताहमें एक दिन उपवास किया करते थे। चूंकि वह बुद्धिमान् व्यक्ति थे, वह उस दिन भोजनकी कोई बात नहीं सोचा करते थे, बल्कि वह पढ़ने और लिखनेमें पूर्ण रूपसे संलग्न रहते थे। उपवास उनके लिये उपयोगी सिद्ध हुआ।

तात्पर्य बस यह है: तुम्हें भोजनकी बात बिलकुल नहीं सोचनी चाहिये: तुम्हें अपने जीवनको इतने स्वाभाविक रूपमें संयमित कर लेना चाहिये कि तुम्हें उसके विषयमें सोचना ही न पड़े। निश्चित समयपर भोजन करो, समुचित रूपमें—शांत-स्थिर भावसे, व्यवस्थित रूपमें भोजन करो। बहुत अधिक मत खाओ; क्योंकि उस हालतमें तुम्हें पचानेकी फिक्र करनी होगी और वह एक दुःखदायी बात होगी; वह तुम्हारा समय नष्ट करेगी। बस, जितना आवश्यक हो उतना भोजन करो। तुम्हें समस्त कामना और आकर्षणका, समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणगत क्रियाओंका त्याग कर देना चाहिये। जब तुम केवल इस कारण खाते हो कि शरीरको भोजनकी आवश्यकता है तब शरीरको भोजनकी ठीक आवश्यक मात्रा प्राप्त हो जाते ही बहुत ठीक-ठीक और स्पष्ट रूपमें वह तुम्हें उसकी सूचना दे देता है। जब तुम अपने मनमें कोई धारणा बना रखते हो या अपने प्राणमें वासनाएं पोस रखते हो, उदाहरणार्थ, जब तुम कोई खास चीज खाना अधिक पसंद करते हो तभी तुम आवश्यक परिमाणसे कई गुना अधिक खा जाते हो तथा अपने शरीरपर जुल्म करते हो और उसके स्वाभाविक बोधको नष्ट कर देते हो।

*
**

मांस-भोजन

जब कोई मांस खाता है तब क्या होता है?

मैं तुम लोगोंको इस विषयकी एक कहानी सुनाऊंगी। स्विडेनकी एक युवती महिलासे मेरा परिचय था जो साधना कर रही थी। सामान्यतया अभ्यास और प्रवृत्तिकी दृष्टिसे वह शाकाहारी थी। एक दिन उसे एक जगह भोजनके लिये निमंत्रित किया गया और उसे मुर्गीका मांस खानेको दिया गया। वह उस विषयमें कोई शोर-गुल नहीं मचाना चाहती थी, इसलिये उसने अपने सामने परोसा हुआ मांस खा लिया। अब रातको, निश्चय ही स्वप्नमें, उसने देखा कि वह एक टोकरीमें है और उसका सिर दो छड़ियोंके बीच दबाकर इधर-उधर हिलाया जा रहा है। उससे उसे बड़ी बेचैनी हुई, बड़ा दुःख हुआ। और फिर उसने देखा कि उसका सिर नीचे है और पांव ऊपर आसमानमें हैं तथा उसे हिलाया जा रहा है, लगातार हिलाया जा रहा है। वह पूर्ण रूपसे दुःखी हो गयी। फिर अचानक उसने अनुभव किया कि उसकी खाल उतारी जा रही है। कितना दुःखपूर्ण था यह सब! और फिर कोई एक छुरी लेकर आया और उसने उसका सिर काट दिया। बस तुरत उसकी नींद टूट गयी। उसने मुझे यह कहानी सुनायी और कहा कि मैंने अपने जीवनमें कभी इतना भयानक दुःस्वप्न नहीं देखा था। उसने सोनेसे पहले इस तरहकी किसी बातका चिंतन नहीं किया था; महज उस गरीब मुर्गीकी चेतना उसके अंदर घुस गयी होगी और उसने उस पक्षीके उन सब दुःखोंका अनुभव स्वप्नमें किया जब कि उसे बाजार ले जाया जा रहा था, उसके पंख उखाड़े गये थे और अंतमें उसका सिर अलग कर दिया गया था। बस, यही होता है। दूसरे शब्दोंमें, जो भोजन तुम ग्रहण करते हो उसके साथ-साथ तुम कम या अधिक मात्रामें उस पशुकी चेतना भी आत्मसात् करते हो जिसका मांस तुम भक्षण करते हो। निस्संदेह, इसमें कोई बड़ी गंभीर बात नहीं है, पर यह सर्वदा बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखदायी भी नहीं होती। फिर भी यह स्पष्ट है कि यह पशुत्वकी ओर जानेकी अपेक्षा मनुष्यत्वकी ओर जानेमें बहुत अधिक सहायता नहीं करती। हम जानते हैं कि आदिम मनुष्य पशु-स्तरके बहुत अधिक निकट थे और वे कच्चा मांस खाया करते थे; उससे उन्हें स्पष्ट ही पकाये मांसकी अपेक्षा अधिक बल और शक्ति-सामर्थ्य प्राप्त होता था। वे एक पशुको मारते थे, उसे टुकड़े-टुकड़े काटते थे और फिर मांस चबा जाते थे। इसी कारण उनका शरीर लंबा-चौड़ा और शक्तिशाली होता था। और संभवतः यही कारण था कि उनकी अँतड़ियोंमें 'अपेण्डिक्स' (appendix) नामक एक उपांग होता था जो आजकलकी अपेक्षा बहुत बड़े आकारका होता था; क्योंकि उसे कच्चा मांस पचाना पड़ता था। परंतु पीछे चूंकि मनुष्योंने अपना भोजन पकाना आरंभ किया और इस तरह इसे उन्होंने अधिक स्वादिष्ट अनुभव किया, इसलिये वह उपांग भी धीरे-धीरे आकारमें छोटा होता गया और अंतमें एकदम बेकार रह गया; अब उसका कोई उपयोग नहीं है, यह अब एक बोझ भर है और प्रायः बीमारीका कारण बनता है। इसका मतलब है कि भोजनमें परिवर्तन लानेका समय आ गया है और हमें कम पाशविक चीजें लेनी चाहियें। परंतु यह प्रत्येक व्यक्तिकी चेतनाकी अवस्थापर निर्भर करता है। जो साधारण मनुष्य साधारण जीवन बिताता है, साधारण अभीप्साएं रखता है, अपनी जीविका कमाने, अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने और अपने परिवारका पालन करनेके सिवा और कुछ नहीं सोचता, उसे विशुद्ध स्वास्थ्यसंबंधी कारणोंके अतिरिक्त अन्य दृष्टिसे देखने और चुनाव करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। वह मांस या और कोई चीज खा सकता है जो उसे सहायक और उपयोगी प्रतीत हो, उसे लाभ पहुंचानेवाली मालूम हो।

परंतु तुम यदि साधारण जीवनसे हटकर किसी उच्चतर जीवनमें आना चाहो तो प्रश्न थोड़ा गंभीर बन जाता है। और फिर, एक उच्चतर जीवनके लिये तुम और भी अधिक ऊपर उठना चाहो और रूपांतरित होनेके लिये अपनेको तैयार करना चाहो तब तो यह समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाती है। क्योंकि कुछ खाद्य ऐसे होते हैं जो शरीरको अधिक सूक्ष्म और उन्नत होनेमें सहायता करते हैं तथा दूसरे उसे पशुत्वके स्तरपर बांधे रखते हैं। परंतु केवल तभी (उच्चतर जीवन लेनेकी इच्छा होने पर ही) यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो उठता है, उससे पहले नहीं। इस अवस्थातक पहुंचनेके पहले तुम्हें बहुतेरी दूसरी चीजें करनी होंगी। निश्चय ही यह अधिक अच्छा है कि शरीरको शुद्ध करनेकी बात सोचनेसे पहले तुम अपने मनको शुद्ध करो, अपने प्राणको शुद्ध करो। क्योंकि, यदि तुम सब प्रकारकी संभवनीय सावधानियोंको बरतो और शरीरकी दृष्टिसे हर तरहकी चौकसी रखते हुए जीवन यापन करो तथा केवल वे ही चीजें खाओ जो शरीरको शुद्ध करनेमें सहायक हों, पर मन और प्राण कामना-वासना, निश्चेतना, अंधकार एवं अन्यान्य सभी चीजोंसे भरे हुए रहें तो तुम्हारी सावधानी और चौकसीका कोई लाभ नहीं होगा। तुम्हारा शरीर शायद कमजोर हो जायगा, तुम्हारे आंतरिक जीवनके साथ उसका सामंजस्य भंग हो जायगा और एक दिन वह मृत्युको प्राप्त हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें अंदरसे आरंभ करना होगा। मैंने सैकड़ों बार कहा है कि तुम्हें ऊपरसे आरंभ करना होगा। तुम्हें सबसे पहले उच्चतर क्षेत्रोंको पवित्र बनाना होगा और उसके बाद निम्नतर क्षेत्रोंको। इससे मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम्हें सब प्रकारके कुसंयमका दास बन जाना चाहिये और शरीरकी अधोगति करनी चाहिये। मेरे कहनेका यह अर्थ कदापि नहीं है। मैं तुम्हें यह सलाह नहीं देती कि तुम अपनी कामनाओंको संयमित मत करो। मेरा मतलब बस यह है: जबतक तुम अपने मन और अपने प्राणमें भी देवदूत नहीं बन जाते तबतक शरीरमें वैसा बननेकी कोशिश मत करो। क्योंकि ऐसा करनेसे एक प्रकारका विच्छेद, समतोलताका अभाव उत्पन्न हो जायगा। और मैंने सर्वदा ही कहा है कि समतोलताको बनाये रखनेके लिये सभी अंगोंको एक साथ उन्नति करनी चाहिये। अपने एक भागमें ज्योति उतारनेकी चेष्टा करते हुए तुम्हें अन्य भागको अंधकारमें नहीं छोड़ देना चाहिये। तुम्हें कहीं किसी कोनेको अंधकारपूर्ण नहीं रहने देना चाहिये।

*
**

श्रद्धा और प्रगति

जब कोई आदमी प्रयास करता है और थोड़ी प्रगति करता है तब वह संतुष्ट हो जाता है और उसके लिये वह फूला नहीं समाता। इससे सब चीज नष्ट हो जाती है। इस दोषसे कैसे छुटकारा पाया जाय?

इसका कारण यह है कि मनुष्य कोई काम करते समय स्वयं अपनी ओर ताकता रहता है। यह एक आदत है कि मनुष्य जब कोई काम करता है या कोई जीवन यापन करता है तो वह निरंतर अपने-आपको देखता रहता है। निश्चय ही तुम्हें अपने-आपको देखना होगा; पर उससे भी अधिक तुम्हें सच्चा और स्वाभाविक बनना होगा—जो कुछ तुम करो उसमें स्वाभाविक बनना होगा अर्थात् सहजभावसे काम होने देना होगा और सर्वदा अपनी ही ओर मुड़कर अपने विषयमें विचार या आलोचना—कभी-कभी तो कठोर आलोचनातक करनेसे विरत रहना होगा। अपना ही विचार करना और अपने विषयमें नुकता-चीनी करते रहना भी उतना ही बुरा होता है जितना कि संतोषके साथ अपनी पीठ ठोकना।

तुम्हें अपनी अभीप्सामें सच्चा होना चाहिये, तुम्हें यह जाननेतककी आवश्यकता नहीं कि तुम किस बातकी अभीप्सा करते हो: तुम्हें तो स्वयं वह अभीप्सा ही बन जाना चाहिये। जब तुम ऐसा कर पाते हो तब तुम एक असाधारण शक्तिका अनुभव करते हो। ऐसे अनुभवका एक क्षण तुम्हें वर्षों प्रगति करते रहनेके लिये तैयार कर देता है। जब तुम कोई व्यक्ति नहीं रह जाते, वह अहंकार नहीं रह जाते जो बराबर अपनी ही ओर ताकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है, जब तुम स्वयं वह कर्म बन जाते हो जिसे तुम करते हो—विशेषकर अभीप्साके कार्यमें—तब, मैं कह सकती हूं कि, उससे बेहतर और कोई बात नहीं हो सकती। जब अभीप्सा करनेवाला कोई व्यक्ति नहीं रह जाता तब अभीप्सा घनीभूत वेगके साथ ऊपरकी ओर दौड़ जाती है, साधक बहुत दूरतक चला जा सकता है। अन्यथा साधकमें अहंकार, स्वाभिमान, यहांतक कि आत्मदया, सब प्रकारकी क्षुद्र क्रियाओंका मिश्रण होता है जो सारा मामला ही चौपट कर देती हैं।

श्रद्धाके अवतरणके लिये क्या शर्त्तें हैं?

अत्यंत महत्त्वपूर्ण शर्त्त है भरोसा होना, बालक-जैसा भरोसा होना, ऐसे सच्चे बोधका होना जो यह जानता है कि आवश्यक वस्तुएं आयेंगी और इस विषयमें कोई संदेह नहीं है। जब किसी बच्चेको किसी चीजकी आवश्यकता होती है तब उसे निश्चय होता है कि वह चीज आ रही है। इस तरहका सरल भरोसा या निर्भरता अत्यंत महत्त्वपूर्ण शर्त्त है।

हमें अभीप्सा करनी चाहिये, यह अनिवार्य है; परंतु कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अभीप्सा तो करते हैं पर उनके अंदर श्रद्धा और अश्रद्धामें, विश्वास और अविश्वासमें, विजयके विषय-में सुनिश्चित आशा तथा संहारके आनेके लिये ठीक प्रतीक्षा करती हुई निराशामें इतना अधिक संघर्ष चला करता है। यदि तुम्हारी सत्ताकी ऐसी ही स्थिति हो तो तुम अभीप्सा कर सकते हो पर उसका फल कुछ भी नहीं होगा। तुम कहते हो, "मैं अभीप्सा तो करता हूं पर पाता कुछ भी नहीं हूं।" इसका कारण यह है कि तुम विश्वासकी कमीके द्वारा निरंतर अपनी अभीप्साका नाश कर रहे हो। परंतु तुममें यदि वास्तवमें विश्वास हो तो फिर बातें भिन्न प्रकारकी हो जायंगी। उदाहरणार्थ, जब बच्चोंको स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है, जब वयस्क लोगोंके द्वारा उनमें कोई विकृति नहीं उत्पन्न की जाती तब उनमें एक प्रकार-का बड़ा ही दृढ़ विश्वास होता है कि सब कुछ ठीक ही होगा। जब उन्हें कोई दुर्घटना हो जाती है तब वे कभी यह नहीं सोचते कि वह कोई बड़ी संगीन बात होगी। उन्हें यह सहज विश्वास होता है कि यह बहुत जल्द ठीक हो जायगा और सब कुछ शीघ्र ठीक हो जानेमें वह सहायता करता है। जब तुम शक्तिके लिये अभीप्सा करते हो, भगवान्‌की सहायताके लिये प्रार्थना करते हो तब तुम यदि इस अचल निश्चयताके साथ इसे करो कि वह जरूर आयेगी तो उस हालतमें उसके लिये न आना असंभव हो जायगा। सच पूछा जाय तो स्वयं ऐसी निश्चयता ही एक आंतरिक उद्‌घाटन है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो स्वभावतः और सहजभावसे ही इस स्थितिमें बने रहते हैं। जब कभी या जहां कहीं ऊपरसे कोई चीज ग्रहण करनेका कोई सुअवसर उपस्थित होता है तभी या वहीं वे उपस्थित होते हैं। और कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अवतरणका अवसर आनेपर सर्वदा ही उस स्थानपर नहीं पहुंच पाते; वे ठीक उसी मुहूर्त्तमें अपनेको बंद कर लेते हैं। परंतु जिनमें बालकोंके जैसी निर्भरता है, वे कभी कोई मौका नहीं खोते। यह एक बहुत विचित्रसी बात मालूम होती है। ऊपरसे देखनेमें संभव है कि दोनों प्रकारके लोगोंमें बहुत अधिक अंतर न दिखायी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे। दोनों प्रकारके लोगोंमें एक जैसी सदिच्छा, एक ही अभीप्सा, अपनी भलाई करनेकी एक जैसी कामना हो सकती है, परंतु जिसमें अपने-आपपर पूरा विश्वास होता है, जो संदेह नहीं करता, जो यह नहीं पूछता कि उसे वह चीज मिलेगी या नहीं, भगवान् उत्तर देंगे या नहीं,—क्योंकि, उसके लिये वह प्रश्न ही नहीं रहता, या मानी हुई और पक्की बात होती है कि "जिस चीजकी मुझे आवश्यकता है वह मुझे अवश्य मिलेगी"—, वह कहता है, "अगर मैं प्रार्थना करता हूं तो मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकृत होगी, अगर मैं कठिनाईमें हूं और मैं सहायता मांगता हूं तो वह सहायता अवश्य आयेगी, वह केवल आयेगी ही नहीं बल्कि सब कुछ ठीक कर देगी"—मैं कहती हूं, जिस आदमीमें ऐसी स्वाभाविक, सच्ची और निस्संदिग्ध निर्भरता होती है वह सर्वोत्तम स्थितिको प्राप्त करता है जिसमें सफल अवतरण हो सकता है; उसकी क्रिया उस समय अद्भुत होती है।

तुम अपने मानसिक विरोधों तथा संदेहोंके द्वारा सारी बात नष्ट कर देते हो, कठिनाईकी अवस्थामें तुम्हारे अंदर घुसनेवाली इस प्रकारकी भावनाओंके द्वारा नष्ट कर देते हो: "यह असंभव है, मैं कभी इसके अंततक नहीं पहुंच पाऊंगा, यदि अवस्था एकदम बुरी हो जाय, यदि मुझे लुढ़कना पड़े तो, आदि-आदि।" इस तरह तुम अपने तथा जिस शक्तिको ग्रहण करना चाहते हो उसके बीच एक दीवाल खड़ी कर देते हो।

चैत्य पुरुषमें यह विश्वास है, एक अद्भुत ढंगसे है, बिना छाया, बिना शंका-संदेह, बिना किसी विरोधके है। और जब यह होता है तब ऐसी कोई प्रार्थना नहीं जिसका उत्तर न आवे, ऐसी कोई अभीप्सा नहीं जो पूरी न हो।

*
**

धार्मिक कृत्योंका मूल्य

धार्मिक कृत्यों (जैसे जप आदि) का मूल्य क्या है?

यदि ये चीजें तुम्हें सहायता करती हों तो ये ठीक हैं; यदि न करती हों तो स्वभावतः ही ये किसी मतलबकी नहीं। इनका मूल्य बिलकुल आपेक्षिक है। इनका मूल्य केवल उतना ही है जितना कि ये तुम्हारे ऊपर प्रभाव डालती हैं अथवा जितनी मात्रामें तुम इनपर विश्वास रखते हो। यदि तुम्हारी एकाग्रतामें ये सहायक हों तो, मेरा कहना है कि, ये स्वागतके योग्य हैं। साधारण चेतना इन चीजोंको एक प्रकारके अंधविश्वासके साथ ग्रहण करती है; लोग समझते हैं, "यदि मैं मंदिर जाऊं या सप्ताहमें एक बार चर्च जाऊं, यदि मैं नियमित रूपसे प्रार्थनाएं करूं तो उससे मेरे लिये कोई अच्छी बात घटित होगी।" यह एक अंधविश्वास है जो सारे संसारमें फैला हुआ है, पर इसका कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं पवित्र स्थानोंमें गयी हूं। मैंने ऐसे देवालय देखे हैं जो फ्रांस, जापान और अन्यत्र बहुत उच्च कोटिके धार्मिक स्थान माने जाते हैं; वे सर्वदा एक ही प्रकारके मंदिर या चर्च नहीं थे और न उनमें एक ही प्रकारके देवता थे, पर उन्होंने जो छाप मेरे मनपर छोड़ी, उनके विषयमें मेरे जो अनुभव थे वे प्रायः सर्वत्र एक-जैसे ही थे, महज मामूली अंतर था। सामान्यतया ऐसे स्थानपर एक प्रकारकी शक्ति केंद्रीभूत रहती है, पर उसका स्वरूप पूर्ण रूपसे श्रद्धालुओंकी श्रद्धापर निर्भर करता है; फिर सचमुचमें वह शक्ति जैसी होती है और जिस रूपमें वह श्रद्धालुओंको दिखायी देती है उन दोनोंमें भी भेद होता है। उदाहरणार्थ, एक अत्यंत प्रसिद्ध तथा अत्यंत मनोहर उपासनालय था जो कलाकी दृष्टिसे एक अत्यंत श्रेष्ठ रचना था। मैंने उसके गर्भगृहमें एक विराट् काला मकड़ा देखा जिसने चारों ओर अपना जाल बिछा रखा था और जो लोगोंकी भक्ति, प्रार्थनाओं आदिसे निकलनेवाली सारी शक्तिको अपने उस जालमें पकड़ लेता और आत्मसात् कर लेता था। यह कोई बहुत सुखदायी दृश्य नहीं था। परंतु जो लोग वहां थे और प्रार्थना करते थे, वे दिव्य संस्पर्शका अनुभव करते थे, वे अपनी प्रार्थनाओंसे सब प्रकारके लाभ प्राप्त करते थे। और फिर भी सत्य वही था जिसे मैंने देखा। लोगोंमें श्रद्धा थी और उनकी श्रद्धा वहांकी खराब चीजको उनके उपयुक्त अच्छी चीजमें पलट देती थी। अब, यदि मैं जाती और उन लोगोंसे कहती: "तुम समझते हो कि तुम भगवान्‌से प्रार्थना करते हो! यह तो केवल एक भयानक जीवंत मकड़ा है जो तुम्हारी शक्तिको चूस रहा है!" तो निश्चय ही मेरे लिये यह बात बहुत परोपकारपूर्ण न होती। परंतु सर्वत्र लगभग ऐसी ही चीज होती है। ऐसे स्थानोंमें कोई-न-कोई प्राण-जगत्‌की शक्ति अधिष्ठान करती है। और प्राण-जगत्‌की सत्ताएं मनुष्यके हृदयोच्छ्वास के प्रकंपनोंको भक्षण करती हैं। बहुत थोड़ेसे, अत्यंत विरले लोग ही ऐसे होते हैं जो मंदिरों, चर्चों और पवित्र स्थानोंमें सच्ची धार्मिक भावनाके साथ जाते हैं, तात्पर्य, जो भगवान्‌से किसी चीजकी प्रार्थना करने या भीख मांगने नहीं जाते, बल्कि अपने-आपको निवेदित करने, कृतज्ञता ज्ञापन करने, अभीप्सा करने, आत्मसमर्पण करने जाते हैं। ऐसे लोग करोड़में एक हों तो बहुत अधिक ही मानना होगा। ऐसे लोग जब वहां होते हैं तब वे ठीक एक मुहूर्त्तके लिये भगवान्‌का कुछ स्पर्श पाते हैं। परंतु अन्य सब लोग महज अंध-विश्वास, अहंकार, स्वार्थके वश जाते हैं और ऐसा वातावरण उत्पन्न करते हैं जैसा कि हम पाते हैं तथा जब तुम किसी पवित्र स्थानमें जाते हो तब साधारणतया तुम ऐसे ही वातावरणको अपने श्वासके साथ ग्रहण करते हो; जब तुम वहां एक अच्छी भावना लेकर जाते हो केवल तभी तुम अपने मनमें कहते हो: "क्या ही शांतिदायक यह स्थान है!"

यह कहते हुए मुझे दुःख होता है। परंतु बात ऐसी ही है। मैं तुमसे कहती हूं, मैंने जानबूझकर सर्वत्र थोड़ा-बहुत परीक्षण किया है। संभवतः कभी-कभी सुदूर छोटेसे कोनोंमें, —उदाहरणार्थ, एक छोटेसे गांवके चर्च-जैसे स्थानमें—ऐसी जगहें मैंने देखी हैं जहां सच्ची शांति और निस्तब्धता तथा कुछ सच्ची अभीप्सा थी। उन्हें छोड़कर, बाकी सभी स्थानोंमें विरोधी प्राणिक शक्तियोंका महज जाल है जो प्रत्येक चीजका व्यवहार अपने भोजनके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती हैं। जहां जितना बड़ा पूजकोंका समुदाय होता है वहां उतना ही बड़ा अशुभ प्राण-देवता होता है। इसके अतिरिक्त, अदृश्य जगतोंमें महज प्राणिक सत्ताएं ही ऐसी होती हैं जो पूजा पाना पसंद करती हैं। क्योंकि, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, उससे उन्हें प्रसन्नता होती है, उनका महत्त्व बढ़ जाता है। जब मनुष्योंकी एक बड़ी सेना उनकी पूजा करती है तब वे अभिमानसे फूल उठती हैं, सुखी होती हैं तथा उनके संतोषकी कोई सीमा नहीं रहती।

परंतु, यदि तुम किसी सच्ची दिव्य सत्ताको लो तो वह उस चीजको पसंद नहीं करती और न उसे कोई मूल्य देती है। वह पूजा पाना पसंद नहीं करती; पूजासे उसे कोई विशेष आनंद नहीं होता। परंतु जब वह कहींपर कोई सुंदर संबोधिपूर्ण ज्ञान, शुभ भावना, निःस्वार्थपूर्ण क्रिया या आध्यात्मिक उत्साह देखती है तब वह उसे प्रार्थनाओं और पूजाओंसे अनंतगुना अधिक मूल्यवान् समझती है। मैं गंभीरतापूर्वक कहती हूं, यदि तुम एक सच्चे देवताको कुर्सीपर बैठा दो और जबतक तुम उनकी पूजा करते हो तबतक उन्हें वहां बैठे रहनेके लिये बाध्य करो तो वह शायद तुम्हें पूजा तो करने देंगे और उससे अपना मनबहलाव भी कर लेंगे, परंतु निश्चय ही उससे उन्हें कोई आनंद नहीं होगा, एकदम नहीं होगा! वह न तो तुम्हारी पूजासे फूल उठेंगे, न संतुष्ट होंगे और न अपनेको गौरवान्वित ही समझेंगे। इस विचारको तुम्हें अपने मस्तकसे निकाल फेंकना होगा। आध्यात्मिक जगत् और स्थूल जगत्के बीचमें एक पूरा-का-पूरा क्षेत्र है जो प्राण-जगत्की सत्ताओंका क्षेत्र है और यही क्षेत्र ऐसी चीजोंसे भरा हुआ है जिसे वे पसंद करते हैं; क्योंकि वे चीजें उनका खाद्य हैं। जब मनुष्य उन्हें पुकारते हैं, उनसे प्रार्थना करते हैं, उन्हें अपनी पूजा चढ़ाते हैं तब वे प्रसन्न होते हैं और अपनेको महत्त्वपूर्ण समझते हैं। जिस सत्ताके सबसे अधिक संख्यामें पूजा करनेवाले होते हैं वह सबसे अधिक संतुष्ट होती है, सबसे अधिक अपनेको गौरवान्वित समझती है, सबसे अधिक फूल उठती है। तुम भला कैसे कल्पना कर सकते हो कि एक सच्चा देवता, यहांतक कि अधिमानस लोकका कोई देवता—यद्यपि इस क्षेत्रके देवता कुछ अंशमें मानवीय दुर्बलताओंसे ग्रस्त हैं—, जिस देवतामें उच्चतर चेतना है वह, इन चीजोंमें कोई सुख पा सकता है? मैं दुहराती हूं कि यथार्थ करुणा, बुद्धिमत्ता, निःस्वार्थता या सुंदर समझदारी या सरल अभीप्साका कोई कार्य किसी तुच्छ धार्मिक क्रियासे कहीं उच्चतर और अधिक मूल्यवान् चीज है। उसके साथ इसकी तुलना ही नहीं हो सकती। तुम धार्मिक कृत्योंकी बात करते हो। एक सत्ता है जिसे काली कहते हैं; बहुतसी, अनेक प्रकारकी कालियां हैं जो मंदिरों और घरोंमें प्रतिष्ठित हैं। प्रायः उनमेंसे सब-की-सब प्राण-जगत्की सत्ताएं और शक्तियां हैं, कुछ तो कुरूप और भयंकर भी हैं। मैं ऐसे लोगोंको जानती हूं जिन्हें एक कालीका—अपनी पारिवारिक कालीका—इतना अधिक भय था कि वे किसी भी तरह उसे नाराज करनेकी, उसे नाराज करनेवाले किसी छोटे-से-छोटे अपराधकी बात मनमें उठनेसे कांपने लगते थे; क्योंकि उसका अर्थ होगा कालीका दंड। मैं इन सत्ताओंको जानती हूं, अच्छी तरह जानती हूं: वे प्राणमय लोककी सत्ताएं हैं, वे प्राणमय रचनाएं हैं—उनके रूप मानव-मनके दिये हुए रूप हैं और वे क्या रूप हैं! यह सोचकर दिल दहल जाता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य ऐसी भयावनी और दानवीय चीजोंकी पूजा करते हैं!

इस दृष्टिसे यह अच्छा है कि कुछ समयके लिये मनुष्यजाति धार्मिक वातावरणसे बाहर निकल आये; क्योंकि वह वातावरण ऐसे भय तथा अंधविश्वासपूर्ण अधीनतासे भरा हुआ है जिससे विरोधी शक्तियोंने इतने भयानक रूपमें लाभ उठाया है। इस दृष्टिसे अस्वीकृति, नास्तिकवाद और प्रत्यक्षवादका युग एकांत अज्ञानसे मुक्ति पानेके लिये मनुष्यके लिये बिलकुल अनिवार्य है। जब तुम प्राणमय लोककी अशुभ शक्तियोंकी इस, इस हीन, अधीनतासे बाहर निकल आओगे केवल तभी तुम यथार्थ आध्यात्मिक ऊंचाइयोंपर चढ़ सकोगे और तभी वहां दिव्य सत्य, दिव्य चेतना तथा दिव्य शक्तिकी कार्य करनेवाली शक्तियोंके सहकारी और समुचित यंत्र बन सकोगे। ऊपर उठनेके लिये तुम्हें निम्नतर स्तरोंके अंधविश्वासोंको बहुत पीछे छोड़ देना होगा।

*
**

प्रार्थना और अभीप्सा

(१)

जो कुछ तुम करते हो उसका एक अनिवार्य और स्वतंत्र परिणाम होता है। यह एक आवश्यक विश्वास है जो विकास-प्रक्रियाके एक विशेष मुहूर्त्तमें दिया गया है। इसका उद्देश्य है मनुष्योंको पूर्णरूपेण अभिमानी होनेसे या एकदम अचेतन रूपमें वे जो कुछ करते हैं उसे करनेसे रोकना। बहुतेरे लोग, मैं समझती हूं कि अधिकांश लोग ऐसे ही होते हैं। वे अपनी सहज-प्रेरणाओंका अनुसरण करते हैं और यह नहीं पूछते कि उनके कर्मोंके स्वयं उनके लिये तथा दूसरोंके लिये क्या परिणाम होंगे। ऐसी स्थितिमें यह अच्छा ही है कि किसीने उनसे कठोर स्वरमें कहा: "सावधान, उसके ऐसे परिणाम होते हैं जो बहुत दिनोंतक, बहुत दीर्घकालतक बने रहते हैं।" ऐसे धर्म हैं जो तुम्हें यह चेतावनी देनेके लिये उठे: "तुम दूसरे जीवनमें इसका मूल्य चुकाओगे", "अगर तुम यह पाप करोगे तो तुम चिरकालके लिये नरकमें चले जाओगे" इत्यादि-इत्यादि। परंतु यह एक अत्यंत अद्भुत कहानी है जिसका आविष्कार मनुष्यने किया है; फिर भी, लोग भय करते हैं और किसी तरह रुक जाते हैं। अपनी सहज-प्रेरणाओंके पीछे उनके दौड़नेसे पहले यह उन्हें विचार करनेके लिये एक क्षणका समय प्रदान करता है, अवश्य ही बराबर नहीं, कभी-कभी विचार पीछे आता है, थोड़ी देरसे आता है।

सभी धर्मोंके अंदर जो लोग यह घोषणा करते हैं कि कर्मके फल कठोर होते हैं और जिन्होंने ये चरम नियम बनाये, उन्होंने, मैं समझती हूं, अपने-आपको प्रकृति-माताके स्थानमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठानेके लिये, साधारण मनुष्योंको चलानेवाली डोरियोंको खींचनेके लिये ही ऐसा किया होगा। क्योंकि ये नियम मनकी रचनाएं होते हैं, संभवतः कम या अधिक सच्चे दिलसे तो बनाये हुए होते हैं, पर वस्तुओंको टुकड़े-टुकड़े काट देते हैं और तुमसे कहते हैं: "यह करो, वह करो; यह ऐसा नहीं है, यह वैसा है।" लोग विभ्रांत, भयाक्रांत हो जाते हैं, वे समझ ही नहीं पाते कि आखिरकार उन्हें करना क्या चाहिये।

लोगोंको बस एक ऊपरके तल्लेमें चला जाना चाहिये और जो ऊपर उठें उनके हाथोंमें दरवाजेकी चाभी दे देनी चाहिये। वह चाभी है (१) पर्याप्त रूपमें सच्ची अभीप्सा, अथवा (२) पर्याप्त रूपमें तीव्र प्रार्थना। मैंने 'अथवा' कहा है, पर बात शायद ऐसी न हो; कुछ लोग एकको पसंद करते हैं और कुछ लोग दूसरेको अच्छा समझते हैं। परंतु दोनोंमें ही जादूकी शक्ति है और हमें उसका व्यवहार जानना चाहिये।

कुछ लोग प्रार्थनाओंको नापसंद करते हैं। यदि वे अपने हृदयकी गहराईमें प्रवेश करते तो वे देखते कि यह उनका महज गर्व है, बल्कि उससे भी कहीं बुरा, दंभ है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनमें कोई अभीप्सा नहीं होती, वे चेष्टा करते हैं, पर वे असफल रहते हैं। वे नहीं कर पाते, क्योंकि उनमें संकल्पकी ज्योतिशिखा नहीं होती और न उनमें विनम्रताकी ही लौ होती है। दोनोंकी आवश्यकता होती है। अपने कर्मको बदल देनेके लिये बड़ी विनम्रता और महान् संकल्प-शक्तिकी आवश्यकता होती है।

भागवत कृपा पूर्ण रूपसे कर्मका खंडन कर देती है। भागवत कृपा कर्मको उसी तरह गला देती है जैसे सूर्य मक्खनको। अगर तुम्हारे अंदर पर्याप्त सच्ची अभीप्सा हो अथवा पर्याप्त तीव्र प्रार्थना हो तो तुम अपने अंदर ऐसी किसी चीजको उतार सकते हो जो सब कुछ परिवर्तित कर देगी।

(२)

मैं तुम्हें चेतनाके विभिन्न स्तरोंकी बात पहले बतला चुकी हूं। विशुद्ध भौतिक स्तरपर (प्राण-जगत्से इसे एकदम अलग कर देनेपर) सब कुछ पूर्णतः यांत्रिक होता है: यहां चीजें कार्य-कारणकी कठोर परंपरामें एक-दूसरेका अनुसरण करती हैं। यदि तुम किसी चीजका कारण जानना चाहो तो तुम्हें कारणका भी कारण खोजना होगा; और यदि तुम किसी चीजका परिणाम जानना चाहो तो तुम्हें परिणामका भी परिणाम खोजना होगा। कारण और कार्य (परिणाम) एक-दूसरेके साथ गुंथकर एक बंद वृत्तका निर्माण करते हैं। केवल, इस विशुद्ध भौतिक लोकमें प्राणमय लोक हस्तक्षेप कर सकता है और करता ही है, जैसे उद्भिजके राज्यमें।

प्राणमय जगत्में एकदम इससे भिन्न ही नियति है, जो उस लोककी अपनी निजी है। और जब तुम प्राणमय लोककी नियतिको भौतिक नियतिमें उतार लाते हो तब उससे एक मिश्रण तैयार होता है जो प्रत्येक चीजको बदल देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणमय जगत्‌के ऊपर मनोमय जगत् है। मनोमय लोककी भी अपनी निजी नियति है जिसमें सभी मानसिक चीजें एक कठोर क्रमपरंपरामें एक साथ बंधी हुई हैं।

इनमेंसे प्रत्येक लोककी नियति ऐसी है जिसे हम आड़ी (या समतल) नियति कह सकते हैं।

परंतु, मेरा कहना है कि, एक खड़ी (लंबवत्) क्रिया भी हो सकती है। कहनेका तात्पर्य, मनोमय प्राणमयके अंदर और प्राणमय भौतिकके अंदर अवतरित हो सकता है। इस तरह तीन नियतियां हैं जो परस्पर हस्तक्षेप करती हैं और ऐसी चीज उत्पन्न करती हैं जो एकदम भिन्न होती है।

जहां मन हस्तक्षेप करता है वहांकी नियति जहां वह हस्तक्षेप नहीं करता वहांकी नियतिसे निश्चित रूपमें पृथक् होगी। उच्चतर पशु-जीवनमें हस्तक्षेप करनेवाली मानसिक नियति अभी भी मौजूद है जो उद्‌भिज-स्तर पर काम करनेवाली नियतिसे एकदम भिन्न है। इन सब स्तरोंसे ऊपर उच्चतम स्तरतक कई अन्य स्तर हैं। उच्चतम क्षेत्र पूर्ण स्वतंत्रताका क्षेत्र है।

यदि अपनी चेतनामें तुम इन सब क्षेत्रोंको पार करनेमें समर्थ होओ, अर्थात् सीधी लाइनमें ऊपरकी ओर जा सको और सबसे ऊंचे स्तरपर पहुंच जाओ और फिर, इस संबंध-स्थापनके द्वारा, यदि तुम पूर्ण स्वतंत्रताकी इस नियतिको भौतिक नियतिके अंदर उतार लानेमें समर्थ होओ तो तुम प्रत्येक चीजको बदल दोगे। और मध्यके सभी नियतियोंमें भी परिवर्तन आ जायगा। इन परिवर्तनोंके कारण यह सब पूर्ण स्वतंत्रताके जैसा दिखायी देगा। क्योंकि एक स्तरका दूसरे स्तरमें हस्तक्षेप करना या अवतरित होना निम्नतर स्तरके लिये अप्रत्याशित परिणाम उत्पन्न करेगा। उच्चतर लोक भले ही पहले जान जायं, पर निम्नतर लोक नहीं जान सकते। पहलेसे न ज्ञात होनेके कारण वस्तुएं और घटनाएं उस समय पूर्ण स्वतंत्र और एकदम अप्रत्याशित प्रतीत होती हैं।

यदि तुम सचेतन रूपसे और निरंतर उच्चतम स्तरपर, अर्थात्, परात्पर चेतनाके स्तरपर, निवास करो, केवल तभी तुम यह देखनेमें समर्थ होओगे कि प्रत्येक चीज पहलेसे ही पूर्णरूपेण निर्धारित है, परंतु, साथ ही इन नियतियोंके संमिश्रणकी जटिलताके कारण प्रत्येक वस्तु एकदम स्वतंत्र भी है। इस तथ्यको चाहे तुम जो भी नाम दो, पर यह एक साथ युक्त एक प्रकारकी पूर्ण नियति और पूर्ण स्वतंत्रता है। यह एक ऐसा स्तर है जहां कोई विरोध नहीं है, जहां सब चीजें विद्यमान हैं और एक-दूसरेका विरोध किये बिना सामंजस्यके अंदर विद्यमान हैं।

(३)

सब कुछ संभव है। यह एक प्रकारका मानो साधारण तरीकेसे क्रमशः प्रकट होना है जो तुम्हारे लिये अज्ञात और अज्ञेय है। इस विश्वमें सब कुछ प्रकट होगा। पर किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमसे और किस ढंगसे ? यहां प्रत्येक चीज ही पूर्ण रूपसे, शाश्वत रूपसे पर निष्क्रिय रूपसे विद्यमान है। प्रत्येक चीज ही भौतिक जगत्में प्रकट होने जा रही है, स्वभावतः ही, कम या अधिक एकके बाद एक प्रकट होने जा रही है। पर यह आत्मप्रकाश भला किस पथका अनुसरण करेगा ?

सबसे ऊपर, पूर्ण स्वतंत्रताका क्षेत्र है। कौन कहता है कि पर्याप्त रूपसे सच्ची अभीप्सा, पर्याप्त रूपसे तीव्र प्रार्थना इस आत्मप्राकट्यकी धाराको बदल नहीं सकती ? इसका अर्थ है कि प्रत्येक चीज संभव है। यही एक अद्भुत कृपाशक्ति है जो मानव-स्वभावको प्रदान की गयी है। महज हम यह नहीं जानते कि इसका उपयोग कैसे किया जाता है।

अतएव आड़ी रेखामें अत्यंत पूर्ण नियतिके होनेपर भी, यदि हम इसे पार कर सकें और चेतनाके उच्चतम शिखरपर पहुंच सकें तो जो कुछ पूर्ण रूपसे निर्धारित प्रतीत होता है उसे बदल सकते हैं।

सभी सिद्धांत महज सिद्धांत हैं, महज मानसिक कल्पनाएं हैं जो सद्वस्तुका केवल प्रतिरूप या प्रतिच्छाया हैं, वे स्वयं सद्वस्तु बिलकुल नहीं हैं। जब तुम "नियति" अथवा "स्वतंत्रता" शब्दका उच्चारण करते हो तब तुम केवल शब्दोंको ही दुहराते हो। वह सब यथार्थमें, तुम्हारे अंदर, तुम्हारे चारों ओर, सर्वत्र जो कुछ "है" उसका अत्यंत अपूर्ण, बहुत दुर्बल वर्णन है। और यदि तुम्हें यह समझना आरंभ भी करना हो कि विश्व कैसा है तो तुम्हें इन सब मानसिक सिद्धांतोंसे बाहर निकल आना चाहिये, अन्यथा तुम कभी समझ नहीं सकते।

निस्संदेह, यदि तुम ठीक एक मिनट भी इस पूर्ण सच्ची अभीप्सा, इस यथार्थतः तीव्र प्रार्थनाकी स्थितिमें निवास करो तो तुम घंटों ध्यान करनेकी अपेक्षा बहुत अधिक चीजोंको जान जाओगे।

*
**

ध्यान और जाग्रत् अवस्था

अच्छा ध्यान करनेके लिये या आंतरिक जगत्के साथ संपर्क प्राप्त करनेके लिये यदि तुम्हें समाधिमें जानेके लिये बाध्य होना पड़े तो तुम्हारी साधारण चेतना बिना बदले सर्वदा एक जैसी ही बनी रहेगी। दूसरे शब्दोंमें, जो लोग केवल गभीर ध्यानकी स्थितिमें ही उच्चतर चेतना प्राप्त करते हैं, वे एक बार जब उस समाधिसे बाहर निकल आते हैं तब उनका मूल्य जो कुछ वे पहले थे उससे अधिक नहीं होता। उनके सारे दोष वहां मौजूद रहते हैं और ज्योंही वे अपनी पहलेकी चेतना वापस पाते हैं त्योंही वे उन दोषोंको भी फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पा लेते हैं।[1] ऐसे लोग कभी प्रगति नहीं करते; क्योंकि वे कभी अपनी गभीरतर चेतना, अपनी सत्ताके सत्य तथा अपनी बाह्य सत्ताके बीच कोई संबंध नहीं स्थापित करते। वे अपनी बाहरी सत्ताको एक वस्त्रकी तरह उतार देते हैं और उसे अलग एक कोनेमें रखकर उससे कहते हैं, "चुप रहो, मेरे प्यारे मित्र, तुम मुझे परेशान मत करो"—और फिर वे मनकी एकाग्रता, ध्यान, अपनी गभीर अनुभूति या सिद्धिमें डूब जाते हैं; और जब वे वापस आते हैं तब वे अपना वस्त्र पुनः पहन लेते हैं जो इस बीच बदल नहीं गया है, बल्कि शायद पहलेसे भी अधिक गंदा हो गया है। अतएव वे जहां पहले होते हैं वहीं बने रहते हैं अथवा अपने ध्यानके बावजूद भी अपनी बाहरी प्रकृतिमें और भी बुरा बन जाते हैं। यदि तुम अपनी बाहरी सत्ताको बदलना चाहो तो तुम्हें उसके विषयमें सचेतन बने रहना चाहिये और सचेतन रहते हुए अन्य अनुभवोंको प्राप्त करना चाहिये; यदि तुम अपने अनुभवोंका पूरा लाभ उठाना चाहो तो तुम्हें अपनी बाहरी सत्ताके साथ कभी संस्पर्श नहीं खोना चाहिये।

ऐसे बहुतसे लोग होते हैं जो घंटों ध्यान किया करते हैं, कुछ तो प्रायः सब समय ही करते रहते हैं। परंतु संयोगवश यदि कोई मनुष्य उन्हें पुकारकर या शोरगुल मचाकर उनके ध्यानमें बाधा पहुंचाता है तब वे क्रोधसे आग-बबूला हो उठते हैं, चिल्लाते और सारे संसारके लिये ही गालियां निकालते हैं; ध्यानकी कोशिश किये बिना यदि वे साधारण मनुष्य बने रहते तो उस समय वे जो कुछ होते उससे कहीं अधिक गंदे वे बन जाते हैं। इसका कारण, जैसा कि मेरा कहना है, यह है कि वे अपनी गभीरतर चेतनाके साथ अपने बाह्य जीवनको जोड़नेकी परवा नहीं करते: वे अपने-आपको दो भागोंमें काट देते हैं, एक भाग तो भीतर होता है जो प्रगति करता रहता है और दूसरा भाग बाहर होता है जो और भी बुरा बनता जाता है, क्योंकि वह छोड़ दिया जाता है और उसकी एकदम कोई परवा नहीं की जाती।

*
**

अनुचित क्रियाके साथ व्यवहार

किसी चीजको उसे न चाहनेके कारण महज दूर ढकेल देना एक बात है और अपनी

---

[1] इस संबंधमें श्रीरामकृष्ण एक कहानी कहा करते थे। पवित्र-सलिला गंगा नदीके अपने अंदर स्नान करनेवालोंको पवित्र बनानेके गुणके विषयमें प्रश्न करनेपर वह उत्तर दिया करते कि ज्योंही तुम गंगाके जलमें प्रवेश करते हो त्योंही पाप तुम्हें छोड़ देते हैं; परंतु वे किनारेपर प्रतीक्षा करते रहते हैं, और जब तुम बाहर आते हो तब वे सीधे तुम्हारे ऊपर कूद पड़ते हैं और पहलेकी भांति ही प्रसन्नताके साथ तुम्हारे अंदर बैठ जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतनाकी स्थितिको ही इस प्रकार बदल देना कि जिस चीजको तुम नहीं चाहते वह चीज ही तुम्हारे स्वभावके लिये एकदम अपरिचित बन जाय दूसरी बात है। इन दोनोंमें महान् अंतर है। साधारणतया जब तुम्हारे अंदर कोई ऐसी क्रिया होती है जिसे तुम पसंद नहीं करते तब तुम उसे पीछे ढकेल देते और दबा देते हो, पर तुम यह पता लगानेका कष्ट नहीं उठाते कि तुम्हारे अंदर ऐसी कौनसी चीज है जिसने उस क्रियाको अवलंब दिया था और जो अब भी दे रही है, कौनसी वह विशिष्ट प्रवृत्ति है, चेतनाका कौनसा झुकाव है जो उस चीजके चेतनामें प्रवेश करनेके लिये दरवाजा खोल देता है। परंतु तुम यदि महज उसे अनुचित करार देने और दबा देनेका भाव ग्रहण करनेके बदले अपनी प्राणगत चेतनाकी गहराईमें पैठ जाओ और उस सहारा देनेवाली चीजको ढूंढ़ निकालो अर्थात् विशेष प्रकारके उस छोटेसे प्रकंपनको खोज निकालो जो दूर एक कोनेमें जमा बैठा है—प्रायः वह कोना इतना अंधकारपूर्ण होता है कि वह वहां है यह देखना भी कठिन होता है—, यदि, सारी कठिनाईके होनेपर भी, तुम एकाग्र होओ और उस चीजतक, उस क्रियाके मूल-स्रोततक ले जानेवाले रास्तेका अनुसरण करो तो अंतमें तुम एक बहुत छोटीसी सांप-जैसी चीज ढूंढ़ निकालोगे जो वहां कुंडली मारकर बैठी होती है, अत्यंत छोटी होती है, एक मटर-से बड़ी नहीं, पर होती है बहुत काली और दृढ़तासे जड़ जमाये हुई। अब दो पद्धतियां हैं: या तो तुम उस बिंदुपर इतना तेज एक प्रकाश डालो, सत्य-चेतनाकी इतनी प्रबल ज्योति फेंको कि वह चीज गल जाय अथवा उस नन्हीं चीजको एक चिमटेसे पकड़कर खींच लो और उसे अपनी चेतनाके सामने रख दो। पहली पद्धति समूल नाशक है, परंतु सर्वदा तुम्हारे पास सत्यकी ज्योति नहीं होती और तुम जब चाहो तब उसका व्यवहार नहीं कर सकते। अतएव तुम्हें दूसरी पद्धति ही ग्रहण करनी होगी। तुम उसका अनुसरण कर सकते हो, पर वह तुम्हें कष्ट देगी, इतना बड़ा कष्ट देगी जितना कि दांत उखाड़नेके समय होता है। मुझे नहीं मालूम कि तुममेंसे किसीको यह अनुभव हुआ है या नहीं, पर होता है यह दुःखदायी। सामान्यतया कोई अवांछित क्रिया होनेपर तुम क्या करते हो? तुम उसे—मैं समझती हूं, खूब धीरेसे—पोंछ देनेकी अथवा उसे ढक देनेकी चेष्टा करते हो; इस तरह ऐसी चीजें पहलेकी तरह ही बनी रहती हैं। तुममें साहस नहीं होता और इसलिये चीजें परिवर्तित नहीं होतीं। हां, उससे तुम्हें कष्ट होता है; कष्ट साधारण तौरपर यहां हृदयमें होता है। परंतु तुममें यदि साहस हो तो उससे समझौता करनेकी अपेक्षा उसे उखाड़ फेंकना कहीं अधिक अच्छा है; उसे उखाड़ लो और अपनी तीक्ष्ण दृष्टिके सामने उसे रख दो; वह विलीन हो जायगी। इससे उसका अंत हो जायगा और तुम स्वस्थ हो जाओगे। वह चीज फिर तुम्हें परेशान करनेके लिये तुम्हारे अंदर कभी नहीं आयेगी। परंतु यह चीर-फाड़ समूल नष्ट करनेवाला है और इसे चीर-फाड़के रूपमें ही करना होगा।

आरंभमें उस चीजको ढूंढ़ निकालनेके लिये एक महान् अध्यवसायकी जरूरत होती है। क्योंकि साधारण तौरपर जब तुम ऐसी चीजोंकी खोज करते हो तब मन बीचमें आ जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और सैकड़ों कारण दिखाता तथा अनुकूल व्याख्याएं देता है जिसमें कि तुम उस खोज-को जारी न रखो। वह तुमसे कहता है: "नहीं, इसमें तनिक भी तुम्हारा दोष नहीं; परिस्थितियां ही ऐसी हैं, लोग ऐसे हैं, बाहरसे आनेवाली चीजें ऐसी हैं, यह बात है और वह बात है," सब प्रकारके सुन्दर-सुन्दर बहाने बनाता है, और यदि तुम अपने संकल्पपर दृढ़ नहीं रहते तो तुम सब चीजोंको जारी रहने देते हो और पहले तुम जहां थे वहीं बने रहते हो; तुम्हारी कठिनाई फिरसे तुम्हें तंग करनेके लिये वापस आ जाती है और तुम्हें फिर नये सिरेसे काम आरंभ करना पड़ता है। परंतु तुम यदि चीर-फाड़ कर डालते तो सब कुछ वहीं समाप्त हो जाता। मन और उसकी व्याख्याओंपर विश्वास मत करो। वह तुम्हें यह कहनेकी प्रेरणा दे सकता है, "हां, हां, दूसरे अवसरोंपर बात ऐसी ही थी, मैं स्वीकार करता हूं, निस्संदेह मेरी ही भूल थी; परंतु इस बार, मुझे पूरा विश्वास है, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है आदि-आदि।" अगर तुम अपने विरोधीका सामना दृढ़ताके साथ न करो तो वह सर्वदा ही वहां बना रहेगा, अवचेतनामें छिपा रहेगा, बड़े आरामसे वहां निवास करेगा और किसी दिन जब तुम असावधान होगे वह ऊपर आ जायगा। मैंने लोगोंको इस प्रकार ३५ वर्षोंसे भी अधिक समयतक बुराईका पोषण करते हुए देखा है। और, यदि कोई ठीक रास्तेसे न चले तो कोई कारण नहीं कि चीजें जन्म-जन्मांतरतक न बनी रहें। अतएव एकमात्र निरापद उपाय है चीर-फाड़ करना, चाहे जितना भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े। क्योंकि इससे तुम सदाके लिये स्वस्थ हो जाते हो। निश्चय ही जब तुम उस स्थानपर केंद्रीभूत ज्योति डालते हो तब वहां जलता है, झुलस जाता है। परंतु तुम्हें उसे सहन करना ही चाहिये। तुममें ऐसी सच्चाई होनी चाहिये जो तुम्हें पीछे नहीं हटने देती, उस स्थानको ढकने नहीं देती और प्रयास छोड़ने नहीं देती। तुम्हें बल्कि उस स्थानको चौड़े खोल रखना चाहिये और सीधे अपने ऊपर प्रहार ग्रहण करना चाहिये।

मैंने तुम्हें उस स्थानको ढूंढ़ निकालनेके लिये कहा है जहां गुप्त चीज पड़ी रहती है। उस काली चीजके लिये बहुतसे सुखदायी कोने तुम्हारी सत्तामें हैं। कुछ लोगोंके मस्तक-में ऐसा कोना होता है, कुछ लोगोंके हृदयमें, दूसरोंके निम्न भागमें होता है; परंतु जहां भी वह चीज क्यों न हो, जब तुम उसे खोज निकालते हो तब वह एक ही जैसी दिखायी देती है;—गोलाकार सिमटा हुआ एक छोटासा काला प्राणी वह होता है, मटरसे बड़ा नहीं होता पर कड़ा और दृढ़तासे जड़ा हुआ होता है, मानो एक अणु-परिमाण सांप कुंड-लित होकर बैठा हो। यदि वह मस्तककी कोई चीज हो तो उसे खोजना कुछ कठिन होता है। क्योंकि मस्तक भ्रांत भावनाओंसे भरा रहता है और यथार्थ पथका अनुसरण करनेके लिये उसे व्यवस्थित करना आसान नहीं होता। हृदयमें उस स्थानको खोज निका-लना और उसे अच्छा करना अपेक्षाकृत अधिक आसान होता है, यद्यपि यहां उससे सबसे अधिक कष्ट होता है। परंतु यहां वह अधिक आसानीसे मिल जाता है और अत्यंत पूर्ण रूपमें नीरोग भी हो जाता है। नीचे प्राणमय भागमें चीजें बहुत अव्यवस्थित और अंध-कारपूर्ण होती हैं। सभी चीजें सच्ची अस्तव्यस्तताकी अवस्थामें परस्पर मिली-जुली होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। वहांकी क्रियाएं भी अधिक प्रचंड, अधिक अदम्य और अज्ञानपूर्ण होती हैं। यहींपर हैं काम, क्रोध, अहंकार और महत्त्वाकांक्षा आदिकी सभी प्रकारकी क्रियाएं, सभी प्रकारकी आसक्तियां और भावुकताएं, वह भूख जिसे तुम प्रेम कहते हो। और वहीं हैं अन्य सैकड़ों चीजें। फिर उतने ही प्रकारकी चीजें मस्तकमें भी हैं। वहां विचारके विकृत रूप हैं, सब प्रकारकी विश्वासघातकताएं हैं, अपने ही अंतरात्माके प्रति विश्वासघातकताएं हैं। यह कल्पना करना भी मुश्किल है कि कोई किस तरह अपने ही अंतरात्माके साथ विश्वासघात करता है, तुम्हारा मस्तिष्क तुम्हारे इस बोधके विरुद्ध कि तुमने कोई भूल की है, तुम्हारा समर्थन करनेके लिये कितने प्रकारोंसे, कितनी दृढ़ताके साथ अपने निर्णय, दृष्टिकोण और अनुकूल व्याख्याएं पेश करता है। तुम्हें इन सब चीजोंको सुलझाना होगा, प्रत्येक चीजको उसके अपने स्थानमें रखना होगा और प्रत्येक चीजके ऊपर अपनी सच्ची चेतनाकी ज्योति फेंकनी होगी तथा उनका विचार करना होगा——उन्हें जलाना होगा, शुद्ध करना होगा या रूपांतरित करना होगा।

*
**

व्यक्तिगत प्रयास और आत्म-समर्पण

अंतमें इन दोनोंके बीच कोई अंतर नहीं रह जाता यदि लक्ष्य निर्व्यक्तिक भगवान्‌को प्राप्त करना हो, तात्पर्य, यदि तुम निर्व्यक्तिक भगवान्‌के साथ ऐकत्व और तादात्म्य प्राप्त करना, उनके अंदर निमज्जित हो जाना चाहो। परंतु तुम्हारी अभीप्सा यदि परेकी उस वस्तुतक पहुंचनेकी हो जिसे श्रीअरविन्द अतिमानसिक सत्य कहते हैं, तब उनके बीच एक अंतर आ जाता है, लक्ष्यमें भी और साथ ही पद्धतिमें भी एक फर्क पड़ जाता है। क्योंकि अतिमानसिक सिद्धिकी पद्धति मूलतः समर्पणकी पद्धति है। संभवतः यह मनोभावका एक प्रश्न है। और यदि किसीका मनोभाव ऐसा हो, उसकी प्रवृत्ति ऐसी हो तो आत्म-समर्पणका मार्ग उसके लिये अनंतगुना अधिक आसान है: तुम्हारे कष्टों और कठिनाइयोंका तीन-चौथाई भाग अपने-आप दूर हो जाता है। परंतु कुछ लोगोंके लिये यह कठिन साबित हो सकता है।

अब फलकी दृष्टिसे देखें तो एकके विषयमें मैं कह सकती हूं कि यह सीधी लाइनमें चलनेवाला है और मानो एक बिंदुपर जाकर समाप्त हो जाता है; दूसरेमें मार्ग वृत्ताकार है और उसका अंत एक सर्वांगीण परिपूर्णतामें होता है। प्रत्येक मनुष्य अपने मूल और अपनी सत्ताकी चरमावस्थाको प्राप्त कर सकता है; मनुष्यकी सत्ताका मूल और चरमावस्था एक ही है जिसे सनातन, अनंत, परात्पर भगवान् कहते हैं। यदि तुम अपने मूलतक चले जाओ तो तुम परात्परतक पहुंच जाते हो, परंतु तुम एक ही सीधी रेखामें पहुंचते हो——रूपकको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दशः मत लो, यह तो विषयको समझनेमें आसान बनानेके लिये महज एक वर्णन है। अतएव, मेरे मतानुसार, यह सीधी रेखामें चलनेवाली सिद्धि है जो एक बिंदुपर जाकर समाप्त हो जाती है और वह बिंदु परात्परके साथ, तुम्हारी अधिकतम संभावनाके साथ एक होता है। दूसरे पथसे तुम उस सिद्धिपर पहुंचते हो जिसे मैं वृत्ताकार सिद्धि कहती हूं; क्योंकि वह एक ऐसी चीजका बोध प्रदान करती है जो सबको धारण करती है, वह एक बिंदु नहीं होती बल्कि एक सर्वांगपूर्ण सद्वस्तु होती है जिसके बाहर कुछ भी नहीं होता।

यहां पूर्ण और उसके अंशके संबंधकी बात लागू नहीं होती; क्योंकि अब यहां कोई विभेद ही नहीं होता। हम जिस पद्धतिसे अग्रसर होते हैं स्वयं उसका स्वरूप ही भिन्न होता है। क्या तुम कह सकते हो कि एक बूंद पानीके साथ पूर्ण तादात्म्य प्राप्त कर लेनेपर तुम्हें इस बातका ज्ञान हो जायगा कि समुद्र क्या है? और यहां तो जिस पूर्ण तादात्म्यकी चर्चा हो रही है वह केवल एक समुद्रके साथ नहीं बल्कि जितने समुद्र हो सकते हैं उन सबके साथ प्राप्त होनेवाला तादात्म्य है। और फिर भी एक बूंद पानीके साथ प्राप्त पूर्ण तादात्म्य तुम्हें सार-रूपमें समुद्रका ज्ञान देता ही है; परंतु दूसरे तरीकेसे तुम महज सार-रूपमें ही नहीं वरन् संपूर्ण रूपमें, सर्वशः, समुद्रको जान जाते हो। अवश्य ही इस सत्यके सत्स्वरूपको प्रकट करना बड़ा कठिन है। इसे यथासंभव स्पष्ट रूपमें बतलानेके लिये बस यही कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत प्रयासकी धारामें, जब कि मनुष्य एकमात्र अपने ही व्यक्तिगत बल-सामर्थ्यपर निर्भर करता है, जो कुछ व्यक्तिभावापन्न हो चुका होता है वह सब व्यक्तिस्वरूपताके गुणोंको बनाये रखता है और इसलिये, एक विशेष-अर्थ में, इस व्यक्तिस्वरूपताके लिये आवश्यक सभी सीमाओंको भी बनाये रखता है। दूसरे क्षेत्रमें, जब तुम अपने व्यक्ति-स्वरूपको समर्पित कर देते हो तब तुम केवल व्यक्तिस्वरूपताके गुणोंका ही उपभोग नहीं करते बल्कि तुम उसकी सीमाओंकी अधीनतासे मुक्त भी हो जाते हो। मैं समझती हूं कि यह बात प्रायः एक ऊंचे दर्शनका रूप ले लेती है और इसलिये स्पष्ट नहीं है। परंतु इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकती।

*
**

एक आंतरिक योद्धाका समर्पण

इसका अर्थ है रूपांतरित प्राण-पुरुष। रूपांतरित प्राण ही भगवान्‌के लिये एक योद्धा-जैसा होता है। मनुष्यका प्राण-स्तर शक्तिका क्षेत्र है और यही प्राण-स्तर उसे युद्ध करनेके लिये, युद्ध करने और जीतनेके लिये प्रेरित करता है। इसी तत्त्वके साथ व्यवहार करना अत्यंत कठिन होता है; क्योंकि युद्ध करनेकी यह क्षमता ही प्राण-पुरुषमें विद्रोह और स्वतंत्रताकी भावना, अपने निजी संकल्पका अनुसरण करनेकी इच्छा उत्पन्न करती है। परंतु जब प्राण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ जाता है और रूपांतरित हो जाता है, जब वह वास्तवमें भागवत संकल्पके प्रति आत्म-समर्पण कर देता है तब उसकी युद्ध करनेकी क्षमता रूपांतरमें बाधा डालनेवाली भगवद्विरोधी शक्तियों, अंधकारकी शक्तियोंके विरुद्ध लग जाती है; और प्राणकी शक्तियां शत्रुओंको जीतनेके लिये पर्याप्त प्रबल होती हैं। भगवद्विरोधी शक्तियां प्राणमय जगत्में रहती हैं: वहींसे वे भौतिक जगत्पर फैल जाती हैं। परंतु उनका अपना स्थान प्राणमय लोकमें होता है और परिवर्तित प्राण ही उनका सफलतापूर्वक सामना कर सकता है। परंतु यह रूपांतर बहुत कठिन है।

उच्चतर प्राण समर्पण करना बहुत कम कठिन अनुभव करता है, क्योंकि वह मनके और कभी-कभी चैत्य पुरुषके भी प्रभावके अधीन होता है; वह उन्हें अधिक आसानीसे समझ लेता है। उसका समर्पण निम्नतर प्राणके समर्पणकी अपेक्षा कम कठिन होता है, क्योंकि निम्नतर प्राण मूलतः कामनाओं तथा अंध प्रेरणाओंका गढ़ है। निम्नतर प्राण जब समर्पण करता है तो भी उसे जो कुछ करनेको कहा जाता है उसे करते समय वह पूर्ण प्रसन्न नहीं रहता, वह दुःख पाता है और विद्रोहकी प्रेरणाको दबाये रखता है, वह अनिच्छापूर्वक आज्ञा मानता है और सहयोग नहीं देता। जबतक वह हर्ष और सच्चे प्रेमके साथ सहयोग नहीं देता तबतक कुछ भी नहीं किया जा सकता, तबतक रूपांतर नहीं हो सकता।

आत्मसमर्पण केवल तभी सुखद होता है जब वह सच्चा होता है। अथवा हम बातको थोड़ा घुमाकर कह सकते हैं, कि यदि प्राण प्रसन्न न हो तो तुम्हें यह निश्चित रूपसे मान लेना चाहिये कि वह पूर्ण रूपसे सच्चा नहीं है। यदि वह प्रसन्न न हो तो इसका मतलब है कि वहां कोई चीज छिपी हुई है, कोई चीज ऐसी है जो बातका अन्य रूपमें होना पसंद करती है, ऐसी चीज है जिसकी अपनी कोई इच्छा है, अपनी निजी कामना है, अपना निजी उद्देश्य है और जो संतुष्ट नहीं है, संपूर्ण रूपसे समर्पित नहीं है, अपने समर्पणमें सच्ची नहीं है। परंतु कोई यदि अपने समर्पणमें सच्चा हो तो फिर वह अपने-आप पूर्ण रूपसे प्रसन्न भी होता है: वह एक अवर्णनीय आनंदका उपभोग करता है। अतएव यदि यह अवर्णनीय आनंद न हो तो यह इस बातका चिह्न है कि वहां कोई ऐसी चीज है जिसमें सच्चाई नहीं है।

अब, यदि तुम उस अंशको खोजना चाहो तो तुम्हें अभीप्सा करनी होगी, आग्रह करना होगा, प्रकाश फेंकना होगा—यदि आवश्यक हो तो प्रार्थना करनी होगी। इसके और भी बहुतेरे तरीके हैं। कभी-कभी तो अस्त्रोपचार भी आवश्यक होता है, लाल गर्म लोहा घाव-के अंदर घुसेड़ दो जिस तरह कि तुम मवादसे भरे ऐसे गंदे फोड़ेके हो जानेपर करते हो जो फटना नहीं चाहता।

*
**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌के प्रति उद्घाटन

तुम्हें भगवान्‌की ओर अपने-आपको खोलना चाहिये और उन्हें ग्रहण करना चाहिये। तुम साधारणतया अपने-आपको सभी दिशाओंमें संसारकी प्रत्येक चीज और प्रत्येक व्यक्तिकी ओर खोल रखते हो। तुम अपनी ऊपरी सत्ताको खोलते हो और सभी स्थानोंसे आनेवाले सभी प्रभावोंको ग्रहण करते हो। इसलिये तुम्हारे अंदर एक ऐसी चीज उत्पन्न होती है जिसे हम सभी विपरीत तथा परस्पर-विरोधी क्रियाओंकी खिचड़ी कह सकते हैं; और वही असंख्य कठिनाइयोंकी सृष्टि करती है। अब उसके बदले, ऊपरी सतहसे, बाहरी भागसे दूर निवास करो और भगवान्‌की ओर उद्‌घाटित होओ तथा भागवत शक्तिके सिवा और किसी चीजको ग्रहण मत करो। अगर ऐसा कर सको तो सभी कठिनाइयां वास्तवमें विलीन हो जायंगी। परंतु संदेह नहीं कि इसमें थोड़ी कठिनाई भी है। जबतक मनुष्य रासायनिक दृष्टिसे किसी सुरक्षित अवस्थाको न प्राप्त हो जाय तबतक यह असंभव है कि वह लोगोंके साथ संबंध रखे, उनसे बातें करे, उनके साथ व्यवहार करे, उनके साथ आदान-प्रदान करे और फिर भी उनकी किसी चीजको ग्रहण न कर ले। अगर कोई अपनेको किसी ऐसे वातावरणसे घेर सके जो छन्नेके जैसा काम करता हो तो जो कुछ बाहरसे आयेगा वह सब उसके पास पहुंचने या उसे छूनेसे पहले ही रोक या छान लिया जायगा। पर इसके लिये अच्छे अभ्यास और विशाल अनुभवकी आवश्यकता होती है। यही कारण है कि प्राचीन युगोंमें जिन लोगोंने अधिक आसान मार्ग लेना चाहा उन्होंने जंगलकी गहराईमें, पहाड़के शिखरपर या किसी गुफामें एकांतवास ग्रहण कर लिया, जिसमें कि उन्हें लोगोंके साथ संस्पर्श न रखना पड़े——क्योंकि उससे स्वभावतः ही अवांछनीय आदान-प्रदान कम हो जाता है। लेकिन साथ ही यह भी देखा गया है कि ऐसे लोग मनुष्योंके बदले पशुओं और पौधोंके जीवनमें अत्यधिक दिलचस्पी लेना आरंभ कर देते हैं; क्योंकि सच पूछा जाय तो किसी-न-किसी चीजके साथ आदान-प्रदान किये बिना काम चलाना कठिन है। अतएव सबसे उत्तम बात यह होगी कि इस समस्याका सामना सम्यक् रूपसे किया जाय, तुम अपने-आपको एक ऐसे वातावरणसे आच्छादित कर लो जो संपूर्ण रूपसे भगवान्‌पर केंद्रित हो जिसमें कि जो कुछ वहांसे होकर गुजरे वह रास्तेमें ही छन जाय। और इसके अलावा, भोजनका प्रश्न भी है। शरीर अपना अस्तित्व बनाये रखनेके हेतु विजातीय पदार्थोंको ग्रहण करनेके लिये बाध्य है, इसलिये वह साथ-ही-साथ जड़ और अचेतन शक्तियोंकी, जो चेतना उतनी अधिक वांछनीय नहीं होती ऐसी किसी चेतनाकी शक्तियोंकी एक अच्छीसी मात्राको आत्मसात् कर लेता है। एक बार मैंने तुम लोगोंसे उस चेतनाकी बात कही थी जिसे मनुष्य भोजनके साथ आत्मसात् करता है; उसी तरह भोजनमें अचेतनता भी होती है जिसे मनुष्य ठीक उसी ढंगसे आत्मसात् करता है। यही कारण है कि बहुतसे योगमार्गोंमें तुम्हें अपने भोजनको पहले भगवान्‌को निवेदित करने और उसके बाद खानेकी सलाह दी जाती है: इसका अर्थ होता है भोजनको हजम करनेसे पहले उसके अंदर भगवान्‌का आवाहन करना। निवेदनका अर्थ है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपर्कमें रखना; भोजन भगवान्‌के संपर्कमें रखा जाता है अर्थात् उनके प्रभावके अधीन रखा जाता है। यह बड़ी ही अच्छी, बड़ी ही उपयोगी पद्धति है; यदि तुम्हें मालूम हो कि इसे कैसे किया जाता है तो आंतरिक रूपांतरके लिये जो परिश्रम मनुष्यको करना पड़ता है वह बहुत कुछ कम हो जायगा। क्योंकि संसारमें हम अन्य सब लोगोंके साथ एक होकर रहते हैं। तुम सब प्रकारकी क्रियाओं और सब प्रकारके मनुष्योंसे आनेवाले प्रकंपनों, असंख्य प्रकंपनोंको आत्मसात् किये बिना एक भी सांस नहीं ले सकते। अतएव, यदि तुम अपने-आपको अछूता रखना चाहो तो तुम्हें, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, अपने-आपको एक छन्नेकी स्थितिमें बनाये रखना चाहिये और किसी अवांछनीय वस्तुको प्रवेश नहीं करने देना चाहिये। अथवा मुंहपर एक आवरण डाल लो जैसे कि लोग छूतकी बीमारीवाले और विषाक्त वातावरणवाले स्थानको पार करते समय करते हैं अथवा उसी ढंगकी कोई चीज करो।

हमारे चारों ओर इतना घना, पूर्ण समर्पणकी भावनासे इतना घनीभूत वातावरण होना चाहिये कि कोई भी चीज अपने-आप छने बिना प्रवेश न कर सके। तुम्हारे चारों ओर बुरे विचार, अशुभ इच्छाएं होती हैं, बुरे लोगोंद्वारा भेजी हुई हानिकारक रचनाएं विद्यमान रहती हैं। हवा इन सब चीजोंसे, इन अंधकारपूर्ण हानिकारक बीजाणुओंसे भरी रहती है। सर्वदा सावधानीके साथ निगरानी रखना, पग-पगपर सतर्क बने रहना, संभलकर और चौकसी तथा बचावका ख्याल रखते हुए धीरे-धीरे चलना कितना कष्टकर है, और फिर भी हम निश्चित नहीं हो सकते। परंतु तुम यदि अपनेको ज्योतिके, सहर्ष और सच्चे आत्मसमर्पण एवं अभीप्साकी ज्योतिके लबादेसे ढक दो जो कि एक अद्‌भुत छन्ना है, तो वह अपने-आप तुम्हें संरक्षण प्रदान करेगा। उस समय अवांछनीय शक्तियां न केवल प्रवेश ही नहीं कर पातीं बल्कि वे अपने स्रष्टाके ऊपर वापस फेंक दी जाती हैं, स्वयं आक्रामक ही अपने शिकार बन जाते हैं।

*
**

भगवान्‌के अंदर घुल जाना

हम किस तरह भगवान्‌के अंदर घुल सकते हैं? कहनेका तात्पर्य, भगवान्‌के अंदर कैसे विलीन हो सकते हैं, अपने अहंको कैसे खो सकते हैं?

सबसे पहले मनुष्यको इसकी इच्छा करनी होगी, इसके लिये संकल्प करना होगा, दृढ़ताके साथ इसके लिये अभीप्सा करनी होगी। जब-जब अहंकार सामने उठ खड़ा हो तब-तब तुम्हें उसकी नाकपर एक घूंसा जमाना चाहिये और तबतक जमाते रहना चाहिये जबतक कि वह इतना अधिक घूंसा न खा जाय कि वह थक जाय और छोड़ बैठे। परंतु साधारणतया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य घूंसा नहीं जमाता बल्कि उस दुष्टका पोषण करता है, उसकी उपस्थितिका समर्थन करता है। जब वह सामने उपस्थित होता है तब मनुष्य कहता है, "आखिरकार यह ठीक ही है"; यद्यपि अधिकांश प्रसंगोंपर मनुष्य यह जानता ही नहीं कि यह अहंकार है, वह इसे अपना स्वरूप ही समझता है। अतएव पहली शर्त है इस बातको आवश्यक समझना कि हमें अब अपने अहंकारको नहीं रखना चाहिये। तुम्हें यह समझना होगा कि जब तुम यह कहते हो कि तुम अब इसे नहीं चाहते तब इसका मतलब क्या है। यह इतना आसान नहीं है। क्योंकि जब तुम अपने मस्तिष्कमें इस भावनाको बार-बार दौड़ाते हो कि "मैं अहंकारको नहीं चाहता, मैं भगवान्‌से अलग होना नहीं चाहता", तो भी जीवनमें इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता; जब तुम यथार्थमें कोई स्वार्थपूर्ण या अहंकारपूर्ण कार्य करते हो तब तुम उसे बिलकुल स्वाभाविक अनुभव करते हो; यह तुम्हें एक धक्कातक नहीं देता।

हमें आरंभमें यह समझना चाहिये कि यह चीज सचमुचमें क्या माने रखती है, इसमें बहुतसे स्तर या सोपान हैं। सबसे पहले, इन दो चीजोंका अंतर समझ लेना चाहिये—(१) स्वार्थपरता और (२) अहंकार। स्वार्थपरता एक मोटा रूप है और इससे, कम-से-कम इसके अधिकांश भागसे छुटकारा पाना बहुत कठिन नहीं होना चाहिये। तुम्हें यदि हास्य-रसका बोध हो तो तुम इससे छुट्टी पा सकते हो। तुम यह नहीं देखते कि कितना मूर्ख एक स्वार्थपरायण मनुष्य होता है। वह बराबर ही अपने विषयमें सोचता रहता है, प्रत्येक चीजको बस अपने ही इर्दगिर्द लाता है, अपने ही तुच्छ व्यक्तित्वके विषयमें उठनेवाले विचारों-द्वारा शासित होता है, अपने-आपको ही विश्वके केंद्रमें रखकर भगवान्‌सहित समस्त विश्वको अपने ही चारों ओर व्यवस्थित करनेकी कोशिश करता है मानो वही विश्वकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु हो। अब, तुम यदि बाहरसे तटस्थ भावके साथ ठीक अपनी ओर देखनेकी कोशिश करो, आईनेमें देखनेकी तरह अपनेको देखो तो तुम तुरंत समझ जाओगे कि कितना हास्यास्पद तुम्हारा तुच्छ व्यक्तित्व है। मुझे याद है, कवि रवींद्रनाथ की एक पंक्ति, अवश्य ही अनुवादित, फ्रेंचमें पढ़ी थी जो मुझे बहुत मनोरंजक मालूम हुई। बात एक छोटेसे कुत्तेके विषयमें थी। कुत्ता अपनी मालकिनकी गोदमें बैठा हुआ था और अपने-आपको विश्वका केंद्र समझता था। हां, वह चित्र मेरे मनमें बैठ गया। मैं सचमुचमें एक नन्हेंसे कुत्तेको जानती थी जो ठीक वैसा ही था। उस तरहके बहुतसे कुत्ते होते हैं, शायद सभी कुत्ते वैसे ही होते हैं: वे चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्तिको उन्हींके विषयमें व्यस्त रहना चाहिये और ऐसा करनेमें वे सफल भी होते हैं।

तुम्हें अपने अहंको, अपनी सत्ताको भगवान्‌में डुबा देनेकी बात सोचनेसे पहले काफी दूर-तक अग्रसर होना होगा। सबसे पहले, तुम अपने अहंको या अपनी सत्ताको तबतक नहीं डुबा सकते जबतक कि तुम पूर्णतः एक व्यक्तिभावापन्न सत्ता नहीं बन जाते। और क्या तुम जानते हो कि इसका अर्थ क्या है—"पूर्णतः व्यक्तिभावापन्न होना" क्या चीज है? इसका अर्थ है एक ऐसी सत्ता बन जाना जो सभी बाहरी प्रभावोंका प्रतिरोध करनेमें समर्थ हो। उस दिन मुझे एक आदमीकी चिट्ठी मिली जिसका कहना है कि वह पुस्तकें पढ़नेसे हिचकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; क्योंकि जो कुछ वह पढ़ता है उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेनेकी एक बहुत प्रबल प्रवृत्ति उसमें विद्यमान है; यदि वह कोई उपन्यास या नाटक पढ़े तो वह उसमें चित्रित पात्र ही बन जाता है और उस पात्रके अनुभवों, विचारों और क्रियाओंसे अभिभूत हो जाता है। इस तरहके बहुतसे लोग होते हैं। यदि वे कोई चीज पढ़ते हैं तो पढ़ते समय वे उन्हीं सब भावनाओं और प्रेरणाओंसे पूर्णतः चालित होते हैं जिन्हें वे पढ़ते हैं तथा उन्हींमें वे एकदम डूब जाते हैं, स्वयं वे भावनाएं और प्रेरणाएं ही बन जाते हैं और इस बातको वे उस समय जानते भी नहीं। इसका कारण यह है कि उनकी प्रकृतिका प्रायः ९९ प्रतिशत भाग मानो मक्खनका बना होता है: यदि तुम उसपर अपनी अंगुली दबाओ तो उसका दाग वहां पड़ जायगा। बस यही है साधारण मनुष्यका स्वभाव। मनुष्यके सामने ज्योंही कुछ आता है, चाहे वह दूसरेका अनुभूत कोई विचार हो, पुस्तकमें पढ़ा हुआ कोई वाक्यांश हो, देखी हुई कोई चीज हो या बस आंखोंके सामनेसे गुजरी हुई कोई घटना हो, किसी पड़ोसीकी कोई इच्छा या चाह हो, त्योंही वह सबका सब गड़बड़-सड़बड़, एक साथ मिला-जुला घुस आता है—घुस आता है और निकल जाता है, फिर दूसरे उसके स्थानमें आ जाते हैं—ठीक बिजलीके प्रवाहकी तरह। और कोई इसका ख्याल भी नहीं करता। फिर इन विभिन्न क्रियाओंके बीच संघर्ष, विरोध होता है, प्रत्येक ही प्रभुत्व पानेकी चेष्टा करती है। इस तरह मनुष्य समुद्रकी लहरोंपर धक्के खानेवाले लकड़ीके एक टुकड़ेकी तरह इधर-उधर झकोरे खाता है।

इस अगठित और अचेतन स्तूपके बदले हमें सचेतन, संबद्ध, व्यक्तिभावापन्न होना होगा, एक ऐसी सत्ता बनना होगा जो अपने इर्दगिर्दकी वस्तुसे स्वतंत्र, स्वयं अपने-आप और अपने-आपमें अस्तित्व रखती हो, जो कोई भी चीज सुन, पढ़ और देख सके और उसके कारण परिवर्तित न हो। वह बाहरसे केवल उसी चीजको ग्रहण करे जिसे वह ग्रहण करना चाहती हो। जो कुछ उसके उद्देश्यके साथ मेल न खाता हो उसे सहज भावसे त्याग दे: कोई चीज उसपर कोई छाप न छोड़ सके जबतक कि वह स्वयं उस छापको रखना न पसंद करे। बस इसी तरह मनुष्य व्यक्तिभावापन्न होना आरंभ करता है। और जब वह एक व्यक्ति बन जाता है केवल तभी वह अपने-आपको दान कर सकता है, क्योंकि जबतक तुम्हारे पास कोई चीज न हो तबतक तुम उसे नहीं दे सकते; जबतक तुम्हारे पास कुछ नहीं है या तुम कुछ नहीं हो तबतक तुम कुछ नहीं दे सकते। अतएव अपने पृथक् अहंको दूर करनेके लिये यह आवश्यक है कि हम अपने-आपको संपूर्णतः, बिना हिचकिचाये सर्वांगीण रूपसे दे देनेमें समर्थ हों। और दे देनेमें समर्थ होनेके लिये हमारे अस्तित्वका होना आवश्यक है तथा अस्तित्व रखनेके लिये हमारा व्यक्ति बनना जरूरी है। यदि तुम्हारा शरीर कठोर न होता जैसा कि यह है—निस्संदेह शरीर भयानक रूपसे कठोर है—यदि यह बिलकुल निश्चित कोई चीज न होता और यदि तुम्हारे अस्थि-पंजरके चारों ओर यह ठोस चमड़ा न होता, तुम अपने प्राण-रूपमें और मन-रूपमें जो कुछ हो ठीक उसीकी अभिव्यक्ति यदि तुम होते तो तुम्हारा रूप लसदार 'जेली' मछलीसे भी अधिक बुरा होता। उस समय सब लोग एक-दूसरेमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घुस जाते और गल जाते, कैसी अस्तव्यस्तता और विशृंखलता होती यह! यही कारण है कि आरंभमें ही एक कठोर आकार दे दिया गया है। और तुम शिकायत करते हो: शरीर इतना कड़ा है, इसमें नमनशीलता, कोमलताका अभाव है—इसमें तरलताका अभाव है जो भगवान्‌में गल जानेकी हमें क्षमता देती है! परंतु इसकी आवश्यकता थी। क्योंकि तुम यदि अपने शरीरसे बाहर होते और शरीरके पीछेके क्षेत्रोंमें—प्राणमय लोकमें—प्रवेश करते तो तुम देखते कि वहां चीजें कैसी हैं: वहां चीजें आपसमें मिल जाती हैं, अलग हो जाती हैं, परस्पर लिपट जाती हैं, वहां सब प्रकारके प्रकंपन, धाराएं और शक्तियां होती हैं जो आती हैं और जाती हैं, संघर्ष और संग्राम करती हैं, एक-दूसरेको पकड़ती हैं, एक-दूसरेको आत्मसात् करती हैं, एक-दूसरेको धकेल देती हैं! इन सब अवस्थाओंके बीच किसी व्यक्तित्वको खोज निकालना बड़ा कठिन होता है। वहां बस होती हैं शक्तियां, क्रियाएं, प्रवृत्तियां, कामनाएं। यह बात नहीं कि वहां व्यक्तित्व और व्यक्ति हैं ही नहीं! परंतु वे शक्तिशाली सत्ताएं हैं। ऐसे जगत्‌में जिन्होंने अपनेको व्यक्ति-रूप प्रदान किया है वे या तो वीर पुरुष हैं या दानव?

और फिर मनमें, यदि तुम केवल स्थूल मनके विषयमें ही सचेतन होओ जो मस्तिष्कसे पृथक्, मस्तकसे स्वतंत्र है तो, तुम देखोगे कि वह वास्तवमें एक बाजार है, यही नाम उसे दिया गया है: प्रत्येक चीज उसमें प्रवेश करती है, सब प्रकारकी भावनाएं और धारणाएं वहांसे बार-बार गुजरती हैं और इधर-उधर घूमती हैं, एक-दूसरेको ढकेलती हैं, एक-दूसरेको धक्के देती हैं—कभी-कभी तो दुर्घटनाएं भी हो जाती हैं। वहां तुम खोज सकते हो कि तुम्हारा अपना मन कहां है पर तुम्हारा खोजना व्यर्थ ही होगा।

अपने-आपको महज गढ़नेमें मनुष्यको वर्षों परिश्रम करना पड़ता है—बहुत यत्नके सहित, खूब सावधानीके साथ, बहुत युक्तिपूर्वक, अत्यंत सुसंबद्ध रूपमें संगठन, चुनाव और निर्माण करना पड़ता है। उदाहरणके लिये इस मामूली-सी बातको ही ले लो—अपने ढंगसे विचार करनेकी पद्धति, इसका निर्माण करनेमें भी दीर्घकाल लग जाता है। तुम समझते हो कि तुम अपने ढंगसे विचार करते हो, तुम नहीं जानते कि अपने विचारोंके लिये तुम कितना उन लोगोंपर निर्भर करते हो जिनसे बातचीत करते हो, उन पुस्तकोंपर निर्भर करते हो जिन्हें तुम पढ़ते हो, अपनी बदलती हुई मनोदशाओंपर निर्भर करते हो; हां, यह सब समय इस बातपर निर्भर नहीं करता कि तुम्हारा पाचन अच्छा है या बुरा, तुम एक कमरेमें बंद हो या खुली हवामें स्वतंत्र विचरण करते हो, क्या दृश्य तुम्हारे चारों ओर है, धूप हो रही है या वृष्टि। तुम्हें इस बातका ध्यान नहीं रहता पर तुम विभिन्न चीजोंके विषयमें विभिन्न रूपोंमें, स्वयं अपनेसे कोई भी संबंध न रखनेवाली अवस्थाओं या परिस्थितियोंके अनुसार विचार करते हो। इसीलिये मैं कहती हूं कि अपने विचारोंको सुव्यवस्थित, सुसंबद्ध, युक्ति-संगत बनानेके लिये तुम्हें सूक्ष्म व्योरेके साथ दीर्घकालतक, बहुत दीर्घकालतक कार्य करनेकी आवश्यकता होगी। और फिर, वही इस बातका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग है, जब तुम एक सुन्दर, सुगठित, खूब सुदृढ़, बहुत शक्तिशाली मानसिक रचनाका निर्माण कर लोगे तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहले तुमसे यह कहा जायगा कि यदि तुम भगवान्‌के साथ युक्त होना चाहो तो तुम इसको भंग कर दो! और जबतक तुम पहले भागको नहीं कर लेते तबतक तुम दूसरे भागको भी नहीं कर सकते, यदि तुम अपने-आपको गठित नहीं करते तो तुम अपने-आपको दे भी नहीं सकते, भगवान्‌को देनेके लिये तुम्हारे पास कुछ होगा ही नहीं। सच पूछो तो तुम किन्हीं अविकसित वस्तुओंके एक ढेरके सिवा कुछ नहीं हो जो तुम्हारा अपना स्वरूप नहीं है। प्रथम तुम्हारा अस्तित्व होना चाहिये, तुम्हें कुछ बनना चाहिये और उसके बाद ही तुम अपनेको दे सकते हो।

वर्तमान समयमें, आजकी यथार्थ स्थितिमें, भगवान्‌को जो कुछ तुम दे सकते हो वह है तुम्हारा शरीर। परंतु ठीक यही वह चीज है जिसे मनुष्य नहीं देता। हां, अपने कामके ऊपर, अपने शारीरिक श्रमके ऊपर एकाग्र होनेकी कोशिश करो; यहां भी ऐसी बहुतसी चीजें हैं जो सच्ची या सही नहीं हैं।

स्वभावतः ही तुम यहां पूछ सकते हो कि शरीरको भगवान्‌में कैसे गलाया जा सकता है। तुम कहते हो कि तुम भगवान्‌में मनको गलानेकी बात, प्राणको गलानेकी बात, विचारों और भावों, भावनाओं और अभीप्साओंको गलानेकी बात तो कुछ-कुछ समझते हो, पर शरीर? यह तो कड़ाहीमें कोई चीज गलानेकी तरह नहीं गलाया जा सकता। और फिर भी एकमात्र वही चीज ऐसी है जिसपर तुम अपना व्यक्तिगत नाम अंकित कर सकते हैं—यद्यपि वह भी केवल एक रूढ़ि है—और कह सकते हो कि यह मैं हूं। अवश्य ही यदि तुम शीशेमें अपनेको देखो तो तुम स्पष्ट देखोगे कि तुम बीस वर्ष पहले जो कुछ थे वह अब नहीं हो, अब तुम एकदम दूसरे व्यक्ति हो जिसे बिलकुल ही पहचाना नहीं जा सकता। फिर भी तुम्हें यह बोध है कि यह वही व्यक्ति है, स्वयं तुम ही हो। तुम उसी चीजसे अपने-आपको देना आरंभ कर सकते हो जो अत्यंत अधिक गठित है, जिसे तुम अत्यंत अधिक अपना स्वरूप समझते हो।

मेरा मतलब अत्यंत जटिल क्रियाओंके सम्मुख तुम्हें ले जाना नहीं है। मेरा कहना बस यही है कि यदि तुम भगवान्‌में गल जानेकी, भगवान्‌के साथ एक हो जानेकी बात कहते हो तो तुम्हें सर्वप्रथम यह जानना चाहिये कि तुम क्या हो। तुम बाह्यतः अहंकार हो। यह वहां मौजूद है। अहंकारका कार्य है तुम्हें सचेतन बनाना, एक स्वतंत्र, व्यक्तिभावापन्न सत्ता बनाना—कहनेका मतलब, तुम्हें एक ऐसा बाजार नहीं बने रहना चाहिये जहां सभी प्रकारकी क्रियाएं मिलती-जुलतीं और धक्केबाजी करती हैं; तुम्हें अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रखनेमें समर्थ होना चाहिये। अहंकार इसीके लिये है और यही कारण है कि तुम्हें एक चमड़ा दिया गया है, जिसमें कि तुम एक बंद वृत्त बना लो (निश्चय ही जो ऐसा हो कि अपने छिद्रोंमेंसे चीजोंको छनकर आने तो दे पर आने दे तुम्हारी इच्छा और आज्ञासे ही)।

तुम्हें अपनी सत्ताका निर्माण करना होगा, अपने विषयमें सचेतन होना होगा—साधारण रूपमें ही नहीं वरन् प्रत्येक ब्यौरेके साथ। जिसे तुम 'हम' कहते हो उसकी प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी-मोटी चीज एक केंद्रके, तुम्हारे सच्चे स्वरूपके, तुम्हारे अंदर विद्यमान दिव्य सत्ताके चारों ओर व्यवस्थित होनी चाहिये, जिसमें कि समूची सत्ता सुसंबद्ध और सुगठित एक सत्ता बन जाय। जब दिव्य केंद्रके इर्दगिर्द इस तरह वह संपूर्ण सचेतन, सुसमंजस रूपमें सुसंगठित हो जायगी तब वह सर्वांगीण रूपमें भगवान्‌को निवेदित हो सकेगी, उनके साथ युक्त हो सकेगी; फिर उसके बाद वह समय आयगा जब कि भगवान् अपने साथ सच्चा एकत्व प्राप्त करनेकी अनुमति देते हैं। जब व्यक्तित्वका निर्माण-कार्य पूरा हो जाता है तभी वह तुम्हें अपना अहं अपने अंदर डुबाने देते हैं, और तुम एकमात्र भगवान्‌के लिये ही जीवन यापन करते और अस्तित्व रखते हो।

*
**

दिव्य प्रेम

"भागवत प्रेमकी तीव्रता सत्ताके किसी भागमें कोई हलचल नहीं पैदा करती" (योगके मौलिक तत्त्व)। क्यों पैदा करेगी? यदि वहां कोई हलचल है तो यह अधिक संभव है कि वहां कोई दूसरे ही प्रकारका प्रेम होगा। अगर वहां भागवत प्रेम हो तो वहां कोई हलचल नहीं हो सकती। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति उसे अपनी क्षमताके अनुसार ग्रहण करता है।

भागवत प्रेम अपनी पूर्ण तीव्रताके साथ, एक महान् शक्तिके रूपमें विद्यमान है। परंतु अधिकांश लोग, सौमें निन्यानवे मनुष्य एकदम कुछ भी अनुभव नहीं करते। वे जो कुछ हैं, जो कुछ वे ग्रहण और धारण कर सकते हैं, ठीक उसीके अनुपातमें वे अनुभव करते हैं। सच पूछो तो तुम भागवत प्रेमसे स्पंदित एक वातावरणमें सर्वदा डूबे रहते हो। कभी-कभी, विरले अवसरोंपर, शायद कुछ सेकंडोंके लिये तुम्हें सहसा किसी चीजका ठीक भान होता है और तुम कहते हो, "हां, भागवत प्रेम मेरे पास आया!" परंतु यह कहनेका एक तरीका है। सच्ची बात तो यह है कि किसी-न-किसी कारणसे तुम थोड़ा-सा खुल गये और तुम्हें उस चीजका बोध हो गया जो हमेशा ही तुम्हारे साथ रहती है। दिव्य प्रेम विद्यमान है और उसी तरह दिव्य चेतना भी विद्यमान है। आखिर वे दोनों एक ही चीज हैं। वे सब समय ही विद्यमान हैं, केवल तुम उन्हें अनुभव नहीं करते या केवल आकस्मिक रूपमें करते हो। एक बार किसी तरह तुम अपने-आपको, मानो बिना किसी कारणके, उस सुखद स्थितिमें पाते हो और तुम घोषणा करते हो कि आखिरकार भागवत प्रेम मेरी ओर मुड़ा है! परंतु, जैसा कि मैं कहती हूं, बात उस तरहकी नहीं है। तुम्हारे अंदर कोई उद्‌घाटन हो गया, संभवतः सुईकी नोकसे अधिक नहीं, और वह उस चीजके भीतर घुस आनेके लिये काफी था; क्योंकि वातावरण उससे सराबोर है और जहां-कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके ग्रहण किये जानेकी संभावना है वहीं वह ग्रहण की जाती है। यही बात सब दिव्य वस्तुओंपर लागू होती है। वे विद्यमान हैं; तुम उन्हें न तो ग्रहण करते हो न देखते हो, क्योंकि तुम घिरे हुए हो, बंद हो, रुंधे हुए हो। तुम अधिकांश समय अन्य चीजोंमें संलग्न रहते हो। तुम अपने-आपसे भरे रहते हो, उससे ठसाठस भरपूर रहते हो और वहां दूसरी किसी चीजके लिये कोई स्थान नहीं होता। तुम केवल निष्क्रिय रूपमें ही नहीं बल्कि सक्रिय रूपमें अपने-आपसे भरपूर रहते हो, तुम स्वयं अपने साथ प्रचंड रूपमें व्यस्त रहते हो। ऐसी अवस्थामें भला तुम अपने आस-पास, अपने चारों ओर विद्यमान अद्भुत वस्तुओंको कैसे देख सकते हो? तुम अचानक एक झलक पाते हो, शायद उस समय जब कि तुम सोये होते हो; परंतु वह चीज शीघ्र ही विलीन हो जाती है। मनुष्यका अहंकार एक भयानक वस्तु है; समूचा विश्व उसके लिये महज उसके अहंकारका ही कार्य है। तुम केंद्र हो और सारी सृष्टि तुम्हारे चारों ओर चक्कर काट रही है। विश्वके विषयमें तुम्हारी दृष्टि ऐसी ही है। यह जैसा है वैसा तुम इसे नहीं देखते; जब तुम इसकी ओर ताकते हो तब महज अपने-आपको ही देखते हो।

अतएव, आरंभमें तुम्हें अपने अहंसे बाहर निकल आनेमें समर्थ होना चाहिये। प्रथम पगके रूपमें तुम्हें एक ऐसी स्थितिमें प्रवेश करना होगा जहां तुम्हारा अस्तित्वतक न होगा। केवल वहींसे, अर्थात् एक ऊंचाईसे, तुम वस्तुओंको ठीक वैसी ही देखना आरंभ करोगे जैसी कि वे हैं। यदि तुम वस्तुओंको वैसी ही देखना चाहो जैसी कि वे वास्तवमें हैं तो तुम्हें पूर्ण रूपसे एक दर्पणकी तरह बन जाना होगा—निश्चल-नीरव, शांतिपूर्ण, अचल-अटल, तटस्थ, रुचि-अरुचिसे शून्य, पूर्ण ग्रहणशीलताकी अवस्थामें स्थित। तब तुम ऐसी बहुतेरी चीजें देखना आरंभ कर दोगे जो पहले वहां दिखायी नहीं देती थीं पर केवल अब सक्रिय होती हुई प्रतीत होती हैं। फिर इस अनंत विश्वके अंदर एक अत्यंत नन्हें-से बिंदुमें, जिसे तुम अपना स्वरूप कहते हो, बंद रहनेके बदले इन चीजोंमेंसे किसी एकके अंदर खूब अच्छी तरह घुस जाओगे। ऐसे कई तरीके हैं जिनसे तुम अपने 'अहं'से बाहर निकल सकते हो। जैसे भी हो, बस यही एकमात्र करने योग्य बात है, यदि तुम संसारको जैसा कि वह है वैसा देखना चाहो, उस रूपमें न देखना चाहो जिसमें कि वह तुम्हारे ही 'अहं'का एक कार्य प्रतीत होता है।

अब, अहंकारसे बाहर निकलनेके लिये तुम्हें स्वभावतः ही सबसे पहले वैसा करनेकी इच्छा रखनी होगी। ऐसा करनेका सबसे अधिक पक्का रास्ता है अपने-आपको भगवान्‌के प्रति निवेदित कर देना, भगवान्‌को अपनी ओर न खींचना बल्कि अपने-आपको उनके चरणोंमें न्योछावर कर देना। इसी तरह तुम अपने-आपको भूलना आरंभ करते हो। साधारणतया जब मनुष्य भगवान्‌की बात सोचते हैं तब उनमें जो तत्काल प्रवृत्ति उठती है वह भगवान्‌को (अथवा जिसे वे उनका स्वरूप कहते हैं उसे) अपनी ओर या अपने अंदर खींचनेकी होती है। सामान्यतः इसका परिणाम यह होता है कि वे कुछ भी ग्रहण नहीं करते; और वे शिकायत करते हैं: "ओह! मैंने पुकारा और लगातार पुकारा, मैंने प्रार्थना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की और निरंतर की, पर कोई उत्तर नहीं मिला, मुझे कुछ नहीं मिला, कुछ नहीं आया।" परंतु शिकायत करनेसे पहले अपने-आपसे पूछो कि क्या तुमने अपने-आपको अर्पित किया था। तुम देखोगे कि अपने-आपको अर्पित करनेके बदले तुमने खींचा था। उदार, मुक्त-हस्त, विशाल-हृदय होनेके बदले तुम एक कंजूस, भिखारी बन गये थे। जब तुम खींचते हो तब तुम संपूर्ण अपने ही अंदर बने रहते हो, अपने अहंके अंदर मोहर-बंद रहते हो। तुम अपने और उस चीजके बीच पार्थक्यकी एक दीवाल खड़ी कर देते हो जो तुम्हारे चारों ओर है और तुम्हारे अंदर आना चाहती है, जिसे इस तरह घुसने नहीं दिया जाता, प्रायः जान-बूझकर जिसे आने देना अस्वीकार कर दिया जाता है। तुम एक कैदखानेमें अपने-को बंद कर लेते हो और मनमें कुढ़ते हो कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है, तुम कुछ भी अनु-भव नहीं करते। कम-से-कम यदि एक भी जंगला तुमने खोला होता तो तुम्हारे चारों ओर थोड़ीसी रोशनी और हवा अवश्य आयी होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४

साधारण विषय

बुद्ध और शंकर

(१)

जीवनसे भागनेकी शिक्षा इस दृष्टिपर आधारित है कि जीवन माया-मरीचिका है। इस शिक्षाका आरंभ बुद्धसे हुआ था। बुद्धने कहा कि जीवन या अस्तित्व कामनाका फल है और इस विपत्तिसे छुटकारा पानेका महज एक ही पथ है, अर्थात्, अस्तित्वसे बाहर निकल जाना। शंकरने उसी धाराको और आगे बढ़ाया। परंतु उन्होंने कहा, अस्तित्व महज कामनाका फल नहीं है, बल्कि यह एकदम एक भ्रम है और जबतक मनुष्य इस भ्रममें निवास करता है तबतक वह भगवान्‌को नहीं प्राप्त कर सकता। उनके लिये भगवान्—परात्पर भगवान्—का कोई अस्तित्व नहीं। मैं समझती हूं कि उनका विचार कुछ-कुछ ऐसा ही था। जो हो, बुद्धके लिये कोई ईश्वर नहीं था।

इन दोनोंका संपर्क किसी ऐसी चीजसे हुआ था जो सच्ची और यथार्थ है। बुद्धको निश्चय ही किसी ऐसी वस्तुके साथ आंतर संपर्क प्राप्त हुआ था जो, बाह्य जीवनके मुकाबले, उन्हें असत् प्रतीत हुई और उस अ-सत्‌के अंदर सत्‌का, अस्तित्वका सारा परिणाम विलीन हो गया। निस्संदेह ऐसी एक स्थिति है। और यह कहा जाता है कि यदि तुम उस स्थितिमें बीस दिनसे अधिक रहो तो तुम निश्चित रूपसे अपना शरीर खो दोगे। मैं समझती हूं कि बात ठीक है, यदि वह अवस्था अनन्य हो जाय। परंतु यह एक ऐसा अनुभव भी बन सकता है जो पीछे बना रहे, सचेतन रूपमें बना रहे और फिर भी एकदम अनन्य न हो। दूसरे शब्दोंमें, उस समय संसार और बाह्य चेतनाके साथ संपर्क बना रहता है और वह ऐसी एक चीजपर अवलंबित होता है जो उनसे स्वतंत्र और मुक्त होती है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें तुम सचमुचमें अपनी बाह्य चेतनामें महान् उन्नति कर सकते हो; क्योंकि उस समय तुम अपने-आपको प्रत्येक चीजसे अनासक्त रख सकते हो और बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसक्तिके, बिना पसंदगीके तथा बाह्य जीवनमें अपने-आपको व्यक्त करनेवाली एक आंतरिक स्वतंत्रतामें कार्य कर सकते हो। एक बार जब तुम इस आंतरिक स्वतंत्रताको प्राप्त कर लेते हो, शाश्वत और अनंतके साथ यह सचेतन संपर्क स्थापित कर लेते हो, तब तुम्हें उस चेतनाको खोये बिना कर्मकी ओर मुड़ना चाहिये और कर्मकी ओर मुड़ी हुई समस्त चेतनापर उसे प्रभाव डालने देना चाहिये।

श्रीअरविंद जो यह कहते हैं कि ऊपरसे शक्तिको उतारना चाहिये वह यही बात है। बस उसी तरीकेसे संसारको परिवर्तित करनेकी संभावना है; क्योंकि उस पद्धतिमें तुम एक नयी शक्ति, एक नया क्षेत्र, एक नयी चेतना प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हो और तुम उसे बाह्य जगत्‌के संपर्कमें रखते हो। उसकी उपस्थिति और क्रिया, हम आशा करते हैं, बाहरी जगत्‌में अनिवार्य रूपसे परिवर्तन लायेगी, एक सर्वांगीण रूपांतर लायेगी।

(२)

इसमें संदेह नहीं कि बुद्धको इस अनुभवका पहला अंश प्राप्त हुआ था; परंतु उन्होंने दूसरे अंशका कभी विचार नहीं किया, क्योंकि यह स्वयं उन्हींके सिद्धांतके विरुद्ध था। उनका सिद्धांत था कि मनुष्यको संसारसे निकल भागना चाहिये। और यह स्पष्ट है कि भागनेका केवल एक ही रास्ता है और वह है मर जाना। और फिर भी, जैसा कि स्वयं उन्होंने भी इस बातको बहुत स्पष्ट रूपमें कहा था, मनुष्य मर सकता है और फिर भी जीवनसे आसक्त रह सकता है तथा बिना मुक्ति पाये पुनर्जन्मके चक्रमें बना रह सकता है। सच पूछा जाय तो बार-बार पार्थिव जीवनमें आकर ही मनुष्य वर्द्धित होता है और एक दिन इस मुक्तिकी अवस्थाको प्राप्त होता है। बुद्धका आदर्श वह वस्तु थी जहां जगत्‌का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह बात ऐसी है मानो उन्होंने भगवान्‌पर यह दोषारोपण किया हो कि उन्होंने जगत्‌की सृष्टि करके एक भूल ही की है और एकमात्र कर्तव्य है इसका नाश करके उस भूलको सुधार देना। स्वभावतः ही, जैसा कि संपूर्णतः बुद्धिसंगत और न्याय-संगत था, उन्होंने भगवान्‌के अस्तित्वको ही नहीं स्वीकार किया। पर, तब यह भूल की किसने? कब और कैसे यह भूल हो गयी? उन्होंने कभी इन प्रश्नोंका उत्तर नहीं दिया। उन्होंने बस इतना ही कहा कि संसारका आरंभ कामनासे हुआ था और कामनाका अंत होनेसे इसका भी अंत अवश्य हो जायगा।

वह यह कहनेके करीब पहुंच गये थे कि संसारका अस्तित्व विशुद्ध आंतरिक है, अर्थात् यह एक समष्टिगत भ्रम है और यदि यह भ्रम दूर हो जाय तो संसारका अस्तित्व भी लोप पा जायेगा। परंतु वह इतनी दूरतक नहीं बढ़े। उनके बाद शंकरने ही इस धाराको ग्रहण किया और इस शिक्षाको इसकी पूर्णतातक पहुंचाया।

परंतु अत्यंत प्राचीन ज्ञानमें, उदाहरणार्थ, यदि कोई वैदिक ऋषियोंकी शिक्षातक पीछे जाय तो वह वहां संसारसे भागनेकी भावना नहीं पायेगा; उन्होंने पृथ्वीपर ही एक सिद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करनेकी चेष्टा की और उन्होंने एक ऐसे स्वर्णयुग (सत्ययुग) की भी कल्पना की जब कि वह सिद्धि प्राप्त हो जायेगी।

इस बातमें कोई संदेह नहीं कि बुद्धकी शिक्षाके समयसे ही भागनेकी भावना उत्पन्न हुई; और उसने धीरे-धीरे इस देशकी प्राणशक्तिकी जड़ ही खोद डाली है, क्योंकि इसका अर्थ था अपने-आपको जीवनसे ही दूर हटा लेनेका प्रयास। बाह्य सत्ता मिथ्या माया बन गयी और मनुष्यका कर्तव्य हो गया उससे कोई संबंध न रखना। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि लोगोंने विश्व-शक्तिसे अपना संबंध-विच्छेद कर डाला और इसलिये प्राण-शक्ति घटने लगी, तथा प्राणशक्तिके कम होनेके साथ-साथ पार्थिव सिद्धिकी समस्त संभावना भी कम हो गयी।

(३)

कुछ लोग कहते हैं कि बुद्ध एक अवतार थे, दूसरे कहते हैं कि नहीं थे।

भारतमें प्रचलित नामोंको यदि हम व्यवहृत करें तो मैं समझती हूं कि वे सब विष्णुके (भगवान्‌के उस रूपके जो रचता और रक्षण करता है) अवतार थे जो यह सिद्ध करनेके लिये आये कि भगवान् पृथ्वीपर रह सकते हैं; जब कि, प्रत्येक बार शिव (वह रूप जो रूपांतरित करने और नाश करनेके लिये कार्य करता है) उन व्यक्तियोंमें अवतरित हुए हैं जिन्होंने मायाके विरुद्ध युद्ध करनेकी तथा जो कुछ विद्यमान था उसका नाश करनेकी चेष्टा की है।

मेरे पास यह समझनेके कारण हैं कि बुद्धने शिव-शक्तिके कुछ अंशको अभिव्यक्त किया था। यह सब प्रकारके दुःख-संतापके लिये वही करुणा और वही बोध था और यह वही शक्ति थी जो नाश करती है, स्पष्ट ही रूपांतरित करनेके इरादेसे नाश करती है, पर निर्माण-की अपेक्षा नाश अधिक करती है।

निश्चय ही ऐसा नहीं प्रतीत होता कि बुद्धका कार्य बहुत निर्माणकारी था। मनुष्यको यह व्यावहारिक शिक्षा देनेकी आवश्यकता थी कि वह अहंशून्य बने। इस दृष्टिसे उनका कार्य उपयोगी सिद्ध हुआ।

परंतु यदि तुम उसे उसके मौलिक सिद्धांतके रूपमें लो तो कहना होगा कि पृथ्वी और पार्थिव जीवनको रूपांतरित करनेमें उसने बहुत अधिक सहायता नहीं की है। उसने पार्थिव जीवनके अंदर किसी उच्चतर चेतनाके अवतरणको प्रोत्साहित नहीं किया है; बल्कि उसने बहुत प्रबल रूपमें समस्त बाह्य अभिव्यक्तिसे चेतनाके, जिसे बुद्धने एकमात्र सत्य कहा, पृथक्करणको ही प्रोत्साहित किया है।

और भगवान्‌के अस्तित्व या अभिव्यक्तिका जहांतक संबंध है, जो लोग बुद्धमें विश्वास करते हैं उन्होंने अब उन्हें एक देवता बना दिया है। तुम्हें महज बौद्ध मंदिरोंमें और उनकी समस्त देवमंडलीकी ओर दृष्टि भर दौड़ानेकी जरूरत है और तुम समझ जाओगे कि मानव-स्वभाव जिसे आदरकी दृष्टिसे देखता है उसे देवता बना देनेकी प्रवृत्ति उसमें सर्वदा ही रही है।

*
**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिथियोंका आध्यात्मिक अर्थ

क्या किसी विशेष तिथिका या क्रमागत कई तिथियोंका कोई विशेष आध्यात्मिक अर्थ होता है?

दिन-पत्र या पंचांग (Calendar) बनानेका तरीका एक प्रथा है। यदि किसी प्रथाको सर्वसामान्य बना दिया जाय, जैसा कि आजकल करनेका प्रयास हो रहा है, तो वह एक बहुत शक्तिशाली रचना बन जा सकती है। परंतु बहुसंख्यक लोगोंके लिये अर्थपूर्ण बननेके लिये यह आवश्यक है कि पहले बहुसंख्यक लोग उसे स्वीकार करें। 'रचना' से मेरा मतलब है एक मूर्त्ति जिसमें एक ऐसी शक्ति संचारित हो जो उसे एक सजीव वस्तु बना दे, एक ऐसी मूर्त्ति जिसका व्यवहार एक प्रतीकके रूपमें किया जा सके। ऐसे लोग होते हैं जो मूर्त्तियोंका निर्माण कर सकते और उन्हें प्रतीकके रूपमें प्रयुक्त कर सकते हैं, पर यह सब केवल स्वयं उनके लिये ही होता है, जैसे कि स्वप्नोंके प्रतीक होते हैं। ये शुद्ध रूपमें आंतरिक होते हैं और वे वहींतक लागू होते हैं जहांतक कि उन व्यक्तियोंका अपना व्यक्तिगत संबंध होता है।

परंतु तुम्हारा दिन-पत्र (Calendar) यदि लगभग समूची मनुष्यजातिके द्वारा गृहीत हो जाय तो उसका प्रतीक एक बहुत विशाल क्षेत्रमें काम करनेमें समर्थ हो जायगा। तुम उस मूर्त्तिके द्वारा बहुसंख्यक लोगोंपर कार्य कर सकते हो। चूंकि यह विशुद्ध रूपमें रूढ़िगत है, मैं फिर दुहराती हूं, इसलिये यह केवल उसी हदतक फलदायी होता है जिस हदतक यह स्वीकार किया जाता है, यदि असंख्य लोगोंके बदले, जो आज यूरोपीय दिन-पत्रको मान रहे हैं, केवल तीन या चार ही लोग होते तो यह दिन-पत्र उन थोड़ेसे लोगोंके लिये ही अर्थपूर्ण होता। स्वयं इस चीजका कोई मूल्य नहीं, तुम इसका जो उपयोग करते हो बस उसीपर इसका मूल्य निर्भर करता है।

मैंने कहा है, रूढ़ियां प्रतीकके रूपमें उपयोगी होती हैं, तात्पर्य, वे ऐसे साधन हैं जो तुम्हें अधिक सूक्ष्म चीजके संस्पर्शमें ला देते हैं, जो कुछ स्थूल है उसे अधिक सूक्ष्म वस्तुओंके संपर्कमें ला देते हैं। यही उनका उपयोग है।

यहां हम उस भूलकी भी चर्चा करेंगे जिसे लोग ग्रह-नक्षत्रों और जन्मपत्रियोंके संबंधमें करते हैं। क्योंकि वह सब महज एक भाषा और एक प्रचलित पद्धति है। यदि तुम उस रूढ़िको स्वीकार करो तो तुम उसे किसी विशिष्ट कार्यके लिये व्यवहृत कर सकते हो। परंतु जितने लोग उसमें विश्वास करते हैं उनकी संख्याके अनुपातपर ही उसका मूल्य और महत्त्व निर्भर करता है। परंतु तुम यदि उसे सरल-सहज बना दो तो जितना ही अधिक तुम उसे वैसा बनाओगे उतना ही अधिक वह एक अंधविश्वास बनता जायगा। क्योंकि, आखिर अंधविश्वास है क्या? यह एक विशिष्ट वस्तुको सर्वसामान्य बनाकर उसका अपव्यवहार करना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं बराबर ही सीढ़ीके नीचेसे गुजरनेवाले एक व्यक्तिका उदाहरण देती हूं। एक आदमी सीढ़ीके सबसे ऊपरी डंडेपर काम कर रहा था और संयोगवश उसका यंत्र नीचे उस व्यक्तिपर गिर पड़ा और उससे उसका सिर फूट गया।

इस समस्त दुर्घटनाको देखनेवाले एक व्यक्तिने एक साधारण नियम बनाया कि किसी सीढ़ीके नीचेसे गुजरना बुरा शकुन है। हां, तो यह एक विशुद्ध और स्पष्ट अंधविश्वास है।

सच पूछा जाय तो हमारा अधिकांश ज्ञान इसी तरह उत्पन्न होता है। इसी तरह अनुकूल अवस्थाओंके होनेपर किसी खास बीमारीवाले कुछ लोगोंको नीरोग करनेके लिये एक दवा ढूंढ़ निकाली जाती है। फिर यह घोषणा की जाती है कि यह दवा उस बीमारीके लिये रामवाण औषध है। पर यह बात सच नहीं है। यदि वही दवा सौ मनुष्योंको दी जाय तो वह उनपर सौ अलग-अलग ढंगोंसे असर करेगी; कभी-कभी तो प्रतिक्रियाएं एकदम उलटी भी होती हैं। किन्हीं दो मरीजोंपर उसका परिणाम एक जैसा नहीं होगा। अतएव स्वयं यह औषधका गुण नहीं है जो स्वस्थता लाता है। ओषधियोंकी अचूक क्षमतापर विश्वास करना एक अंध-विश्वास ही है।

हम थोड़ा और आगे बढ़कर यह कह सकते हैं कि विज्ञान और अंध-विश्वासमें बहुत थोड़ा ही अंतर है! एकमात्र अंतर है अपनी बात प्रकट करनेके तरीकेमें। अगर तुम वैज्ञानिकोंकी तरह सावधानीके साथ यह कहो: "ऐसा मालूम होता है कि यह ऐसा है, हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि चीजें ऐसी प्रतीत होती हैं" आदि-आदि, तो फिर यह अंध-विश्वास नहीं कहा जायगा। परंतु तुम यदि स्पष्ट रूपमें यह दावा करो कि "यह ऐसा ही है", तो तुम अंधविश्वासमें जा गिरते हो।

*
**

रुपये-पैसेका मूल्य

जितना ही अधिक किसीको पैसा मिलता है उतना ही अधिक वह विपत्तिमें पड़ता है। वास्तवमें वह एक विपत्ति ही है, मेरे बच्चो!

रुपये-पैसेका होना एक महाविपत्ति है। पैसा तुम्हें मूढ़ बना देता है, वह तुम्हें लोभी, कुकर्मी बना देता है। यह संसारकी एक सबसे बड़ी आफत है। धन वह वस्तु है जिसे मनुष्यको तबतक नहीं रखना चाहिये जबतक कि वह कामनासे शून्य, आसक्तिसे रहित न हो जाय, जब किसीको पृथ्वीके समान विशाल चेतना प्राप्त हो जाय तभी वह पृथ्वीका सारा धन अपने पास रख सकता है और यह सबके लिये अच्छा होगा। परंतु जबतक वैसी चेतना नहीं प्राप्त होती तबतक जितना धन तुम्हारे पास है उतना ही अभिशाप भी तुम्हारे ऊपर है। यह बात मैं प्रत्येक व्यक्तिके मुंहपर कहूंगी, यहांतक कि उस मनुष्यके मुंहपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कहुंगी जो धनी होना एक गुण समझता है। यह एक आपत्ति है, यह शायद एक प्रकारका अपमान भी है, भागवत करुणा प्राप्त करनेकी स्थितिसे पतन है, एक प्रकारके भागवत असंतोषकी अभिव्यक्ति है।

धनी होना और उसके साथ ही ज्ञानवान्, बुद्धिमान और उदार होना बहुत कठिन है। 'उदार होना' इस बातपर जरा ध्यान दो, गरीबकी अपेक्षा धनीके लिये उदार बनना अनंतगुना अधिक कठिन है। अनेक देशोंमें अनेक लोगोंसे मेरी मुलाकात और जान-पहचान हुई है। अत्यंत उदार व्यक्ति सर्वदा ही अत्यंत गरीब थे। ज्योंही तुम्हारा पाकेट भर जाता है त्योंही मानो किसी रोगसे, धनके प्रति हीन कोटिकी आसक्तिसे तुम ग्रस्त हो जाते हो। मैं विश्वास दिलाती हूं यह एक अभिशाप ही है।

अतएव, जब किसीके पास धन हो तब उसके लिये सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वह उसे दे डाले। परंतु तुम्हें यह जानना चाहिये कि बिना सोचे-समझे उसे नहीं दे डालना चाहिये। तुम उस तरह धन मत दो जिस तरह कि एक दानी देता है; क्योंकि वह तरीका उसे केवल उसकी अपनी दयालुता, उदारता और महत्ताकी भावनासे भर देता है। तुम्हें यह कार्य सात्त्विक भावके साथ करना चाहिये, कहनेका आशय, देखो कि उसका सबसे उत्तम उपयोग होनेकी संभावना कहांपर है। इस तरह प्रत्येक व्यक्तिको अपनी निजी चेतनाके अंदर, जो उच्चतम चेतना उसे प्राप्त है उसमें खोजना होगा कि जो धन उसके पास है उसका सर्वोत्तम संभाव्य उपयोग क्या है।

सच बात तो यह है कि धनका केवल उतना ही मूल्य होता है जितना कि वह व्यवहार-में रहता है। प्रत्येक व्यक्तिके लिये धनका केवल तभी मूल्य है जब कि वह खर्च किया जाता है। मनुष्यने धनके बदले एक ऐसा पदार्थ चुननेका कष्ट उठाया है जो खराब नहीं होता, जैसे, सोना और चांदी, परंतु फिर भी नैतिक दृष्टिकोणसे, जब वह कार्यमें व्यवहृत नहीं होता तब वह सड़ता है। आजकल धातुकी जगह कागजका व्यवहार किया जाता है, पर तुम यदि अपने कागजोंके पुलिंदेको अपनी दराजमें रख दो तो कुछ दिनोंके बाद तुम देखोगे कि तुम्हारी सारी पूंजी घिस गयी है, खा ली गयी है। कीड़े-मकोड़े जाली बुनकर तुम्हें दे देंगे और उसे ग्रहण करना तुम्हारे बैंक अस्वीकार कर देंगे!

ऐसे लोग और ऐसे धर्म हैं जो कहते हैं कि ईश्वर जिन लोगोंको प्यार करते हैं उन्हें गरीब बना देते हैं। मैं नहीं जानती कि यह बात सच है या नहीं, परंतु एक बात जो सच है वह यह है कि जब कोई धनी होकर ही जन्म लेता है या जब कोई धनवान हो जाता है, हर हालतमें जब किसीके पास बहुत, अर्थात् भौतिक धन बहुत होता है तब निश्चय ही यह इस बातका चिह्न नहीं है कि भगवान्‌ने उसे अपनी करुणाके लिये चुना है; यदि वह भगवान्‌की ओर सीधे रास्तेसे, सच्चे मार्गसे चलना चाहता है तो उसे काफी मात्रामें प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता होती है।

धन-संपदा एक शक्ति है; मैं तुम्हें एक बार पहले बतला चुकी हूं कि यह प्रकृतिकी एक शक्ति है। इसे व्यवहारके चलते रहनेका एक साधन, एक गतिशील शक्ति होना चाहिये,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक जिस तरह कि बहनेवाला पानी एक गतिशील शक्ति होता है। यह एक ऐसी चीज है जो उत्पादन, संगठनमें सहायता करती है। यह व्यापारिक वस्तुओंके पूर्ण और मुक्त आवागमनके लिये एक सुविधाजनक साधन है--क्योंकि मूलतः यह महज एक साधन ही है। और यह शक्ति उन्हीं लोगोंके हाथोंमें रहनी चाहिये जो यह जानते हैं कि इसका सर्वोत्तम संभाव्य उपयोग कैसे किया जा सकता है, दूसरे शब्दोंमें, ऐसे लोगोंके हाथोंमें रहनी चाहिये, जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूं, जिन्होंने अपने अंदरसे समस्त व्यक्तिगत कामना, समस्त आसक्तिको दूर कर दिया है, जो कुछ-कुछ इन दोनों चीजोंसे मुक्त हो चुके हैं। उसके साथ-साथ वह दूर-दृष्टि भी अवश्य जुड़ी होनी चाहिये जो पार्थिव जीवनकी आवश्यकताओंको समझनेके लिये पर्याप्त विस्तृत हो, वहां एक पूर्ण ज्ञान होना चाहिये जो उन आवश्यकताओं-को संगठित करने और उन्हें पूरा करनेके लिये इस शक्तिका उपयोग करनेमें समर्थ हो।

इसके अतिरिक्त, यदि ऐसे लोगोंको एक उच्चतर आध्यात्मिक चेतना प्राप्त हो तो फिर वे पृथ्वीपर धीरे-धीरे एक ऐसी चीज निर्माण करनेमें इस शक्तिका व्यवहार कर सकते हैं जो भागवत शक्ति और भागवत करुणाको अभिव्यक्त करनेके योग्य होगी। ऐसा होनेपर ही यह रुपये-पैसेकी, धन-संपत्तिकी शक्ति, अर्थकी यह शक्ति, जैसा कि मैंने कहा है, अभिशाप होनेके बदले, सबके मंगलके लिये एक आशीर्वाद बन जायगी। कहावत है कि सबसे बुरे लोग ही सबसे अच्छे बनते हैं। मैं आशा करती हूं कि सबसे अच्छी चीज सबसे बुरी नहीं बनती, क्योंकि वह सचमुचमें दुःखदायी बात होगी।

महत्तम शक्ति जब बुरे रूपमें प्रयुक्त होती है तब वह एक बहुत बड़ी विपदा बन सकती है; वही शक्ति अच्छे रूपमें प्रयुक्त होनेपर मंगलकारी वस्तु बन सकती है।

सब कुछ इस बातपर निर्भर करता है कि किसी चीजका क्या उपयोग किया जाता है। प्रत्येक वस्तुका संसारमें एक स्थान है, एक कार्य है, एक सच्चा उपयोग है। परंतु इस जगत्-में, जैसा कि यह है, बहुत थोड़ीसी चीजें ही अपने सच्चे उद्देश्यके लिये काममें लायी जाती हैं, बहुत थोड़ीसी चीजें ही अपने समुचित स्थानमें हैं। संसार एक भयावह अस्तव्यस्तता-की अवस्थामें है। यही कारण है कि यहां ये सब विपत्तियां, ये सब दुःख-कष्ट हैं। यदि प्रत्येक चीज अपने निजी स्थानमें हो, सब कुछ एक सुसमंजस स्थितिमें हो तो समूचा संसार जिस संकट और दुःख-क्लेशकी स्थितिमें अभी है, उसमें पड़नेकी किसी आवश्यकताके बिना वह प्रगति कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदिति

सह

भारत माता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अदिति कार्यालय, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनमें सब प्रकारके भय, संकट और विनाशके प्रति सशस्त्र होकर चलनेके लिये दो ही चीजें जरूरी हैं और ये दोनों ऐसी हैं जो सदा एक साथ रहती हैं—एक भगवती माताकी कृपा और दूसरी, तुम्हारी ओरसे ऐसी अन्तःस्थिति जो श्रद्धा, निष्ठा और समर्पणसे गठित हो।

—श्रीअरविन्द

पत्रिकाका शुल्क

वार्षिक ६) एक साधारण अङ्क रु० १.७५

विदेशका शुल्क

वार्षिक १२।। शिलिंग एक अङ्क ३।। शिलिंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदिति

सह

भारत माता

श्रीअरविंदकी विशाल आध्यात्मिक जीवन-दृष्टिसे प्रेरित

त्रैमासिक पत्रिका

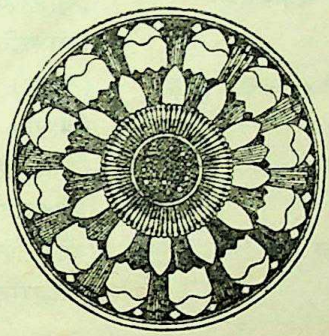

सत्तासीवीं कला

श्रीअरविंदके जन्मदिवस १५ अगस्त १९६४ के उपलक्ष्यमें

अदिति कार्यालय, श्रीअरविंद आश्रम

पांडिचेरी-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

अदिति सह भारतमाता, १५ अगस्त, १९६४

विषय		पृष्ठ
१. श्रीमांका संदेश		३
२. प्रश्नोत्तर	(श्रीमां)	४
३. नित्य उपस्थितिका अनुभव	(श्रीमां)	५
४. भगवान्‌की इच्छा कैसे जानी जाय ?	(श्रीमां)	६
५. उपनिषदोंका सर्वांगपूर्ण ज्ञान	(श्रीअरविंद)	७
६. सच्चे पुरुषकी चेतना	(श्रीअरविंद)	८
७. भागवत मुहूर्त्त — (१४) क्रमविकास	(श्रीअरविंद)	९
८. पत्रावली (५)	(श्रीअरविंद)	१४
९. चिंतन-धारा और सूत्रावली — स्पष्टीकरण	(श्रीमां)	१६
१०. धम्मपदं (७)	(श्रीमां)	२०
११. पूर्णयोग और अन्यान्य पथ	(श्रीअरविंद)	२३
१२. त्रिविध रूपांतर	(श्रीअरविंद)	३१
१३. भारतीय राष्ट्र और उसका धर्म	(श्रीअरविंद)	३८
१४. दिव्य जीवन (भाग २)	(श्रीअरविंद)	११३—१२८

संपादक और प्रकाशक : चंद्रदीप, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी–२।

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी–२।

मूल्य : देश में वार्षिक ६) एक अंक रु. १.७५

विदेश में वार्षिक १२।। शि. एक अंक ३।। शि.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ

३
४
५
६
७
८
९
१४
१६
२०
२३
३१
३८
१२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

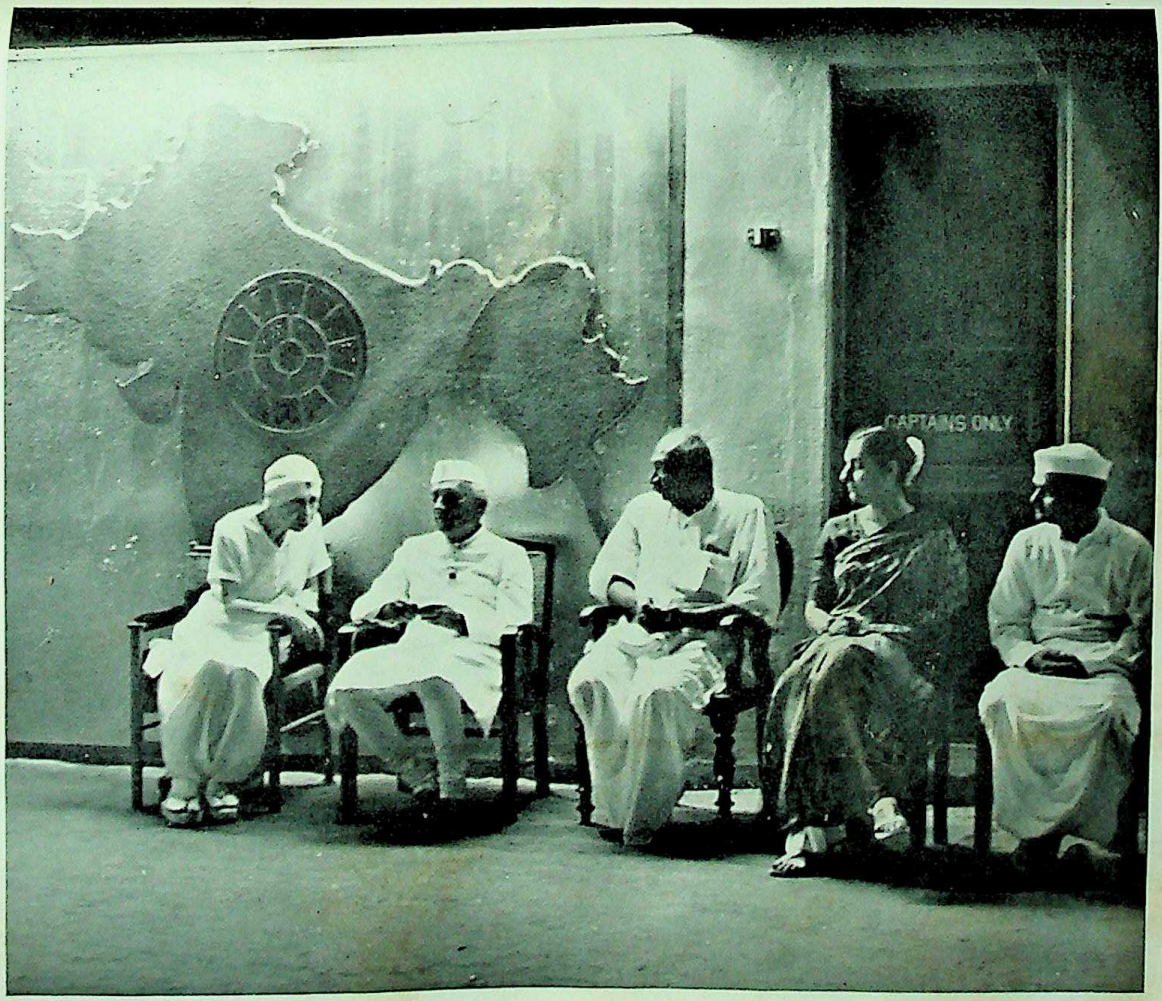

The Mother, Pandit Jawaharlal Nehru, Sri Kamaraj Nadar, Sm. Indira Gandhi and Sri Lal Bahadur Sastri at the Playground of Sri Aurobindo Ashram, on September 29, 1955

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमांका संदेश

Nehru leaves his body but his soul is one with the Soul of India that lives for Eternity.

27.5.1964

—The Mother

*
**

"नेहरूने अपना शरीर छोड़ दिया है पर उनका अंतरात्मा भारतके अंतरात्माके साथ युक्त हो गया है जो चिरकाल विद्यमान रहता है।"

***

---

२७ मई १९६४ को पं० जवाहरलाल नेहरूके स्वर्गवासका समाचार मिलनेपर यह संदेश श्रीमांने दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नोत्तर

(१)

"मनुष्य अपना शरीर छोड़नेके लिये क्यों बाध्य होते हैं?"

क्योंकि वे यह नहीं जानते कि जिस तेजीसे प्रकृति भगवान्‌की ओर अग्रसर होती है उसी तेजीसे कैसे आगे बढ़ा जाता है।

(२)

"क्या मृत व्यक्तिके शरीरका आदर करना चाहिये? यदि हां, तो कैसे?"

हमें प्रत्येक वस्तुका सम्मान करना चाहिये, चाहे वह सजीव हो या मृत, और यह जानना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु ही भागवत चेतनामें निवास करती है।
आदरका भाव अपने हृदयमें और आंतरिक मनोवृत्तिमें अनुभव करना चाहिये।

(३)

"क्या मृत व्यक्तिके शरीरमें भी भगवान् विद्यमान है?"

भगवान् सर्वत्र ही विद्यमान हैं; और मैं फिर दुहरा रही हूं कि भगवान्‌के लिये कोई चीज सजीव या निर्जीव नहीं है — सब कुछ शाश्वत रूपमें सजीव है।

(४)

"जीवको सुखी बनानेके लिये और अच्छी अवस्थाओंमें — जैसे, एक आध्यात्मिक परिपार्श्वके अंदर — उसके पुनः जन्म लेनेमें उसे सहायता देनेके लिये हमें क्या करना चाहिये?"

उसके लिये कोई दुःख-शोक मत करो, खूब अचंचल और शांत बने रहो, उस दिवंगत आत्माकी प्रेममयी स्मृतिको बनाये रखो।

(५)

"क्या अंतरात्मा भी रोता है?"

जब कोई चीज उसे भगवान्‌से दूर ले जाती है तब रोता है।

(६)

"किसीका रोना बंद करानेके लिये हमें क्या करना चाहिये?"

उसे सच्चे दिलसे और गभीर रूपमें प्यार करना चाहिये और उसके आंसुओंको बंद करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये।

—श्रीमां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्य उपस्थितिका अनुभव

जो लोग तेरे लिय और तुझमें ही जीवन धारण करते हैं वे लोग, हे प्रभु! भौतिक परिस्थितियों, जलवायु, अभ्यास, परिपार्श्व सबके बदल जानेपर भी सब जगह एक ही वातावरण पाते हैं; उसे ही वे अपने अंदर बनाये रखते हैं, अपने विचारोंको सदा तुझसे ही संयुक्त कर उसी वातावरणको लिये फिरते हैं। सभी जगह वे अपना ही घर अर्थात् तेरा ही घर अनुभव करते हैं। उन्हें नयी वस्तुओं और नये देशोंके अदृष्टपूर्व तथा वैचित्र्यपूर्ण रूपोंमें कुछ भी आश्चर्यजनक अनुभव नहीं होता। उन्हें प्रत्येक वस्तुमें तेरी ही उपस्थिति प्रत्यक्ष रूपमें अनुभूत होती है और तेरे जिस शाश्वत ऐश्वर्यको वे सदा अनुभव करते हैं वह उन्हें रेतके छोटे-से कणमें भी दिखायी देता है। समस्त पृथ्वी ही तेरी स्तुति करती है और अंधकार, दुःख तथा अज्ञानके होते हुए भी, इन सबके बीचमें भी, हम तेरे महामहिम प्रेमका अनुभव कर सकते हैं तथा उसके साथ सदा और सर्वत्र अपना आंतरिक संबंध जोड़ सकते हैं। .....

* * *

.....जो तुझे जानता है उसके लिये तू सब जगह और सब वस्तुओंमें विद्यमान है, और कोई एक चीज तुझे अभिव्यक्त करनेके लिये किसी दूसरीसे अधिक उपयोगी नहीं प्रतीत होती; क्योंकि जिन सब वस्तुओंका अस्तित्व है वे सब -- और बहुत-सी दूसरी भी जिनका अस्तित्व नहीं है -- तुझे व्यक्त करनेके लिये आवश्यक हैं, प्रत्येक वस्तु ही, तेरे दिव्य प्रेमके हस्तक्षेपके कारण, तेरे अभिमुख होकर जीवन बितानेका एक प्रयत्न है, और ज्योंही हमारी आंखें खुल जाती हैं त्योंही हम इस प्रयासको निरंतर देखने लगते हैं। .....

—श्रीमाताजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमाताजी

भगवानकी इच्छा कैसे जानी जाय?

तुम उसे जानते नहीं, बल्कि अपने भीतर अनुभव करते हो। और इसे अनुभव करने-के लिये तुम्हें इतनी अधिक तीव्रताके साथ, इतनी अधिक सच्चाईके साथ इच्छा करनी चाहिये कि सभी रुकावटें भूमिसात् हो जायं। जबतक तुम्हारे अंदर किसी प्रकारका पक्षपात, कामना, खिंचाव, आकर्षण हैं तबतक ये चीजें सत्यको तुमसे छिपा रखेंगी। अतएव सबसे पहला कर्तव्य हैं अपनी चेतनाकी सभी क्रियाओंको तबतक संयमित, परिचालित और परिवर्तित करना और जो बदली न जा सकें उन्हें दूर करना जबतक कि वे सत्यकी पूर्ण और स्थायी अभिव्यक्ति न बन जायं।

और इसके लिये इच्छा करना भी पर्याप्त नहीं है, क्योंकि बहुत बार हम इच्छा करना भूल जाते हैं।

इसके लिये हमारे भीतर एक अभीप्सा होनी चाहिये जो सतत जलनेवाली आगकी तरह हमारी सत्तामें जलती रहे और जब-जब तुम्हारे अंदर कोई कामना, पक्षपातका भाव, आकर्षण उत्पन्न हो तब-तब तुम उसे उस आगमें झोंक दो। यदि तुम लगातार ऐसा करो तो तुम देखोगे कि तुम्हारी साधारण चेतनामें सच्ची चेतनाकी एक छोटी-सी झिलमिलाहट पैदा होने लगी है। आरंभमें वह अस्पष्ट होगी, कामनाओं, पसंदगियों, आकर्षणों और लगावोंके समस्त हो-हल्लाके पीछे बहुत दूर होगी। परंतु हमें इस सच्ची चेतनाको पानेके लिये इन सबके पीछे जाना ही होगा, उस चेतनाको पानेके लिये जो इतनी शांत, इतनी अचल और प्रायः निश्चल-नीरव होती है।

जो लोग इस सच्ची चेतनाके संपर्कमें आ जाते हैं वे सभी संभावनाओंको एक साथ देखते हैं और यदि आवश्यक हो तो वे अत्यंत प्रतिकूल संभावनाको भी चुन सकते हैं। परंतु उस अवस्थातक पहुंचनेके लिये मनुष्यको बहुत दूरतक जाना होगा।

क्या हमें अपनी पसंदगियोंको नष्ट कर देना चाहिये या उन्हें भूल जाना चाहिये?

तुम्हारे अंदर पसंदगियां होनी ही नहीं चाहियें!

जब मन नीरव हो जाता है, जब वह निर्णय करना, अपने तथाकथित ज्ञानके साथ अपने-को आगे रखना बंद कर देता है तभी मनुष्य जीवनकी समस्याको हल करनेके योग्य होने लगता है, क्योंकि मन केवल काम करनेका एक यंत्र है, सच्चे ज्ञानका साधन नहीं है — सच्चा ज्ञान तो कहीं दूसरी जगहसे आता है।

यदि तुम मनसे सोच-समझकर निर्णय करना बंद कर दो तो तुम सत्यके एकदम ठीक ज्ञान-को अधिकाधिक प्राप्त करने लगोगे और संसारकी विपदाओंका नव-दशांश विलीन हो जायगा।

यदि मन यह स्वीकार कर ले कि वह कुछ नहीं जानता तो संसारकी महान् अव्यवस्था अधिकांशमें अपना अस्तित्व खो देगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषदोंका सर्वांगपूर्ण ज्ञान

उपनिषदोंमें, अत्यंत प्राचीन वेदांतके ईश्वर-प्रेरित ग्रंथोंमें, हमें निरपेक्ष ब्रह्मकी प्रस्थापना, चरम और अकथनीय परात्परकी अनुभवजन्य प्रतीति मिलती है। परंतु, इसके खंडनके रूपमें नहीं वरन् इसीके स्वाभाविक परिणामके रूपमें, हमें विश्व-देवकी प्रस्थापना, विराट् पुरुष और ब्रह्मके विश्वके रूपमें अभिव्यक्त होनेकी अनुभवजन्य प्रतीति भी मिलती है। इसी तरह, हमें व्यक्तिके अंदर भागवत सद्वस्तुकी प्रस्थापना भी मिलती है: यह भी एक अनुभवजन्य प्रतीति है; परंतु बाह्य आकारके रूपमें इसे मान्यता नहीं दी जाती, बल्कि यथार्थ संभूतिके रूपमें इसे ग्रहण किया जाता है। परात्पर निरपेक्ष ब्रह्मसे भिन्न अन्य सबको अस्वीकार करनेवाली किसी एकक चरम सर्ववर्जनकारी प्रस्थापनाके स्थानमें हमें वहां एक सर्वसमालिंगनकारी विशाल प्रस्थापना मिलती है जिसे उसके अंतिम परिणतितक ले जाया गया है। एक ही दृष्टिमें विश्व-पुरुष और निरपेक्ष ब्रह्मको समेट लेनेवाली सद्वस्तु और ज्ञानसंबंधी यह प्रतीति मूलतः हमारी प्रतीति और प्रस्थापनासे बिलकुल मिलती-जुलती है; क्योंकि यह प्रतीति यह सूचित करती है कि अज्ञान (अविद्या) भी ज्ञान (विद्या) का ही एक अर्द्ध-आवृत अंश है और विश्वज्ञान आत्म-ज्ञानका ही एक अंग है।

ईशोपनिषद् निरपेक्ष ब्रह्मकी समस्त अभिव्यक्तियोंके एकत्व और सत्यपर जोर देती है; वह किसी एक ही पक्षद्वारा सत्यको सीमित करना अस्वीकार करती है। उसके अनुसार ब्रह्म अचल (स्थिर) है और सचल है, वह बहिःस्थित और अंतःस्थित है, जो कुछ समीप है या दूर है, चाहे आध्यात्मिक रूपमें हो या काल और देशके विस्तारमें, वह सब वही है; वह सदात्मा और सर्वभूत है, वह शुद्ध और नीरव है जो कि आकार या कर्मसे रहित है, वह कवि और मनीषि है जो विश्व और उसकी वस्तुओंको व्यवस्थित करता है; वह 'एकतम' है और जो कुछ विश्वमें गोचर है वह सब वही है, वह सर्वांतर्यामी है तथा वह भी है जिसमें कि वह निवास करता है। यह उपनिषद् उसी ज्ञानको पूर्ण और मुक्तिदायी कहती है जो न तो आत्माका वर्जन करता है और न उसकी सृष्टिका। उसके अनुसार मुक्तात्मा इस सब (सृष्ट वस्तुओं) को एक आंतरिक सूक्ष्म-दर्शनके अंदर और एक चेतनाके द्वारा स्वयंभू आत्माके ही भूतभावोंके रूपमें देखता है। उसकी वह चेतना विश्वको अपने अंदर देखती है, सीमित और अहंपूर्ण मनकी तरह अपनेसे भिन्न किसी दूसरी चीजके रूपमें उसका बाहरसे निरीक्षण नहीं करती। इस उपनिषद्के अनुसार वैश्व अज्ञान (अविद्या) में निवास करना एक प्रकारकी अंधता है, पर ज्ञान (विद्या) की अनन्य निरपेक्षतामें अपने-आपको आबद्ध करना भी एक प्रकार-की अंधता है: ब्रह्मको एक संग विद्या और अविद्याके रूपमें जानना, संभूति और असंभूतिके द्वारा एक साथ सर्वोच्च स्थितिको प्राप्त करना, परात्पर और विश्वात्माकी अनुभूतिको एक साथ संबंधित करना, अतिलौकिक तथा लौकिकमें होनेवाली आत्मचेतन अभिव्यक्तिके अंदर आधार प्राप्त करना सर्वांगपूर्ण ज्ञान है; यही है अमरत्वको अधिकृत करना। यही अपने पूर्ण ज्ञानसहित वह संपूर्ण चेतना है जो दिव्य जीवनकी नींव डालती है और इसकी प्राप्तिको संभव बनाती है।

—श्रीअरविंद (दि. जी. भा. २. ख. २. पृ. ५२०–५२२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चे पुरुषकी चेतना

तुम्हारी साधनाके विषयमें एक बात। मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारे भावी विकासकी चाभी उस अनुभवमें है जिसे, तुम कहते हो कि, तुमने कृष्णनगरमें कुछ दिनोंतक बार-बार प्राप्त किया था (९ फरवरीका तुम्हारा पत्र)। " एक ऐसी अवस्थाकी जो ज्ञान, स्थिर निस्तब्धता, शक्ति और विशाल चेतनासे भरपूर थी – सभी प्रश्न अपने-आप सुलझ गये थे – शक्तिकी एक अवतरणधारा आज्ञाचक्रके भीतरसे होकर शरीरमें प्रवाहित हो रही थी – अत्यंत शक्तिशाली, अविचल समतासे संपन्न थी, अटूट विश्वास, तीक्ष्ण दृष्टि और ज्ञान विद्यमान था।" यह तुम्हारे अंदर स्थित सच्चे पुरुषकी चेतना थी जो पुरुष कि अपने अतिमानसिक स्वरूपसे अभिज्ञ था और यही वह चेतना है जिसे तुम्हारी सामान्य चेतना बन जानी चाहिये तथा अतिमानसिक विकासका आधार हो जानी चाहिये। उसके वैसा बन जानेके लिये मनको शांत-स्थिर और शक्तिशाली बनाना होगा, भावात्मक और प्राणिक सत्ताको शुद्ध बनाना होगा तथा शारीर चेतनाको इस प्रकार खोल रखना होगा कि शरीर उस चेतना और शरीरको धारण कर सके तथा बराबर बनाये रख सके। मैं देख रहा हूं कि जिस समय वह तुम्हें प्राप्त हुई थी उस समय शरीरने भी उसे अभिव्यक्त किया था। यह इस बातका चिह्न है कि तुम्हारी भौतिक सत्तामें वह क्षमता विद्यमान है। शांति और शक्ति ऊपरसे उतरेंगी; तुम्हें बस अपने-आपको खोल रखना होगा और उन्हें ग्रहण करना होगा तथा साथ ही निम्नतर प्रकृतिकी उन सभी क्रियाओंका त्याग करना होगा जो उन्हें बने रहनेसे रोकती हैं और जो उन कामनाओं तथा अभ्यासोंद्वारा शासित होती हैं जिनका सच्ची सत्ता, सच्ची शक्ति तथा सच्चे ज्ञानके साथ मेल नहीं खाता। निस्संदेह, उच्चतर शक्ति स्वयं तुम्हारे सामने प्रकट होगी और तुम्हारी प्रकृतिकी सारी बाधाओंको दूर कर देगी। परंतु शर्त्त यह है कि न केवल तुम्हारी मानसिक सत्ताको बल्कि तुम्हारी प्राणिक और भौतिक सत्ताको भी उसकी ओर खुलना होगा और उसके प्रति समर्पित होना होगा एवं अन्य सत्ताओं और शक्तियोंको समर्पण करना अस्वीकार कर देना होगा। जैसा कि स्वयं तुमने भी उस समय अनुभव किया, यह महत्तर चेतना स्वयं ही उच्चतर इच्छा-शक्ति और ज्ञानका विकास साधित करेगी। निस्संदेह, समुचित प्रकारकी चैत्य अनुभूतियां बहुत सहायक होती हैं पर तुम्हारा जहांतक प्रश्न है, ऐसा हो सकता है कि यह चेतना जब और जितने अंशमें अपने शांत-स्थिर ज्ञान, संकल्प और समताके द्वारा सत्ताके विभिन्न भागोंपर अपना अधिकार जमा लेगी तब उसके बाद या उतने ही अंशमें चैत्य पुरुषका कोई महान् विकास साधित होगा।

('मदर इंडिया' जुलाई १९६२) ६ अप्रैल, १९२३

*
**

जब मनुष्य यथार्थ चेतनामें होता है तब यथार्थ क्रिया होती है, यथार्थ प्रसन्नता रहती है, प्रत्येक चीज सत्यके साथ सुसमंजस होती है।

जब यथार्थ चेतना नहीं होती तभी हमारे अंदर मांग, असंतोष, संदेह तथा सब प्रकारकी असंगति विद्यमान होती है। –श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमविकास

आत्माके दृश्य और अदृश्य उपकरणोंका एक क्रमिक विकास ही पार्थिव प्रकृतिका संपूर्ण विधान है; वही पार्थिव प्रकृतिकी सत्ता और प्रक्रियाके अन्य सब मूल्योंका अंर्तनिहित मलभूत सार तत्त्व भी है और उन्हें उनका सच्चा अर्थ प्रदान करता है ।

आत्माने अपने-आपको अचेतन जड़ तत्त्वमें छिपा रखा है । वह अपने लिये सर्वप्रथम, और इस प्रकार मानो उसकी एकमात्र धुन यही हो, भौतिक शक्तियोंकी क्रियाके द्वारा जड़तत्त्वके आकारोंको विकसित करता है। जब यह पर्याप्त मात्रामें किया जा चुकता है, केवल तभी वह प्राणमय जीवनकी बात सोचता है ।

और फिर भी जड़ तत्त्वमें और उसकी शक्तियोंमें अवचेतन प्राण तथा उसकी कारावद्ध शक्तियां बराबर ही मौजूद थीं और जड़ तत्त्वके उन रूपोंमें भी वे विद्यमान हैं जो ऊपरसे अत्यंत निर्जीव प्रतीत होते हैं .....।

तत्पश्चात् आया उन्मुक्त मनःशक्तियोंकी क्रियाके द्वारा अनेक रूपोंमें मनका विकास। जड़ पदार्थमें निहित उन प्राणशक्तियोंके अंदर और स्वयं जड़पदार्थमें भी मन प्रसुप्त था। कहानीका तीसरा अध्याय था उन्मुक्त मनःशक्तियोंकी क्रियाके द्वारा सजीव आकारमें मनका विकास। तीसरा अध्याय पूरा नहीं हुआ है और न यह कथाका अंत ही होगा ।

* * *

पार्थिव प्रकृतिका क्रमविकास समाप्त नहीं हुआ है क्योंकि उसने अभिव्यक्त प्रकृतिमें निहित चेतनाके क्रमशः अधिकाधिक उच्च सात स्तरोंमेंसे केवल तीनको ही प्रकट किया है। उसने अपनी आपातदृश्य निश्चेतनामेंसे केवल मन और प्राण और जड़तत्त्वकी तीन शक्तियोंको ही अभिव्यक्त किया है।

जड़तत्त्वमें स्थित प्राणमेंसे मन प्रकट होता है; वह सीधे भौतिक आकारमें प्रकट होनेमें असमर्थ है। वह उसमें विद्यमान अवश्य है, किन्तु वहां निश्चेतना और जड़ताकी एक भौतिक शक्तिके निद्राचारके अंदर यान्त्रिक ढंगसे कार्य करता है। जड़ तत्त्वकी निश्चेतनासे हमारा मत-लब यही होता है, इससे अधिक कुछ भी नहीं; क्योंकि यद्यपि चेतना वहां विद्यमान होती है फिर भी वह होती है निर्वर्तित, निर्जीव, अपनी क्रियामें यांत्रिक; वह अपनी आंतरिक उपस्थितिके द्वारा शक्तिकी क्रियाओंको सहारा देती है, किन्तु अपनी सक्रिय बुद्धिकी ज्योतिके द्वारा नहीं। यही कारण है कि जड़ प्रकृति सर्वोच्च और आश्चर्यजनक बुद्धिमत्ताके कार्य करती है किन्तु फिर भी किसी अंतःस्थित द्रष्टा या विचारकका कोई हस्तक्षेप दृष्टिगोचर नहीं होता।

आकाश (Ether) और भौतिक देश (Material space) एक ही वस्तुके भिन्न-भिन्न नाम हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश अपने विश्वगत रूपमें नहीं तो कम-से-कम अपने मूल स्वरूपमें चेतनाके सत्तत्त्वका एक ऐसा विस्तार है जिसमें शक्ति गतिशील हो सके – सत्ताके साथ सत्ताके या शक्तिके साथ शक्तिके संबंधोंके लिये और ऐसे प्रतीकात्मक आकारोंके निर्माणके लिये जो इस आदान-प्रदानके आधार बन सकें। आकाश (Ether) वह देश (Space) है जो भौतिक शक्तिके कार्योंको और उसके द्वारा सृष्ट प्रतीकात्मक आकारोंको धारण करता है; विरोधाभासके रूपमें पर बिलकुल सच्चे अर्थमें यह कहा जा सकता है कि आकाश अभौतिक वस्तु है या सारभूत भौतिक तत्त्व है।

(१)

क्रमविकास पार्थिव प्रकृतिका एक शाश्वत सक्रिय विधान और गुप्त प्रक्रिया है।

जड़तत्त्वरूपमाध्यममें आत्माके यंत्रोंका क्रमिक विकास ही पार्थिव सत्ताके मूल्योंका सारामूलभूत तात्पर्य है। उस (पार्थिव सत्ता) के अन्य सभी नियम-विधान उसकी क्रिया और प्रक्रियाके तत्त्व हैं; यह आध्यात्मिक क्रमविकास ही उसका स्वयंका व्यापक गुह्य अर्थ है।

पृथ्वीका इतिहास यह है कि सबसे पहले जड़ शक्तियोंकी क्रियाके फलस्वरूप सुसंगठित आकारोंका विकास हुआ।

इस प्रारंभिक अवस्थाके बाद आया आकारके भीतर प्राणका विकास और उन्मुख प्राणशक्तियोंकी क्रियाके फलस्वरूप उच्चसे उच्चतर सजीव आकारोंकी एक क्रमपरंपराका सुसंगठन। उसके बादका चरण है सजीव शरीरोंमें मनका विकास और विकसनशील मनःशक्तियोंकी प्रक्रियाके द्वारा अधिकाधिक सचेतन जीवोंकी सुसंगठित क्रमव्यवस्था। पर यही अंत नहीं है; क्योंकि मनके परे चेतनाकी उच्चतर शक्तियां हैं जो अपने समयकी प्रतीक्षा कर रही हैं और इस महान् लीलामें वे अवश्य ही अपना कार्य करेंगी, सृजनात्मक लीलामें अपना हिस्सा बँटायेंगी।

इस समस्त क्रमविकासका माध्यम, जड़तत्त्व, ऊपरसे देखनेमें निश्चेतन और निष्प्राण है; पर यह हमें ऐसा प्रतीत होता है महज इस कारणसे कि हम अपनी पहुंचके भीतरके एक विशिष्ट सीमित क्षेत्रके, एक सुनिश्चित पैमाने या स्वरग्रामके बाहर चेतनाका बोध पानेमें असमर्थ होते हैं। हमारे नीचे हैं निम्न क्षेत्र जिनका बोध हमें नहीं होता और इन्हें हम कहते हैं अवचेतन या निश्चेतन। हमारे ऊपर हैं उच्चतर क्षेत्र, जो हमारी निम्नतर प्रकृतिके लिये अग्राह्य अतिचेतन हैं।

जड़तत्त्वकी कठिनाई कोई संपूर्ण निश्चेतनता नहीं है, बल्कि तमसाच्छन्न चेतना है जो अपनी ही क्रियाओंसे सीमित है — अस्पष्ट रूपमें, मूलरूपमें, अंधरूपमें आत्मसचेतन है, अपने निजी आकार और शक्तियोंसे बाहर वास्तवमें किसी भी चीजके प्रति संवेदनशील नहीं है। इसकी खराबसे खराब अवस्थामें भी हम इसे जितना अधिक ज्ञानाभाव कह सकते हैं उतना निश्चेतनता नहीं। इस निर्ज्ञान तत्त्वके भीतर एक महत्तर और फिर उससे भी महत्तर चेतनाका जागरण ही जड़-तत्त्वके इस विश्वका अद्भुत चमत्कार है।

जड़तत्त्वकी यह निर्ज्ञान अवस्था एक प्रच्छन्न, निर्वर्तित या निद्राचारी चेतना है जिसके भीतर आत्माकी सभी शक्तियां बीज-रूपमें विद्यमान हैं। जड़तत्त्वके प्रत्येक कण, अणु-परमाणु, सूक्ष्म कोषके भीतर शाश्वत प्रभुकी समस्त सर्वज्ञता और अनंत भगवान्‌की समस्त सर्वशक्ति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्ता गुप्त रूपसे निवास करती है और अज्ञात रूपसे कार्य करती है।

आकारों और शक्तियोंका क्रमविकास ही है पार्थिव जीवनका तात्पर्य — वह क्रमविकास जिसके द्वारा जड़तत्त्व तबतक धीरे-धीरे अधिकाधिक सचेतन होता रहेगा जबतक कि वह आकार और प्राण और मनके परे जाकर, ऊर्ध्व ज्ञानके द्वारा, शाश्वत और अनंत आत्माको, उसीके अपने उच्चतम लोकोंमें, नहीं जान लेता। जड़तत्त्वके अंदर भगवान्‌का धीरे-धीरे जन्म लेना और अपनेको प्रकट करना ही है पार्थिव लीलाका अभिप्राय।

जड़तत्त्व एक साथ ही शक्ति भी है और पदार्थ भी। जड़तत्त्व मूल सत्ता है, ब्रह्म है, जो अणु-परमाणुके विभाजनके अंदर ठोस बनाया गया है। जड़तत्त्व मूल पदार्थ-शक्ति, ब्रह्म-शक्ति है जिसे आत्म-विस्मृतिपूर्ण निर्ज्ञान-तत्त्वके अंदर होनेवाली आत्माकी शक्तियोंकी अंधकार-पूर्ण निर्वर्तित स्थितिमें क्रियाशील बनाया गया है। जड़ शक्ति जड़ पदार्थको, भौतिक शक्ति भौतिक ब्रह्मको ऐसे आकारमें ढालती है जो उसकी अपनी ही अत्यंत विशिष्ट शक्तियोंको अभि-व्यक्त करनेवाला होता है। जब यह पूरा हो जाता है तब भौतिक जगत् इसलिये तैयार हो जाता है कि जड़ पदार्थकी शक्ति-चालित तामसिकताके अंदर सचेतन प्राणका शानदार आगमन हो जाय।

जड़तत्त्व एकमात्र शक्ति नहीं है, एकमात्र पदार्थ भी नहीं है। क्योंकि प्राण और मन तथा मनके परे जो कुछ है वह सब शक्तियां भी हैं और पदार्थ भी, पर हैं दूसरे प्रकार और दूसरी श्रेणीके। आत्मा ही मूल शक्ति-एवं-पदार्थ है; ये दूसरे सबके सब आत्माकी शक्तिके ही विभिन्न प्रकार और शाखाएं हैं, आत्माके पदार्थकी विभिन्न मात्राएं और परिवर्तित रूप हैं। जड़तत्त्व भी आत्माकी एक शक्ति और मात्राके सिवा और कुछ नहीं है। जड़तत्त्व भी शाश्वत ब्रह्मका सत्तत्त्व — पदार्थ है।

जिस जड़तत्त्वको हम देखते और अनुभव करते हैं वह केवल अत्यंत बाह्य कोष और आव-रण है; उसके पीछे भौतिक पदार्थकी अन्य सूक्ष्मतर श्रेणियां हैं जिनमें आणविक निश्चेतना कम घनीभूत है और जिनमें प्राण, मन और अन्य शक्तियोंके लिये प्रवेश करना और कार्य करना अधिक आसान है। अगर इस स्थूल दृश्यमान भौतिक जगत्‌को सहारा देनेवाले सूक्ष्मतर अदृश्य भौतिक स्तर या आधार न होते तो यह जगत् ही नहीं रह पाता; क्योंकि उस अवस्थामें आत्मा और जड़तत्त्वके बीच होनेवाले आदान-प्रदानकी बारीक क्रियाएं बिलकुल ही न हो पातीं और वास्तवमें इन क्रियाओंके कारण ही स्थूलतर दृश्यमान क्रियाओंका होना संभव होता है। उनके बिना क्रमविकास असंभव हो जाता; प्राण, मन और मानसोत्तर तत्त्व भौतिक जगत्‌में प्रकट होनेमें असमर्थ होते।

सच पूछा जाय तो एकमात्र यही सत्ताका भौतिक लोक नहीं है जिसे कि हम देखते हैं, बल्कि एक भौतिक प्राणलोक भी है जो प्रकृतिकी प्राणगत-भौतिक क्रियाका अपना क्षेत्र है। फिर एक भौतिक मानस-लोक है जो प्रकृतिकी मनोमयी भौतिक क्रियाका अपना क्षेत्र है। फिर एक भौतिक अतिमानस-लोक भी है जो प्रकृतिकी अतिमानसिक भौतिक क्रियाका अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक है। इनके अतिरिक्त भौतिक आत्मशक्ति या अनत भौतिक सत्-चिच्छक्ति-आनंदका भी एक लोक है जो प्रकृतिकी आध्यात्मिक-भौतिक क्रियाओंका निजी क्षेत्र है। जब हम प्रकृतिके तथा अपनी भौतिक सत्ताके इन सब स्तरोंको ढूंढ़ निकालेंगे और उन्हें एक-दूसरेसे अलग कर सकेंगे और समस्त जागतिक लीलामें उनका जो कुछ योगदान है उसके समन्वित रूपका विश्लेषण कर पायेंगे, केवल तभी हम इस बातका पता पा सकेंगे कि इस निश्चेतन जड़तत्त्वके अंदर प्राणमयी, मनोमयी और आध्यात्मिक चेतनाका क्रमविकास किस तरह संभव हो सका।

पर इससे अधिक कुछ और भी है; भौतिक सत्ताकी इन अनेक भूमिकाओंके परे दूसरी अतिभौतिक अवस्थाएं हैं, प्राणके बहुतसे स्तर, मनके अनेक स्तर, अतिमानसके, आनंदके, चिच्छक्तिके और असीम सत्ताके लोक हैं जिनपर कि यह भौतिक सत्ता अपनी उत्पत्ति और स्थितिके लिये निर्भर करती है। ये सब उच्चतर लोक अदृश्य शक्तियोंको निरंतर प्रकट करते रहते हैं और उन शक्तियोंने ही इस भौतिक सत्ताके क्रमविकासको उस अंधकारसे बाहर निकालकर, जहांपर कि यह विकास आरंभ हुआ था, चेतनाकी उस ज्योतिकी जगमगाहटमें ऊपर उठा दिया है जिसके सामने उच्चतम मानव-मन, बस उसी तरह एक क्षीण प्रकाश मालूम होगा जिस तरह एक जुगनूका प्रकाश पूर्ण जाज्वल्यमान सूर्यके सामने मालूम होता है।

अंधतम जड़तत्त्व और अत्यंत ज्योतिर्मय आत्माके बीच चेतनाके स्तरोंकी यही विशाल क्रमपरंपरा है। जड़तत्त्वके अंदर विद्यमान चेतनाको इस क्रमपरंपराके एकदम अंतिम सिरेपर चढ़ जाना होगा और वह उच्चतम शिखर हमें जो कुछ देना चाहता है उस सबको लेकर उसे वापस आना होगा और तभी यह क्रमविकास अपने उद्देश्यको पूर्णरूपेण चरितार्थ कर सकेगा।

जड़तत्त्व, प्राण, मन, अतिमानस या विज्ञान और इन सबके परे परात्पर सत्-चित्-शक्ति-आनंदकी चतुर्विध शक्ति — ये ही हैं निश्चेतनासे अतिचेतनामें होनेवाले क्रमविकासके आरोहणकी सीढ़ियां।

प्राण पृथ्वीके अंदर एकदम कहीं बाहरसे नहीं आता; इसका मूल तत्त्व बराबर ही भौतिक वस्तुओंके अंदर विद्यमान रहता है। पर, जड़तत्त्वकी आपातदृश्य निष्प्राण तामसिकताके अंदर आबद्ध रहनेके कारण यह उनकी क्रियाओंके द्वारा सीमित होता है और अपनी निजी स्वतंत्र या प्रभावशाली सत्ताको अभिव्यक्त करनेमें असमर्थ होता है।

प्राण मिट्टीमें, पत्थर, धातु, हवा, अणु-परमाणु, विद्युत्-कणमें तथा अन्य अधिक सूक्ष्म, अभीतक अज्ञात, शक्तियों और कणोंमें विद्यमान है, जो भौतिक शक्ति और आकारका निर्माण करते हैं। यह प्रत्येक वस्तुमें है, पर आरंभमें मुश्किलसे ही उसकी उपस्थितिका पता चलता है, उसका संगठन बस इसीलिये हुआ होता है कि वह गुप्त रूपसे भौतिक शक्तियों, प्रक्रियाओं, रचनाओं और रूपांतरोंको सहारा देता रहे; वह जड़ पदार्थके रूपको तैयार करने और प्रकट करनेके लिये, प्राणकी अभिव्यक्तिके लिये नहीं, एक अंतर्निहित शक्तिके रूपमें वहां विद्यमान रहता है। उसका अपने-आपपर अधिकार नहीं होता, वह आकारके अंदर आत्म-चेतना नहीं होता, आत्माभिव्यक्तिके लिये प्रेरित नहीं होता; एक स्वतंत्र कार्यकर्त्ता नहीं अपितु एक निः-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहाय हथियार और यंत्र होनेसे यह जड़तत्त्वका सेवक और आकारका दास होता है, वरका मालिक नहीं होता।

परंतु इस भौतिक जगत्के ऊपर प्राण-प्रधान एक लोक है जो इस भौतिक जगत्के ऊपर दबाव डालता है और अपनी निजी मूर्तियों, शक्ति-सामर्थ्यों, प्रेरणाओंमेंसे जिन सबको ढालना संभव होता है उन सबको इस स्थूल जगत्में ढाल देता है और इस तरह सर्जक देवताओंको मूर्तिमान् करता है। जब भौतिक जगत्में आकार तैयार हो जाता है तब इस उच्चतर लोकके देवता और उपदेवता जड़तत्त्वको अपना सृजनात्मक स्पर्श प्रदान करनेके लिये आकर्षित होते हैं। तब आता है प्राणके शीघ्र और एकाएक खिल उठनेका समय; पेड़-पौधे, कीटाणु, कीड़े-मकोड़े, पशु प्रकट हो जाते हैं। जो चीज एक समय जड़ और निष्प्राण पदार्थ प्रतीत होती थी उसीके अंदर प्रकट हो जाते हैं प्राणात्मा और प्राणशक्ति और उस (प्राणशक्ति) की अनेक तथा बराबर ही अधिकाधिक जटिल क्रियाएं। प्राणप्रधान जीव, प्राणप्रधान मानसिक सत्ताएं, पशु-सत्ताएं उत्पन्न होती और विकसित होती हैं; एक नया जगत् दिखायी देता है जो जड़-तत्त्वके इस जगत्में उत्पन्न होता और इसीके अंदर निवास करता है और फिर भी अपने वास्तविक सक्रिय स्वभावमें इसका अतिक्रमण कर जाता है। (क्रमशः)

—श्रीअरविंद

जो धर्म विज्ञान और ईश्वर-विश्वासको, ईश्वरवाद, ईसाई-धर्म, मुसलमानधर्म और बौद्ध धर्मको अपने अंदर ग्रहण करता है और फिर भी इनमेंसे वह कोई एक धर्म नहीं है, उसी धर्मकी ओर आज विश्वात्मा अग्रसर हो रहा है। हमारे अपने धर्ममें, जो सब धर्मोंसे अत्यंत अधिक संदेहवादी और अत्यंत अधिक विश्वासी धर्म है—अत्यंत संदेहवादी इस कारण कि इसने बहुत अधिक प्रश्न उठाये हैं और परीक्षण किये हैं, अत्यंत विश्वासी इसलिये कि इसने अत्यंत गहरा अनुभव तथा बहुत भिन्न-भिन्न प्रकारके और सुनिश्चित आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किये हैं—जो वह विशाल हिन्दूधर्म है जो न तो कोई विशेष मत है या न मतोंका कोई समूह वरन् जीवनका एक विधान है, जो कोई सामाजिक ढांचा नहीं है वरन् एक अतीत और भावी सामाजिक विकासका आत्मा है, किसी चीजका त्याग नहीं करता बल्कि प्रत्येक चीजकी परीक्षा करने और अनुभव लेनेपर जोर देता है और परीक्षण तथा अनुभव कर चुकनेके बाद उसे अंतरात्माके उपयोगमें ले आनेपर बल देता है, इसी हिंदूधर्ममें हमें भावी विश्वधर्मका आधार दिखायी देता है।

—श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविंद

पत्रावली

(५)

बंगला :

शांतभावे बसे माके स्मरण करे मायेर काछे निजेके खुले राखो — ध्यानेर नियम एइ।

*

उभय रकम करा श्रेष्ठ। यदि दूरे थेके शुधु साधना करा संभव हतो, ता हले ताइ श्रेष्ठ हतो, किन्तु ता सब समय करा जाय ना। किन्तु आसल कथा एइ जे psychic एर मध्ये तोमार दृढ़ स्थान वा निरापद दुर्ग करे साधना करते हय — अर्थात् स्थिर धीर-भावे मायेर उपर निर्भर करा। अधीर ना हये प्रसन्न चित्ते बला, "तुमि जा बलछो, ता सत्य — एइ छोटो-छोटो असम्पूर्णता इत्यादिइ एखन आसल अन्तराय बड़ो बाधार चेये।" किन्तु एगुलो आस्ते-आस्ते बार करते हय, असम्पूर्णताके पूर्णतया रूपान्तरित करते हय, हठात् करा जाय ना। अतएव सेगुलो देखे दुःखित वा अधीर हते नाइ, मायेर शक्तिइ आस्ते आस्ते से काज करे फेलबे।

*

सत्येर सोजा पथ खोला अन्तरे। जा समर्पण करा हय सेइ अवस्थाय सहज सरल-भावे उपरे मायेर काछे गिये सत्येर संगे मिलित हय, सत्यमय हये जाय।

*

हिंदी :

शांत रूपमें बैठकर, मांको स्मरण कर, मांके निकट अपनेको खोल रखो — ध्यानका यही नियम है।

*

दोनों प्रकारसे करना उत्तम है। यदि केवल दूर रहकर साधना करना संभव होता तो फिर वही श्रेष्ठ होता, किंतु वैसा सब समय करना संभव नहीं होता। परंतु असली बात यह है कि चैत्य (psychic) के अंदर अपना सुदृढ़ स्थान या निरापद दुर्ग बना-कर साधना करना होता है — अर्थात् धीर-स्थिर रूपमें मांके ऊपर निर्भर करना होता है। अधीर न हो प्रसन्न चित्तसे कहना होता है, "तुम जो कहती हो वह ठीक है — अभी ये छोटी-छोटी अपूर्णताएं ही असली बाधा हैं, बड़ी कोई बाधा नहीं।" किंतु इन सबको धीरे-धीरे निकाल बाहर करना होता है, अपूर्णताको पूर्णतामें परिणत करना होता है, हठात् नहीं किया जाता। अतएव उन सब-को देखकर दुःखित या अधीर नहीं होना चाहिये, मांकी शक्ति ही धीरे-धीरे वह कार्य कर डालेगी।

*

सत्यका सीधा पथ खुला हुआ है भीतर-में। जो समर्पित किया जाता है वह उसी अवस्थामें सहज-सरल-रूपमें ऊपर मांके पास जाकर सत्यके साथ मिल जाता है, सत्यमय हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीत वा विचलित हयो ना, योगपथेर नियम एइ, अंधकारेर अवस्था अतिक्रम करे जेते हय, अंधकारेओ शान्त हये थाको।

*

तपस्या शुधु एइ, स्थिर थाका, माके डाका, खूब शान्त दृढ़भावे अशान्तिके, निराशाके, कामना-वासनाके प्रत्याख्यान करा।

*

शान्ति सत्य इत्यादि आगे भितरे स्थापित हय, तारपरे बाहिरे कार्ये परिणत हय।

*

शून्य अवस्थाके भय करते नेइ। शून्य अवस्थार मध्येइ भगवत् शान्ति नेमे आसे। मा तोमार मध्ये सर्वदाइ आछेन — तबे शांति शक्ति आलो निजेर मध्ये स्थापित ना हले ता सब समय बोझा जाय ना।

*

एटा कि मस्त बड़ो अहंकार नय जे तोमारइ जन्ये एतो काण्ड हयेछे? आमि खूब भालो, खूब शक्तिमान, आमार द्वाराइ सब हच्छे, आमा छाड़ा मायेर काज चलते पारे ना, ए त एक रकम अहंकार। आमि खारापेर चेये खाराप, आमारइ बाधार जन्य सब बन्ध हयेछे, भगवान तांर काज चालाते पारेन ना, एइ आर एक उल्टो अहंकार!

*

सब समये स्थिर हये थाको — मायेर शक्तिके शान्तभावे डेके, सब उद्वेग छेड़े दिये।

भयभीत या विचलित मत होओ, योग-पथका नियम यही है, अंधकारकी अवस्था अतिक्रम करके जाना होता है, अंधकारमें भी शांत बने रहो।

*

तपस्या बस यही है, स्थिर बने रहना, मांको पुकारना, खूब शांति और दृढ़ताके साथ अशांति, निराशा, कामना-वासनाका त्याग कर देना।

*

शांति, सत्य इत्यादि पहले भीतर स्थापित होता है, उसके बाद बाहर कार्य-रूपमें परिणत होता है।

*

शून्य अवस्थासे डरना नहीं चाहिये। शून्य अवस्थाके अंदर ही भागवत शांति उतर आती है। मां तुम्हारे भीतर सर्वदा ही विद्यमान हैं — परंतु शांति, शक्ति, प्रकाश इत्यादिके अपने अंदर स्थापित न होनेके कारण सब समय उसका बोध नहीं होता।

*

यह क्या बहुत बड़ा अहंकार नहीं है कि तुम्हारे लिये ही इतना बड़ा कांड हो गया है? मैं खूब अच्छी हूं, खूब शक्तिशाली हूं, मेरे द्वारा सब हो रहा है, मेरे बिना मांका काम नहीं चल सकता, यह तो एक प्रकारका अहंकार है। मैं खराबसे भी अधिक खराब हूं, मेरी बाधाके कारण ही सब बंद हो गया है, भगवान् अपना कार्य नहीं चला सकते, यह एक दूसरा उल्टा अहंकार है।

*

सब समय स्थिर बने रहो — मांकी शक्ति-को शांतभावसे पुकारते हुए, सब उद्वेगका त्याग करते हुए।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिंतनधारा और सूत्रावली

कुछ वचनोंका स्पष्टीकरण

(८८)

इस जगत्‌को मृत्युने रचा था जिसमें कि वह जी सके। क्या तू मृत्युको मिटा देगा? तब तो जीवन भी समाप्त हो जायगा। तू मृत्युको मिटा नहीं सकता, पर तू उसे महत्तर जीवनमें रूपांतरित कर सकता है।

(८९)

इस जगत्‌को क्रूरताने बनाया था जिसमें कि वह प्रेम कर सके। क्या तू क्रूरताको विनष्ट कर देगा? तब तो प्रेम भी नष्ट हो जायगा। तू क्रूरताको नष्ट नहीं कर सकता, पर उसे तू उसके विरोधी तत्त्वमें, ज्वलंत प्रेम और उल्लासमें परिवर्त्तित कर सकता है।

(९०)

इस जगत्‌को अज्ञान और भूल-भ्रांतिने गढ़ा था जिसमें कि वे जान सकें। क्या तू अज्ञान और भूल-भ्रांतिको दूर कर देगा? तब तो ज्ञान भी विलीन हो जायगा। तू अज्ञान और भूल-भ्रांतिको दूर नहीं कर सकता, पर तू उन्हें विशुद्ध और प्रोज्ज्वल विवेकमें परिणत कर सकता है।

(९१)

यदि केवल जीवन ही होता और मृत्यु न होती तो फिर अमरत्व नामकी कोई चीज ही न होती; यदि केवल प्रेम ही होता और क्रूरता न होती तो फिर आनंद केवल एक प्रकारका मंदा और क्षणस्थायी उल्लास ही रह जाता; यदि केवल विवेक ही होता और अज्ञान न होता तो फिर हमारी अधिक-से-अधिक पहुंच एक सीमित यौक्तिकता और इहलौकिक ज्ञानतक ही होती, उससे परे हम जा ही नहीं पाते।

(९२)

मृत्यु रूपांतरित होकर बन जाती है जीवन और वही है अमरत्व; क्रूरता परिवर्त्तित होकर बन जाती है प्रेम और वही है असहनीय आनंदातिरेक; अज्ञान बदलकर बन जाता है प्रकाश और वह ज्ञान और प्रज्ञाके भी परे चला जाता है।

यह ठीक वही भावना है, अर्थात्, विरोध और विपरीतता प्रगतिके लिये एक प्रकारका उत्तेजक तत्त्व हैं। क्योंकि, यह कहना कि क्रूरताके बिना प्रेम मंदा होगा..... अभिव्यक्त और अनभिव्यक्तके परे जैसा कि दिव्य प्रेमका तत्त्व है उसका मंदापन या क्रूरताके साथ कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंध नहीं है; केवल श्रीअरविंदका विचार ऐसा प्रतीत होता है कि विरोधी चीजें जड़तत्त्वको गढ़नेके लिये अत्यंत तीव्र और अत्यंत उपयोगी साधन हैं; उनके कारण उसकी अभिव्यक्तिकी गति अधिक तेज हो सकती है।

एक अनुभवके रूपमें यह बात बिलकुल ठीक है, इस अर्थमें ठीक है कि सबसे पहले, जब मनुष्य शाश्वत प्रेम, परात्पर प्रेमके संस्पर्शमें आता है तो तुरत उसे — किन शब्दोंमें इसे कहा जाय — एक बोध, एक अनुभव होता है — यह महज एक प्रकारकी समझ नहीं है बल्कि यह एक बहुत ठोस चीज है — कि भौतिक चेतना चाहे जितनी भी आलोकित क्यों न हो, चाहे जितने ढंगसे क्यों न ढली हो, चाहे जितने अच्छे रूपमें क्यों न तैयार की गयी हो, उस प्रेमको अभिव्यक्त करनेमें असमर्थ है — पहली धारणा इस प्रकारकी अक्षमताकी होती है। फिर आता है एक अनुभव, ठीक ऐसी चीज आती है जो उसका एक रूप प्रकट करती है जिसे हम ठीक क्रूरता नहीं कह सकते, क्योंकि क्रूरताको हम जैसा जानते हैं वैसा वह नहीं है, बल्कि यों कहें कि सारी परिस्थितियोंके बीच एक स्पंदन होता है जिसमें प्रेम जैसा यहां अभिव्यक्त है उसे अस्वीकार करनेका एक प्रकारका तीव्र भाव होता है। हां, वह यही है, भौतिक जगत्-की कोई चीज जो प्रेमकी, जैसा कि अभी वह विद्यमान है, अभिव्यक्तिको अस्वीकार करती है। मैं यहां साधारण जगत्की बात नहीं कहती, मैं अभी अधिकसे अधिक मात्रामें विद्यमान चेतनाकी बात कहती हूं। यह एक अनुभव है, मैं एक ऐसी चीजकी बात कहती हूं जो घटित हुई है। अतएव, चेतनाका वह अंश जो इस विरोधसे स्पृष्ट हुआ है प्रेमके मूलकी ओर एक सीधी पुकार भेजता है, उस पुकारमें **एक ऐसी तीव्रता होती है जो अस्वीकृतके इस अनुभवके बिना कदापि उत्पन्न न हुई होती।** सीमाएं भंग हो जाती हैं और एक बाढ़ नीचे आ जाती है जो पहले कभी न **अभिव्यक्त हुई होती** और एक ऐसी चीज प्रकट हो जाती है जो पहले प्रकट नहीं हुई थी।

इस दृष्टिसे देखें तो हम जिसे जीवन और मृत्यु कहते हैं उनके विषयमें स्पष्ट ही एक अनुरूप अनुभव विद्यमान है। यह अनुभव है इस प्रकार मृत्युकी उपस्थितिका 'ऊपर छाये रहना' या निरंतर बने रहना और मृत्युकी संभावनाका होना, जिसका वर्णन 'सावित्री' में इस प्रकार किया गया है: बचपनके पालनेसे लेकर कब्रतक तुम्हारी पूरी यात्रामें निरंतर तुम्हारे साथ एक साथी रहता है; मृत्युकी विभीषिका या उपस्थिति अनवरत रूपसे तुम्हारे साथ बनी रहती है। और इसके साथ-ही-साथ कोषोंमें विद्यमान है नित्यताकी शक्तिके लिये एक तीव्र पुकार जो महज इस सतत विभीषिकाके कारण है, अन्यथा कभी न रही होती। इस तरह हम समझते हैं, हम बिलकुल ठोस रूपमें यह अनुभव करना आरंभ करते हैं कि ये सब चीजें अभिव्यक्तिको तीव्र बनानेके मात्र तरीके हैं, उसकी प्रगति करानेके, उसे अधिकाधिक पूर्ण बनानेके मार्ग हैं। और यदि ये मार्ग भद्दे हैं तो इसका कारण यह है कि स्वयं यह अभिव्यक्ति भी बहुत भद्दी — अपरिपक्व है। और जैसे-जैसे यह अपनेको पूर्ण बनायेगी, जैसे-जैसे वह उस चीजको अभिव्यक्त करनेके योग्य बनती जायगी जो शाश्वत रूपसे प्रगतिशील है, वैसे-वैसे भद्दे साधन पीछे छूटते जायंगे और उनके स्थानपर सूक्ष्मतर साधन आते जायेंगे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे क्रूर विरोधोंकी आवश्यकताके बिना संसार आगे बढ़ता जायगा। यह केवल इसलिये ऐसा है कि संसार अभी भी अपने बचपनमें है और मानव-चेतना भी एकदम अपने बचपनकी अवस्थामें है।

यह बहुत ही ठोस अनुभव है।

अतएव, जब प्रगति करनेके लिये पृथ्वीको मरनेकी आवश्यकता नहीं होगी तब फिर मृत्यु नहीं होगी। जब प्रगति करनेके लिये पृथ्वीको दुःख-कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं रहेगी तब फिर दुःख-कष्ट नहीं रहेगा। और जब प्रेम करनेके लिये पृथ्वीको घृणा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी तो फिर घृणा नामकी वस्तु ही नहीं रहेगी।

(मौन)

सृष्टिको उसके तमस्‌से बाहर निकाल लाने और उसकी उन्नतिके शिखरतक आगे बढ़ा ले जानेका यह बहुत ही क्षिप्र और बहुत ही फलदायी साधन है।

(दीर्घ मौन)

सृष्टिका एक विशेष पक्ष है जो शायद बहुत आधुनिक पक्ष है – वह है अव्यवस्था और अस्तव्यस्ततासे बाहर निकल आनेकी आवश्यकता। अस्तव्यस्तता असमंजसतासे उत्पन्न होती है। यह अस्तव्यस्तता, यह अव्यवस्था सब प्रकारके रूप ग्रहण करती है, यह संघर्षमें, निरर्थक प्रयासमें, अपव्ययमें परिवर्तित हो जाती है। यह निर्भर करता है उस स्तरपर जिसमें तुम होते हो, परंतु भौतिक स्तरमें, कार्यमें इसका मतलब होता है व्यर्थकी जटिलता, शक्ति और सामग्रीका अपव्यय, समयकी हानि, नासमझी, गलतफहमी, क्रमभंग, गड़बड़झाला। यही वह चीज है जिसे पुराकालमें वेदोंमें कहा गया था वक्रता (एक ऐसी चीज जो मुड़ी है, जो सीधे लक्ष्यकी ओर जानेके बदले बहुत टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता पकड़ लेती है)। यह एक ऐसी चीज है जो विशुद्ध दिव्य कर्मकी सुसमंजसताके एकदम विपरीत है; दिव्य कर्म कितना सरलतापूर्ण होता है! ....वह बालसुलभ प्रतीत होता है। बेढंगे और पूरे निरर्थक चक्करोंके स्थानमें सीधा, बिलकुल सीधा होता है। परंतु यह स्पष्ट है कि यह (अस्तव्यस्तता) भी वही चीज है; अस्तव्यस्तता विशुद्ध और दिव्य सरलताकी आवश्यकताको उद्दीप्त करनेका एक तरीका है।

शरीर बहुत, बहुत अधिक अनुभव करता है कि प्रत्येक चीज सरल, एकदम सरल होती!

और शरीरके लिये – इस प्रकारका व्यक्तिगत एकत्रीकरण – अपने-आपको रूपांतरित करनेके योग्य होनेके लिये बस आवश्यकता है अपने-आपको सरल कर देनेकी, सरल कर देनेकी, सरल कर देनेकी। प्रकृतिकी ये सब जटिलाएं, जिन्हें आजकल लोग समझने लगे हैं और जिनका अध्ययन करने लगे हैं, जो मामूलीसे मामूली बातके लिये इतनी जटिल हैं – हमारी मामूलीसे मामूली क्रिया एक ऐसे जटिल संगठनका परिणाम होती है कि जो प्राय अचिंत्य है। निःसंदेह, इन सब चीजोंको पहलेसे देख लेना और उन्हें संयुक्त करना मानव-विचारशक्तिके लिये असंभव ही होगा – आजकल विज्ञान इसका आविष्कार कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हम बहुत स्पष्ट रूपमें देखते हैं कि यदि इस क्रियाको दिव्य होना हो, अर्थात् यदि इसे इस अव्यवस्था और अस्तव्यस्ततासे त्राण पाना हो तो इसे सरल, बिलकुल सीधा-सादा, सरल रूप लेना होगा।

(दीर्घ मौन)

कहनेका मतलब, प्रकृतिमें, अथवा यों कहें कि, स्वयं प्रकृति आत्माभिव्यक्तिके अपने प्रयासमें एक अविश्वसनीय, लगभग अनंत-असीम जटिलताका आश्रय लेनेके लिये बाध्य हुई जिसमें कि वह मूल सरलताको पुनः प्रकट कर सके।

और फिर तुम उसी एक बातपर वापस आ जाते हो। जटिलकी अधिकताके भीतरसे ही उत्पन्न होती है सरलताकी संभावना जो खाली नहीं बल्कि भरी होगी। एक ऐसी सरलता होगी जिसमें सब कुछ होगा; बल्कि इन जटिलताओंके बिना सरलता एक खोखली चीज होगी।

लोग ऐसी खोजें करनेके पथपर हैं। उदाहरणार्थ, शरीररचनाशास्त्रमें, वे शल्य-चिकित्सा-के लिये आविष्कार कर रहे हैं और वे आविष्कार अविश्वसनीय रूपसे जटिल हैं! यह प्रायः जड़तत्त्वके पंचतत्त्वोंके विभाजनके जैसा है – कितनी भयंकर जटिलता है! और इन सब-का लक्ष्य है, इन सबका प्रयास है एकत्वको अभिव्यक्त करना, एकमात्र सरलताको – भागवत स्थितिको प्रकट करना।

(मौन)

संभवतः यह शीघ्रतासे होगा.....परंतु प्रश्न घटकर यह रूप ले लेता है – उस सद्वस्तुको आकर्षित करनेकी एक पर्याप्त, पर्याप्त तीव्र और फलदायी अभीप्सा जो रूपांतर कर सकती है, जटिलताको सरलतामें, क्रूरताको प्रेममें रूपांतरित कर सकती है.....।

यह शिकायत करने और कहनेसे कोई लाभ नहीं कि यह कितनी दयनीय स्थिति है। क्योंकि यह ऐसी ही है। यह ऐसा क्यों है?.....संभवतः यह जब वैसी नहीं रहेगी तब हम जानेंगे। यह बात दूसरे ढंगसे कही जा सकती है, यदि हम जान जायं तो फिर यह वैसी नहीं रहेगी।

फिर यह कल्पना-जल्पनाः "यदि यह ऐसी न हुई होती तो कहीं अच्छा हुआ होता," आदि-आदि, यह सब व्यावहारिक नहीं है, इससे बिलकुल कोई लाभ नहीं होता, यह निरर्थक है।

मनुष्यको जो कुछ आवश्यक है उसे करनेकी शीघ्रता करनी चाहिये जिसमें कि यह फिर ऐसी न रहे; बस, यही है एकमात्र व्यावहारिक चीज। शरीरके लिये यह बहुत मजेदार बात है। पर यह एक पहाड़ है, अनुभूतियोंका एक पर्वत है, देखनेमें बहुत छोटे पर बहुत्वमें इनका अपना स्थान है।[1]

१५-५-१९६३

—श्रीमाताजी

---

[1] जब यह व्याख्या छपनेके लिये जा रही थी तब श्रीमाताजीने यह टिप्पणी की: "विद्वान लोग इसे अस्वीकार करेंगे, वे कहेंगे कि यह सब फालतू बात है; परंतु इसका कारण महज यह है कि मैं उनके शब्दोंका व्यवहार नहीं कर रही हूं, यह महज शब्दोंका प्रश्न है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमाताजीकी व्याख्या :

धम्मपदं

(७)

४–पुप्फवग्गो

को इमं पठविं विजेस्सति, यमलोकञ्च इमं सदेवकं।
को धम्मपदं सुदेसितं, कुसलो पुप्फमिव प्पचेस्सति ॥१॥ (४४)

कौन इस पृथ्वीको और इस यमलोक तथा साथ ही देवताओंके लोकको जीतेगा? पुष्प चयन करनेवाले एक कुशल व्यक्तिकी तरह कौन धर्मके पथको ढूंढ़ निकालेगा तथा दिखायेगा?

सेखो पठविं विजेस्सति, यमलोकञ्च इद सदेवकं।
सेखो धम्मपदं सुदेसितं, कुसलो पुप्फमिव प्पचेस्सति ॥२॥ (४५)

शिष्य इस पृथ्वीको और इस मृत्युलोकको तथा साथ ही देवताओंके लोकको भी जीतेगा। पुष्प चयन करनेवाले एक कुशल व्यक्तिकी तरह शिष्य धर्मके पथको ढूंढ़ निकालेगा और दिखायेगा।

फेणूपमं कायमिमं विदित्वा, मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो।
छेत्वान मारस्य पपुप्फकानि, अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥३॥ (४६)

वह इस शरीरको फेनके जैसा जानता है, वह इसे मरीचिकाके जैसा स्वभाववाला मानता है। वह मारके पुष्पमय वाणोंको काट देता है और मृत्युके राजा यमकी दृष्टिसे परे चला जाता है।

पुप्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघोव मच्चू आदाय गच्छति ॥४॥ (४७)

जैसे भीषण बाढ़ सोये हुए गांवको बहा ले जाती है, ठीक वैसे ही मृत्यु आकर उस मनुष्यको ले जाती है जो आसक्त मनके द्वारा यहां केवल पुष्पोंको चुननेमें व्यस्त रहते हैं।

पुप्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरं।
अतित्तं येव कामेसु अन्तको कुरुते वसं ॥५॥ (४८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो मनुष्य अपनी कामनाओंमें सदा अतृप्त रहता है और यहां आसक्त मनके द्वारा केवल पुष्पोंको एकत्र करनेमें व्यस्त रहता है उसे मृत्यु अपने वशमें कर लेती है।

यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे ॥६॥ (४९)

जैसे भौंरा फूलके वर्ण और गंधको बिना हानि पहुंचाये उसके रसको लेकर चला जाता है, वैसे ही मुनि (ज्ञानी व्यक्ति) गांवमें विचरण करे।

न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं।
अत्तनो'व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ॥७॥ (५०)

दूसरोंके दोषोंको तथा उन्होंने क्या किया है और क्या नहीं किया है इसको मत देखो। तुमने स्वयं जो कुछ किया है और नहीं किया है केवल उसीको देखो।

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो ॥८॥ (५१)

जिस तरह कोई सुन्दर और वर्णयुक्त फूल बिना गंधके होता है, वैसे ही कोई सुभाषित (सुन्दर ढंगसे कही गयी) वाणी आचरणमें लाये बिना निष्फल होती है।

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं सगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा सफला होति कुब्बतो ॥९॥ (५२)

जैसे कोई सुन्दर और वर्णयुक्त फूल गंधवाला होता है, वैसे ही कोई सुभाषित वाणी आचरित होनेपर फलप्रद होती है।

यथापि पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे बहू।
एवं जातेन सच्चेन कत्तब्बं कुसलं बहूं ॥१०॥ (५३)

जैसे फूलोंकी राशिमेंसे कोई बहुत-सी मालाएं बना सकता है, वैसे ही कोई मर्त्य मानव इस जन्ममें बहुत-से अच्छे कार्य कर सकता है।

न पुप्फगन्धो पटिवातमेति न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति ॥११॥ (५४)

फूलकी सुगंध हवाके विरुद्ध नहीं जाती, न चंदन, न धूप और न चमेलीकी ही सुगंध हवाके विपरीत जाती है। परंतु संतकी सुगंध हवाके विपरीत जाती है; हवाकी तरह ही पवित्रात्मा सब दिशाओंमें प्रसारित हो जाता है।

चंदनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं सीलगंधो अनुत्तरो ॥१२॥ (५५)

चाहे चंदन हो या धूप, जूही हो या कुमुदिनी, इन सबकी सुगंधोंसे सदाचारकी सुगंध उत्तम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्पमत्तो अयं गन्धो यायं तगरचन्दनी।
या च सीलवतं गन्धो वाति देवेसु उत्तमो ॥१३॥ (५६)

धूप और चंदनमें जो यह गंध है वह अल्पमात्र ही है। परंतु सच्चरित्र मनुष्यसे जो गंध निकलती है वह सर्वोत्तम होती और देवताओंतक फैलती है।

तेसं सम्पन्नसीलानं अप्पमादविहारिनं।
सम्मदञ्ञाविमुत्तानं मारो मग्गं न विन्दति ॥१४॥ (५७)

जो लोग शीलसंपन्न हैं, बिना भूल और भ्रमके रहते और विचरण करते हैं, सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं और इसलिये विमुक्त हैं, उनके मार्गको मार नहीं जान सकता।

यथा संकारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे।
पदुमं तत्थ जायेथ सुचिगन्धं मनोरमं ॥१५॥ (५८)
एवं संकारभतेसु अन्धभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पञ्ञाय सम्मासम्बुद्धसावको ॥१६॥ (५९)

जैसे महापथपर फेंके कूड़ेके ढेरपर मनोरम और सुन्दर गंधवाला कमल खिल जाता है, ठीक वैसे ही अंधे और अज्ञानी लोगोंमेंसे सम्यक्-संबुद्धका शिष्य अपनी प्रज्ञासे प्रकाशमान होता है।

यहां कुछ बड़े सुन्दर और ज्ञानपूर्ण उपदेश हैं, जैसे, दूसरे जो कुछ करते हैं और वे जो भूलें करते हैं उनके विषयमें व्यस्त नहीं होना चाहिये, बल्कि अपने निजी दोषों और लापरवाहियोंको देखना चाहिये और उन्हें सुधारना चाहिये। दूसरी उत्तम सलाह है कि कभी बहुत अधिक ऐसी सुभाषित वाणी नहीं बोलनी चाहिये जो कर्ममें न परिणत की गयी हो—थोड़ा बोलो और उत्तम रूपमें काम करो। जो सुन्दर शब्द, उनका कहना है, महज शब्द ही हैं वे सुगंधहीन फूलकी तरह हैं।

और अंतमें, तुम अपने दोषोंके कारण कहीं हतोत्साह न हो जाओ इसलिये धम्मपद तुम्हें यह आश्वासन देनेवाली उपमा देता है: सड़कके किनारे पड़े हुए कूड़ा-करकटके ढेरमेंसे विशुद्ध कमल उत्पन्न हो सकता है। कहनेका तात्पर्य, कोई चीज इतनी रद्दी नहीं है कि वह कोई अत्यंत पवित्र उपलब्धि प्रदान करनेमें असमर्थ हो।

हमारा भूतकाल चाहे जो भी रहा हो, हमने चाहे जो भी भूलें की हों, हम चाहे जितने भी अज्ञानमें क्यों न रह चुके हों, हम अपने गभीरतम प्रदेशमें परम पवित्रताको धारण किये हुए हैं जो एक अनुपम अनुभूतिके रूपमें प्रकट हो सकती है।

बस, प्रधान बात है उसीके विषयमें सोचना, उसीके ऊपर एकाग्र होना और अपनी समस्त कठिनाइयों और विघ्न-बाधाओंके विषयमें भी संलग्न न रहना।

जो कुछ तुम बनना चाहते हो बस उसीपर पूर्ण रूपसे एकाग्र होओ और जो कुछ तुम नहीं होना चाहते उसे यथासंभव समग्र रूपमें भूल जाओ। (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यकी पूर्ण धारणा

शंकरका ज्ञान, जैसा कि तुम्हारे गुरुने सूचित किया था, सत्यका केवल एक पक्ष है; वह परात्पर ब्रह्मका वह ज्ञान है जो शुद्ध सत्‌की निश्चल-नीरवताके भीतर आध्यात्मिक मनद्वारा उपलब्ध होता है। चूंकि शंकर केवल इसी पथसे गये इसलिये वह विश्वके आदि कारणको स्वीकार करने या समझनेमें असमर्थ हुए और उन्होंने बस इसे भ्रम, मायाकी सृष्टि बतलाया। जबतक मनुष्य परात्पर ब्रह्मको उसके सक्रिय तथा निष्क्रिय दोनों पक्षोंमें नहीं उपलब्ध कर लेता तबतक वह वस्तुओंके सच्चे मूल कारण तथा सक्रिय ब्रह्मके एक जैसे सत्यको नहीं अनुभव कर सकता। उस समय शाश्वतकी शक्ति केवल मायाकी शक्ति बन जाती है और जगत् अबोध्य, वैश्व उन्मादका गुह्य रहस्य, शाश्वत ब्रह्मका शाश्वत पागलपन बन जाता है। इस मतका समर्थन करनेके लिये चाहे जिस शाब्दिक या विचारात्मक युक्ति-तर्कको क्यों न पेश किया जाय, देखनेका यह ढंग विश्वकी कोई भी व्याख्या नहीं देता। यह केवल अव्याख्येयका मात्र एक मानसिक सिद्धांत ही गढ़ता है। जब तुम परात्परको सत् और चित्-शक्ति-रूपी उसके द्विविध — द्विविध पर अविच्छेद्य — भावके द्वारा उपलब्ध करते हो केवल तभी तुम्हारे आंतर अनुभवके सम्मुख वस्तुओंका पूर्ण सत्य व्यक्त हो सकता है। यह दूसरा (शक्तिका) पक्ष शाक्त तांत्रिकोंके द्वारा विकसित किया गया था। ये दोनों, वैदांतिक और तांत्रिक, सत्य एक साथ मिलकर सर्वांगपूर्ण ज्ञानको आयत्त कर सकते हैं।

परंतु दार्शनिक भाषामें तुम्हारे गुरुकी शिक्षाको इस रूपमें रखा जा सकता है और यह स्पष्ट ही शंकरके दिये हुए सूत्रसे कहीं अधिक पूर्ण सत्य और कहीं अधिक व्यापक ज्ञान है। ठीक इसी बातको गीताने भी अपनी पुरुषोत्तम तथा पराशक्ति (आद्याशक्ति)-संबंधी शिक्षामें सूचित किया है। यह पराशक्ति ही जीव बनती और विश्वको धारण करती है। यह स्पष्ट है कि पुरुषोत्तम और पराशक्ति दोनों ही शाश्वत हैं, अविच्छेद्य हैं, अपनी सत्तामें एक हैं। पराशक्ति विश्वको अभिव्यक्त करती है, भगवान्‌को भी विश्वमें ईश्वरके रूपमें प्रकट करती है तथा उनकी बगलमें ईश्वरी शक्तिके रूपमें स्वयं प्रकट होती है। अथवा, हम कह सकते हैं कि, परात्पर पुरुषकी परात्परा चित्-शक्ति ही स्वयं अपने-आपको ईश्वर-ईश्वरी, आत्मा-आत्मशक्ति, पुरुष-प्रकृति, जीव-जगत्‌के रूपमें अभिव्यक्त करती या प्रसारित करती है। मन अधिकसे अधिक जिस पूर्णताके साथ सत्यकी धारणा बना सकता है वह बस यही है। अति-मानसमें ये सब प्रश्न उठतेतक नहीं। क्योंकि वास्तवमें मन ही भगवान्‌के उन सब भाव-पक्षोंके बीच विरोध उत्पन्न करके इन सब समस्याओंकी रचना करता है जो भाव-पक्ष सचमुच एक-दूसरेके विरोधी नहीं वरन् एक तथा अविच्छेद्य हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अतिमानसिक ज्ञान अभीतक किसीको उपलब्ध नहीं हुआ है, क्योंकि अभीतक स्वयं अतिमानस भी किसीको प्राप्त नहीं हुआ है, परंतु उसका प्रतिबिंब संबोधिमय आध्यात्मिक चेतनामें विद्यमान है और स्पष्ट ही इसी चीजको तुम्हारे गुरुने अपने अनुभवमें उपलब्ध किया था और इसीको उन्होंने मनकी भाषामें व्यक्त किया था जिसका उद्धरण तुमने दिया है। एकतम ब्रह्ममें विलीन होनेके अनुभवके साथ आरंभ करके मनुष्य ज्ञानकी ओर अग्रसर हो सकता है, पर शर्त्त यह है कि तुम वहीं रुक न जाओ, उसे ही उच्चतम सत्य न मान बैठो, बल्कि उसी एकतम ब्रह्मको परात्परा जननी, शाश्वत ब्रह्मकी चिच्छक्तिके रूपमें उपलब्ध करनेके लिये आगे बढ़ो। दूसरी ओर, यदि तुम परात्परा जननीके द्वारा अग्रसर होओ तो वह तुम्हें शांत नीरव एकतममें मुक्ति भी प्रदान करेंगी, तथा साथ ही सक्रिय एकतमकी अनुभूति भी प्रदान करेंगी, और वहांसे उस सत्यतक पहुंचना अधिक आसान है जिसमें वे दोनों एक तथा अविभाज्य हैं। उसके साथ-ही-साथ परात्पर और उनकी अभिव्यक्तिके बीच मनद्वारा उत्पन्न की हुई खाई पट जाती है और फिर उसके बाद सत्यके अंदर ऐसी कोई दरार नहीं रह जाती जो सब कुछको अबोध्य बना दे। यदि इस प्रकाशमें तुम अपने गुरुकी दी हुई शिक्षाकी परीक्षा करोगे तो तुम देखोगे कि वह वही चीज है, बस, कुछ कम दार्शनिक भाषामें कही गयी है।

आदेशका जहांतक संबंध है, लोग अधिकतर आवश्यक विभेद किये बिना ही उसकी चर्चा करते हैं, पर इन भेदोंको स्पष्ट करना जरूरी है। भगवान् हमारे सामने कई तरहसे बोलते हैं और सर्वदा वह हमें ऐसा आदेश नहीं देते जो अनुल्लंघनीय हो। जब वह अनुल्लंघनीय होता है तब वह स्पष्ट और अदम्य होता है, मनको उसका पालन करना पड़ता है और उसके विषयमें कोई संदेह नहीं उठता, भले ही जो आदेश आया हो वह बुद्धिकी पूर्वनिर्धारित भावनाओंके विरुद्ध ही क्यों न हो। ऐसा ही आदेश मुझे मिला था और मैं पांडिचेरी आ गया था। परंतु अधिकांश समय जो कुछ कहा जाता है वह एक सूचना होता है या उससे भी कुछ कम, महज एक संकेत होता है जिसका पालन मन नहीं भी कर पाता क्योंकि मनपर उसकी अनुल्लंघनीय आवश्यकताकी छाप नहीं पड़ती। वह एक ऐसी चीज होता है जो दी जाती है पर लादी नहीं जाती, बल्कि संभवतः यह भी कह सकते हैं कि वह कोई ऐसी चीज होता है जो दी भी नहीं जाती बल्कि उसका एक सुझाव ऊपरके दिव्य सत्यसे आता है।

*

इस योगकी सिद्धि निर्वाण या निर्विकल्प समाधिसे नीचेकी नहीं वरन् उनसे ऊपरकी सिद्धि है।

*
**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता और पूर्णयोग

वास्तवमें वहां कोई यथार्थ विरोध नहीं है; ये दोनों प्रसंग* गीताकी योगपद्धतिमें उसके योगकी — जिसकी उच्चतम क्रिया है पूर्ण समर्पण — दो भिन्न-भिन्न क्रियाओंको सूचित करते हैं। मनुष्यको सबसे पहले अपनी निम्नतर प्रकृतिको जीतना होता है, निम्नतर क्रियाओं-में ग्रस्त आत्माको उच्चतर आत्माकी सहायतासे मुक्त करना होता है और वह इस तरह दिव्य प्रकृतिमें उन्नीत होता है; उसके साथ-ही-साथ मनुष्य अपने सभी कर्मोंको, योगके आंतरिक कार्यके समेत, यज्ञ-रूपमें पुरुषोत्तमको, परात्पर और अंतर्यामी भगवान्‌को अर्पित करता है। जब मनुष्य उच्चतर आत्मामें ऊपर उठ जाता है तब उसे ज्ञान प्राप्त होता है, वह मुक्त होता है, वह अन्य सभी धर्मोंका त्याग कर, एकमात्र दिव्य चेतना, दिव्य संकल्प और शक्ति तथा दिव्य आनंदमें निवास करता हुआ भगवान्‌के प्रति पूर्ण समर्पण करता है।

हमारा योग ठीक गीताके योगके साथ नहीं मिलता-जुलता, यद्यपि यह उन सभी बातों-का अपने अंदर समावेश करता है जो गीताके योगकी प्रमुख बातें हैं। हम अपने योगमें पूर्ण समर्पणकी भावना, संकल्प और अभीप्सासे आरंभ करते हैं पर साथ ही हमें निम्नतर प्रकृतिका परित्याग करना होता है, उससे अपनी चेतनाको मुक्त करना होता है, निम्नतर प्रकृतिमें ग्रस्त आत्माका उच्चतर प्रकृतिमें मुक्तिकी ओर जानेवाले आत्माके द्वारा उद्धार करना होता है। यदि हम इस द्विविध क्रियाको न करें तो यह खतरा है कि हम तामसिक और इसलिये झूठा आत्मसमर्पण कर बैठेंगे, कोई प्रयास नहीं करेंगे, तपस्या नहीं करेंगे और इसलिये कोई प्रगति भी नहीं करेंगे। अथवा बहुत हुआ तो हम भगवान्‌के प्रति नहीं बल्कि भगवान्‌की किसी स्व-निर्मित मिथ्या भावना या मूर्त्तिको, जो हमारे राजसिक अहंका ही एक छद्मरूप होती है या उससे भी कहीं अधिक बुरी कोई चीज होती है, राजसिक समर्पण कर बैठेंगे।

*

जबतक हम वर्तमान विश्व-चेतनामें निवास करते हैं तबतक यह जगत्, जैसा कि गीताने कहा है, 'अनित्यम् असुखम्' है। उससे केवल भगवान्‌की ओर मुड़ जाने और भागवत चेतना-में निवास करनेपर ही हम, जगत्‌के द्वारा भी, शाश्वत भगवान्‌को प्राप्त कर सकते हैं।

*

गीताकी भाषा बहुतसे विषयोंमें कभी-कभी स्व-विरोधी प्रतीत होती है, क्योंकि वह दो आपाततः विरोधी सत्योंको स्वीकार करती है और उनमें समन्वय स्थापित करनेकी चेष्टा करती है। वह संसारसे प्रयाण कर ब्रह्ममें चले जानेके आदर्शको एक संभावनाके रूपमें स्वीकार करती है; फिर साथ ही वह भगवान्‌में (मुझमें, वह कहती है) मुक्त जीवन बिताने तथा

---

*"उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं — आत्माके द्वारा आत्माका उद्धार करो" (गी. ६–५); तथा "सर्वधर्मान् परित्यज्य — समस्त धर्मोंका त्याग कर दो।" (गी. १८–६६)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत्‌में जीवन्मुक्तके रूपमें कार्य करनेकी संभावनाको भी प्रस्थापित करती है। वह इस अंतिम समाधानपर ही सबसे अधिक जोर देती है। इसीलिये रामकृष्ण 'ईश्वरकोटि आत्माओं' की बात कहते हैं जो सीढ़ीसे उतर सकते हैं तथा साथ ही जीवों (जीवकोटियों) से कहीं ऊंचे उसपर चढ़ सकते हैं। 'जीवकोटि'के जीव एक बार ऊपर चढ़ जानेके बाद फिर भागवत कर्म-के लिये नीचे उतरनेकी शक्ति नहीं रखते। पूर्ण सत्य अतिमानसिक चेतनामें है तथा जीवन और जड़तत्त्वपर वहांसे कार्य करनेकी शक्ति भी उसीमें है।

*

गीता स्पष्ट रूपमें भगवती माताकी बात नहीं कहती; वह बराबर ही पुरुषोत्तमको आत्म-समर्पण करनेकी बात कहती है — वह भगवती माताका जिक्र केवल पराप्रकृतिके रूपमें करती है जो जीव बनती है — **'जीवभूता'**, अर्थात् जो भगवान्‌को 'बहु' के अंदर अभिव्यक्त करती है और जिसकी सहायतासे परात्पर प्रभुने इन सब जगतोंकी सृष्टि की है तथा वह स्वयं अव-तारके रूपमें उतरते हैं। गीता वैदांतिक परंपराका अनुसरण करती है जो पूरी तरहसे भग-वान्‌के ईश्वर-रूपपर जोर देती है और भगवती माताकी बात बहुत कम करती है, क्योंकि उस-का उद्देश्य है जगत्-प्रकृतिसे पीछे हट जाना और उसके परे जाकर चरम उपलब्धि प्राप्त करना; तांत्रिक परंपरा शक्ति या ईश्वरी-रूपपर अधिक जोर देती है और सबको भगवती मातापर ही निर्भर रहनेको बाध्य करती है, क्योंकि उसका उद्देश्य है विश्व-प्रकृतिको वशमें करना और उस-पर शासन करना तथा उसीके द्वारा चरम उपलब्धि प्राप्त करना। यह योग इन दोनोंपर जोर देता है; भगवती माताके प्रति आत्मसमर्पण करना आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना इस योगका उद्देश्य ही सिद्ध नहीं हो सकता।

पुरुषोत्तमके संपर्कमें भगवती माता जगतोंसे ऊपरकी परात्परा दिव्य चेतना और शक्ति, आद्याशक्ति हैं; वह परात्परको अपने अंदर धारण करती हैं और अक्षर तथा क्षरके द्वारा भग-वान्‌को विभिन्न जगतोंमें अभिव्यक्त करती हैं। अक्षरके संपर्कमें वह वही पराशक्ति हैं जो समस्त सृष्टिके पीछे अपने अंदर पुरुषको निष्क्रिय-निश्चल रूपमें धारण करती हैं और स्वयं भी उसके अंदर स्थिर-निश्चल रहती हैं। क्षरके संपर्कमें वह सचल विश्व-शक्ति हैं जो सभी सत्ताओं और शक्तियोंको प्रकट करती हैं।

*

मुझे नहीं मालूम कि पुरुषोत्तम-चेतना जैसी कोई चीज है जिसे मनुष्य अपने लिये प्राप्त कर सकता या अनुभूत कर सकता है; क्योंकि गीताके अनुसार पुरुषोत्तम हैं परात्पर प्रभु, परम पुरुष जो अक्षर और क्षरके परे है तथा 'एक' और 'बहु' दोनोंको धारण करता है। गीता कहती है कि मनुष्य ब्राह्मी-चेतनाको प्राप्त कर सकता है, अपनेको पुरुषोत्तमके सनातन अंश-के रूपमें अनुभव कर सकता एवं पुरुषोत्तममें निवास कर सकता है। पुरुषोत्तम-चेतना परात्पर पुरुषकी चेतना है और मनुष्य अहंका लोप होने तथा अपने सच्चे स्वरूपका साक्षात्कार करने-के बाद उसमें निवास कर सकता है।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषियोंके समयमें और उससे पहले भी भारतकी आध्यात्मिक विचारधारामें सांख्य और वेदांतके तत्त्व सर्वदा ही मिलेजुले थे। सांख्यवर्णित सत्ताके संघटक तत्त्वोंको (पुरुष, प्रकृति, पंचतत्त्व, इंद्रिय, बुद्धि आदिको) सर्वत्र स्वीकार किया जाता था तथा प्रत्येक जगह कपिलकी चर्चा बड़े आदरके साथ की जाती थी। गीतामें उनका वर्णन महान् विभूतियोंमें किया गया है।* श्रीकृष्ण कहते हैं, "मैं ऋषियोंमें कपिल हूं।"

ज्ञानयोगकी सिद्धि

मैं समझता हूं कि रामतीर्थकी अनुभूतियां मानसिक स्तरकी अधिक थीं — उससे भिन्न अन्य कोई चीज नहीं थीं। उनमें उच्चतर मनका उद्घाटन हुआ था और उससे विश्वात्माका उन्हें साक्षात्कार हुआ था, पर मैं उनमें रूपांतरित मन और प्राणके होनेका कोई प्रमाण नहीं देखता। वह रूपांतर ज्ञानयोगका कोई परिणाम या उद्देश्य नहीं है। ज्ञानयोगकी सिद्धि यह है कि मनुष्य यह अनुभव करता है कि वह किसी ऐसी चीजके विस्तारके अंदर निवास कर रहा है जो निश्चल-नीरव, आकारहीन और विश्वव्यापी (जिसे आत्मा कहा जाता है) है और बाकी सभी चीजोंको ऐसे देखता है मानो वे केवल नाम और रूप हों। उनके अनुसार आत्मा ही सत्य है और अन्य कोई वस्तु सत्य नहीं है। "**मेरा आत्मा** ही अन्य रूपोंमें भी है" — यह अनुभूति उसका एक अंग है अथवा उस सिद्धिकी ओर जानेका एक पग है। परंतु उस सिद्धिकी परिपूर्णतामें 'मैं-मेरा' विलीन हो जाना चाहिये जिसमें कि केवल एक आत्मा ही रह जाय अथवा यों कहें कि केवल ब्रह्मका ही अस्तित्व रह जाय। क्योंकि आत्मा ब्रह्मका महज एक आंतरिक स्वरूप है, ठीक जैसे कि ईश्वर उसका बाह्य स्वरूप है। बस, यही है वैदांतिक "ज्ञान"। इसका फल है शांति, नीरवता, मुक्ति। जहांतक सक्रिय प्रकृति (मन, प्राण, शरीर) का प्रश्न है, ज्ञानयोग उसको रूपांतरित करनेको अपना लक्ष्य नहीं बनाता — (उसकी दृष्टिमें) उसका कोई लाभ नहीं क्योंकि वह यह मानता है कि जब मुक्ति प्राप्त होगी तब मृत्युके समय वह पूरीकी पूरी झड़ जायगी। ज्ञानयोगमें बस उतना ही परिवर्तन अभीप्सित है जिससे अहंभावसे छुटकारा मिल जाय और यह अनुभूति प्राप्त हो जाय कि केवल परात्पर आत्मा, ब्रह्म ही सत्य है।

★

मैंने 'र' के लेखोंको नहीं पढ़ा है। मैं व्यक्तिगत रूपसे उनके व्यक्तित्वसे भी बिलकुल परिचित नहीं हूं और न यही जानता हूं कि उनके अनुभव किस स्तरके हैं। तुमने उनकी जो कुछ बातें उद्धृत की हैं वे या तो सरल श्रद्धाकी अभिव्यक्ति हो सकती हैं अथवा सर्वेश्वरवादी अनुभवकी। स्पष्ट ही, यदि उनका उपयोग यह सिद्धांत स्थापित करनेके लिये किया जाय या वे यह सिद्धांत स्थापित करनेके लिये अभिप्रेत हों कि भगवान् सर्वत्र हैं और सब कुछ हैं और इसलिये सब कुछ शुभ है क्योंकि सब कुछ भगवान् है तो वे बातें इस मतलबके लिये बहुत अपर्याप्त हैं। परंतु एक अनुभूतिके रूपमें इस भावना या अनुभूतिको प्राप्त करना वैदां-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिक साधनामें एक बहुत मामूली बात है — वास्तवमें देखा जाय तो इसके बिना कोई वैदांतिक साधना हो ही नहीं सकती। स्वयं मुझे यह अनुभूति चेतनाके कई स्तरोंपर और अनगिनत रूपोंमें हुई थी तथा मैं ऐसे दर्जनों लोगोंसे मिला हूं जिन्हें बड़े सच्चे और स्पष्ट रूपमें यह अनुभव हुआ था — उन्हें यह केवल एक बौद्धिक सिद्धांत या बोधके रूपमें नहीं मिला था, बल्कि एक आध्यात्मिक सत्यके रूपमें मिला था जो उनके लिये इतना अधिक ठोस और वास्तव था कि उसे अस्वीकार करना असंभव था, भले ही उसमें साधारण बुद्धिको चाहे जितना भी विरोधाभास क्यों न दिखायी देता हो।

परंतु निस्संदेह, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यहांपर सब कुछ अच्छा है अथवा मूल्यांकनका जहांतक प्रश्न है, वेश्यालय और आश्रम एक जैसा ही अच्छा है। परंतु इसका अर्थ यह अवश्य है कि सभी एक ही अभिव्यक्तिके अंश हैं और वेश्याके आंतर हृदयमें भी वैसे ही भगवान् विराजमान हैं जैसे किसी संत या ऋषिके आंतर हृदयमें विराजमान हैं। फिर उनका अनुभव यह है कि एक ही दिव्य शक्ति है जो जगत्में, उसकी अच्छी और बुरी सभी चीजोंमें कार्य कर रही है — वह एक ही विश्व-शक्ति है; वह आश्रमकी सफलता (या विफलता) और वेश्यालयकी सफलता (या विफलता) दोनोंमें काम करती है। इस जगत्में जो कुछ कार्य होता है वह उस शक्तिके प्रयोगसे होता है, यद्यपि यह प्रयोग प्रयोक्ताके स्वभावके अनुसार होता है, एक तो ज्योतिके कार्योंके लिये उसका उपयोग करता है, दूसरा अंधकारके कार्योंके लिये, और फिर दूसरा दोनोंकी मिलीजुली क्रियाओंके लिये।

मैं नहीं समझता कि कोई भी वैदांतिक (शायद कुछ आधुनिकभावापन्न लोगोंको छोड़कर) यह मानेगा कि यहां सब कुछ अच्छा ही है — कट्टर वैदांतिक मत यह है कि यहांपर सब कुछ अच्छे-बुरेकी एक ऐसी मिलावट है कि उसमेंसे दोनोंको अलग नहीं किया जा सकता; सब कुछ अज्ञानकी क्रीड़ा है और इसलिये द्वंद्वोंका खेल है। मेरा ख्याल है कि ईसाई पादरी लोग ऐसा मानते हैं कि जो कुछ भगवान् करते हैं वह सब नैतिक रूपमें अच्छा ही होता है और इसलिये जब वे यह देखते हैं कि ताओ धर्मवाले पुरोहित अपने धार्मिक कृत्योंके द्वारा वेश्यालयके कार्यमें सहायता पहुंचाते हैं तब उन्हें बड़ा धक्का पहुंचता है। पर क्या ईसाई पुरोहित युद्धमें मनुष्योंका नाश करनेके लिये भगवान्से सहायताकी प्रार्थना नहीं करते? और क्या उनमेंसे कुछ लोग मनुष्योंके संहार तथा स्त्रियों-बच्चोंकी भूखमरीके द्वारा प्राप्त विजयके अवसरपर 'त दम' का गान (Te Deums—भगवान्के प्रति कृतज्ञताका गान) नहीं करते? 'ताओ' धर्मवाले केवल निराकार 'ताओ' में विश्वास करते हैं और इसलिये उनकी विचारधारामें कहीं अधिक संगति है। वैदांतिक भी यह विश्वास करते हैं कि परात्पर शुभ और अशुभके परे है, पर जिस वैश्व शक्तिको परात्परने यहां स्थापित किया है वह द्वंद्वोंके द्वारा और इसलिये शुभ और अशुभ, हर्ष और शोक दोनोंके द्वारा कार्य करती है, अतएव उनके पास एक ऐसा सिद्धांत है जो कम-से-कम अनुभवके इस द्विविध तथ्य — एक ओर परात्परका अनुभव जो सर्व-ज्योतिर्मय, सर्व-आनंदमय और सर्व-सौंदर्यमय है तथा दूसरी ओर इस जगत्का अनुभव जिसम प्रकाश और अंधकार, हर्ष और शोकका मिश्रण है, जो कुछ सुन्दर और जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ कुत्सित है उसका मिलित रूप है — के लिये कारण बताता है। वैदान्तिकोंका कहना है, कि द्वन्द्व पृथकात्मक अज्ञानके कारण उद्‌भूत होते हैं और जबतक तुम पृथकात्मक अज्ञानको स्वीकार करते हो तबतक तुम उससे (द्वन्द्वसे) मुक्त नहीं हो सकते, परंतु अपने अनुभवमें उस अज्ञानसे पीछे हट आना और सबमें तथा सर्वत्र भगवान्‌का साक्षात्कार पाना संभव है। उस समय तुम सब वस्तुओंके पीछे ज्योति, आनंद और सौंदर्यको उपलब्ध करना आरंभ कर देते हो और यही एकमात्र करणीय है। फिर तुम एकतम दिव्य शक्तिको अनुभव करना भी आरंभ कर देते हो और अपने अंदर तथा दूसरोंके अंदर ज्योतिकी वृद्धिके लिये उसका उपयोग कर सकते हो या उसे स्वयं अपनेको व्यवहृत करने दे सकते हो। उस समय अब तुम अपने अहंभावकी संतुष्टि और अज्ञान तथा अंधकारके कार्योंके लिये वैसा नहीं करते।

अब निष्ठुरता संबंधी जटिल समस्यापर आवें। मैं नहीं जानता कि 'र' इसका क्या उत्तर देंगे। इसका एक उत्तर यह हो सकता है कि चैत्य पुरुषके द्वारा अंतःस्थ भगवान्‌का अनुभव होता है और चैत्य पुरुषका स्वभाव ही है भागवत ज्योति, सामंजस्य और प्रेमका स्वभाव, पर वह मानसिक और प्राणिक अहंकारद्वारा आवृत होता है जिनसे कि संघर्ष, घृणा, कठोरता आदि स्वभावतः ही उद्‌भूत होते हैं। अतएव यह स्वाभाविक है कि मनुष्य दयामें भगवान्‌का स्पर्श अनुभव करे, जब कि वह निष्ठुरताको प्रकृतिके एक छद्मवेश या विकृतिके रूपमें अनुभव करता है, यद्यपि उसका यह अनुभव भगवदुपलब्धिप्राप्त मनुष्यको इस छद्मवेशके पीछे विद्यमान भगवान्‌को अनुभव करने और पानेसे नहीं रोक सकता। मैं ऐसे उदाहरण भी जानता हूं जिनमें सबमें भगवान्‌के दर्शनके साथ-साथ विश्वप्रेमका तीव्र अनुभव लगा हुआ था अथवा एक आंतरिक सामंजस्यका एक ऐसा विशाल अनुभव संलग्न था जिसमें अपने चारों ओरके लोगोंको, यहांतक कि अत्यंत अनगढ़, कठोर और निष्ठुरतकको प्रेमिल, और सहायक बना देनेका विलक्षण प्रभाव था। 'र' ने दयालुताके विषयमें जो कुछ कहा है, उसके मूलमें शायद इसी प्रकारकी कोई अनुभूति है।

भागवत क्रियाके विषयमें वैदान्तिक अनुभव यह है कि भले-बुरेके अस्तव्यस्त मिश्रणके पीछे कोई चीज कार्य कर रही है जिसे वह भगवान्‌के रूपमें अनुभव करता है और अपने निजी जीवनमें भी वह पीछेकी ओर दृष्टि डाल सकता तथा देख सकता है कि कौन-कौनसे सुखकर या दुःखकर पग उसकी प्रगतिके लिये अभिप्रेत थे एवं किस प्रकार वे उसकी आत्माकी प्रगतिको आगे बढ़ा ले गये। स्वभावतः ही यह बात पूर्ण रूपमें तभी आती है जब अनुभूति आगे बढ़ती है; उससे पहले उसे श्रद्धाके बलपर ही चलना पड़ा था और उसने कई बार अपनी श्रद्धाको भंग होते हुए अनुभव किया होगा तथा कुछ समयके लिये उसे दुःख-कष्ट, शंका-संदेह और निराशाके वश होना पड़ा होगा।

मेरे लेखोंका जहांतक प्रश्न है, मैं नही जानता कि मैंने कोई ऐसी चीज लिखी है जो इस कठिनाईको हल कर सकेगी। तुम्हें अधिकतर वैदान्तिक अनुभवका ही वर्णन मिलेगा, क्योंकि मैं उसीके भीतरसे गुजर रहा था, यद्यपि इस समय मैं उसके परेकी किसी चीजमें पहुंच गया हूं। मुझे ऐसा लगता है कि वह सब, जो कुछ परे है उसतक पहुंचनेके लिये, अत्यंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरम और मौलिक तैयारी है, पर मैं यह नहीं कहता कि उस सबमेंसे गजरना अनिवार्य है। परंतु समाधान चाहे जो हो, मुझे ऐसा लगता है कि वैदान्तिकका इस बातपर जोर देना ठीक है कि वहां (परात्परपर) पहुंचनेके लिये हमें इन दोनों तथ्योंको – यहांपर (जगत्में) अशुभ और दुःख-कष्टकी प्रधानताको और जो अनुभव इन सब चीजोंसे मुक्त है उसको– स्वीकार करना चाहिये। सच पूछा जाय तो इस क्रमवर्धमान अनुभवके द्वारा ही हम इस समाधानको पा सकते हैं, भले ही वह अनुभव समन्वयके द्वारा आवे या किसी विजयशील अवतरण या (जगत्से दूर) किसी पलायनके द्वारा आवे। यदि हम इस स्वयंसिद्ध सिद्धांतको अपना आधार बनाकर आरंभ करें कि वर्तमान समयमें तथा वस्तुओंके कठोर एवं बाह्य तथ्यमें दुःख-कष्ट और बुराईकी प्रधानता ही उन सब चीजोंका खंडन करती है जिन्हें दूसरी ओर संतों और योगियोंने अनुभव किया है, इस बातको अस्वीकार करती है कि भगवान्को उपलब्ध किया जा सकता है, तो फिर कोई समाधान प्राप्त करना संभव नहीं प्रतीत होता।

★

ना, मेरा मतलब निश्चय ही यह नहीं था कि वैदांतिक, जो जगत्के बाह्य रूपोंके पीछे एक महत्तर क्रियाको देखता है, इस स्थूल जगत्से भिन्न किसी दूसरे जगत्में निवास करता है। यदि मेरा मतलब यह होता तो जो कुछ मैंने लिखा था वह अप्रासंगिक या निरर्थक हो जायगा। मेरा मतलब था उस वैदांतिकसे जो इस जगत्में, इसके सभी दुःख-कष्ट और अज्ञान और कुरूपता और बुराईको लेकर, निवास करता है तथा इन चीजों — मित्रोंकी प्रवंचना और परित्यक्तता, जीवनमें बाह्य उद्देश्यों और कामनाओंकी असफलता, आक्रमण और उत्पीड़न, पूंजीभूत रोग, निरंतर होनेवाली कठिनाई, संघर्ष, योगमें होनेवाले पतन — की पूरी मात्रा प्राप्त कर चुका है। मेरा कहना यह नहीं है कि वह एक दूसरे लोकमें वास करता है, बल्कि यह है कि वह जगत्की अग्निपरीक्षाओं, आघातों और विपत्तियोंका सामना एक भिन्न तरीकेसे करता है। वह इन्हें इस जगत्के स्वभावके रूपमें देखता है तथा उस अहं-चेतनाका परिणाम समझता है जिसमें कि वह रहता है। इसलिये वह एक दूसरी चेतनामें उन्नीत होनेका प्रयास करता है जिसमें पहुंचनेपर वह उस चीजको अनुभव करता है जो बाह्य रूपके पीछे विद्यमान है, और जैसे-जैसे वह उस विशालतर चेतनामें उन्नीत होता है वैसे-वैसे वह पीछे होनेवाली उस क्रियाको अधिकाधिक अनुभव करना आरंभ कर देता है जो उसे आत्मामें वर्द्धित होनेमें उसे सहायता करती होती है और उसे प्रभुत्व तथा अहंकार और अज्ञानसे मुक्तिकी ओर ले जाती होती है तथा वह यह देखता है कि सब कुछका उपयोग उसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये किया गया है। जबतक वह इस चेतनामें नहीं पहुंच जाता और वस्तुओंके विषयमें उसके वृहत्तर ज्ञानको नहीं प्राप्त कर लेता तबतक उसे श्रद्धाके बलपर ही चलते रहना होता है। उसकी यह श्रद्धा कभी-कभी उसका साथ छोड़ दे सकती है, पर वह फिर वापस आती और उसे इन सब कठिनाइयोंमेंसे बाहर निकाल ले जाती है। प्रत्येक मनुष्य इस श्रद्धा और इस चेतनाको स्वीकार करनेके लिये बाध्य नहीं है, पर आध्यात्मिक जीवनकी दृष्टिसे इस श्रद्धा और चेतनाके पीछे एक महान् और सत्य वस्तु है।

—श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिविध रूपांतर : --श्रीअरविन्द

चैत्य, आध्यात्मिक और अतिमानसिक

(१)

(अप्रैल १९६४ के अंकसे आगे)

चैत्य पुरुषका स्थान हृदयके भीतर गहराईमें है, — पर 'भीतर गहराई' में, न कि ऊपरी तलपर जहां साधारण भावावेग होते हैं। परंतु वह आगे आ सकता और ऊपरी तलपर अधिकार जमा सकता है और फिर साथ ही अंदर भी बना रह सकता है, — उस समय स्वयं भावावेग भी प्राणिक वस्तुएं नहीं रह जाते बल्कि चैत्य भावावेग और अनुभव बन जाते हैं। इस तरह सामने खड़ा हुआ चैत्य पुरुष अपने प्रभावको सर्वत्र फैला सकता है, उदाहरणार्थ, मनमें जिसमें कि उसके विचारोंको रूपांतरित कर दे अथवा शरीरमें जिसमें कि उसकी आदतों और प्रतिक्रियाओंको रूपांतरित कर दे।

जिस व्यक्तिको तुमने ऊपर देखा वह शायद स्वयं मेरा ही कोई रूप हो। साधक अपने सूक्ष्म-दर्शनोंमें हमें देख सकते हैं और न केवल हमारे भौतिक आकारमें बल्कि उन अन्य आकारों-में देख सकते हैं जो सत्ताके अन्य स्तरोंपर होते हैं।

तुम्हारा अनुभव ..... उन स्वप्नानुभूतियोंमेंसे एक है जिन्हें मनुष्य प्राणलोकमें प्राप्त करता है, — क्योंकि वहां अच्छी और बुरी, सुखदायी और दुःखदायी चीजें एक-दूसरीके बहुत पास-पास होती हैं।

अपनी प्रकृतिके किसी दोषको पहचान जानेसे, जैसा कि तुमने किया है, वह दोष तुरत पूर्ण रूपसे दूर नहीं हो जाता, परंतु ऐसा करना उसे दूर करनेके लिये एक बहुत बड़ा कदम है। इससे दोष तुरत दूर नहीं होता, क्योंकि प्रकृतिमें अभ्यासकी शक्ति विद्यमान होती है, परंतु फिर भी सचेतन होना और उसे दूर करनेका संकल्प रखना उसकी शक्तिको कमजोर बनानेमें सहायक होता है और श्रीमाताजीकी क्रियामें बहुत अधिक सहयोग देता है।

*

जो सूक्ष्म-दर्शन तुम्हें प्राप्त हुआ वह मानसिक स्तरका था और प्रतीकात्मक था। यह तुम्हारी अपनी स्थितिको उतना सूचित नहीं करता जितना उन सामान्य कठिनाइयोंको सूचित करता है जो चैत्य केंद्रके अंदर गहराईतक पैठ जाने और वहां निवास करनेके मार्गमें आ खड़ी होती हैं। ज्योतिसे भरा हुआ मैदान था अंतरतम चैत्य केंद्र; बीचमें दिखायी देनेवाला काला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान था अज्ञानका पर्दा जो इस अंतरतम चैत्य केंद्र तथा बाह्य प्रकृतिके बीचकी खाईके द्वारा उत्पन्न हुआ था। एक (मानसिक) ओरसे रास्ता रोककर रखनेवाला घूमता हुआ चक्र है साधारण मनकी क्रिया; जब मन स्थिर हो जाता है तब आगे बढ़ना आसान हो जाता है। सर्प है प्राणिक शक्ति जो चैत्य पुरुषको ढक रखती है और दूसरी (प्राणिक) ओरसे जानेका रास्ता रोकती है। यहां भी, यदि प्राण स्थिर हो जाय तो आगे बढ़ना आसान हो जाता है।

ललाटमें जो आघात लगे वे शायद शक्तिकी क्रियाको सूचित करते हैं जो वहांके केंद्रको खोलनेके लिये की गयी थी — क्योंकि आंखोंके मध्यमें आंतर मन, संकल्प और सूक्ष्म-दर्शनका केंद्र है। सामान्य चेतनामें ये सब केंद्र बंद होते हैं या ऊपरी तलपर केवल बहुत थोड़ासा ही खुले होते हैं। यदि आंतर मनका केंद्र खुल जाय तो ऊपरसे शांति वगैरह चीजें मनमें और उसके बाद प्राणमें आसानीसे प्रवेश कर सकती हैं और उससे मन और प्राण दोनों शांत-स्थिर हो जायंगे।

मनके दो भागोंके विषयमें आनेवाली कठिनाई भी एक ऐसी कठिनाई है जो प्रत्येक मनुष्य-को उस समय होती है जब उसमें अंदर घुसनेकी प्रवृत्ति जागृत होती है। इस साधनामें इस-का समाधान एक प्रकारका सामंजस्य स्थापित होनेपर होता है जिससे मनुष्य अपना कार्य करते हुए तथा आवश्यक बाहरी क्रियाओंको बनाये रखते हुए भी अपने अंदर आंतरिक जीवन और अनुभवकी परिपूर्णतामें निवास कर सकता है।

सर्वदा श्रीमाताजीपर भरोसा रखो। ये चीजें यौगिक अनुभवकी पहली आरंभिक चीजें हैं और मन तथा प्राणकी कठिनाइयां (जो वे ही पुरानी कठिनाइयां नहीं हैं जो तुममें थीं, बल्कि सत्ताके विभिन्न भागोंको सुव्यवस्थित और सुसमंजस करनेकी महज मामूली कठिनाइयां हैं) स्वयं अपने-आप सुलझ जायंगी।

*

यह सब बहुत अच्छा है, — जो कुछ तुमने लिखा है वह सब चैत्य पुरुषके उन्मज्जित होनेका एक प्रबल प्रमाण है। चैत्यके इसी प्रकटीकरणके विषयमें मैंने कलके पत्रमें लिखा था। तुम्हारे वर्णनोंसे ऐसा लगता है कि तुम्हारी चेतना तुरत चैत्य चेतनामें गहराईतक डूब गयी थी और मन तथा हृदयमें चैत्य प्रभाव प्रकट हो गया था। अत्यंत गहराईमें डूब जाने-के कारण ही तुम्हारा कार्य इतना धीमा हो गया था, क्योंकि तुम्हारी चेतना इतना अधिक भीतर घुस गयी थी कि बाहरी चीजोंपर तेजीके साथ कार्य करना संभव नहीं था। यह एक स्थिति है जिसमेंसे मनुष्यको अपनी आंतरिक परिवर्तनकी प्रक्रियामें गुजरना पड़ता है। इसके साथ-ही-साथ तुम्हारे मनके विचार, तुम्हारा ज्ञान, चीजोंके प्रति तुम्हारा मानसिक और प्राणिक भाव, तुम्हारे सामनेकी घटनाएं और लोग सभी अधिक-अधिक चैत्य स्वभाव ग्रहण करते जा रहे हैं। भगवान्‌के प्रति प्रेम और भक्ति चैत्य स्वभावका केंद्रीय भाव है और तुम्हारे अंदर श्रीमाताजीके प्रति वह भाव बढ़ रहा है तथा तुम्हारी सत्तामें व्याप रहा है। सबके प्रति चैत्य प्रेम भी प्रकट हो रहा है; यह प्रेम एक अंतर्मुखी वस्तु है और यह प्राणिक प्रेमकी तरह, जो साधारणतया लोगोंमें होता है, बाहरकी ओर प्रकट होनेकी चेष्टा नहीं करता। चैत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आध्यात्मिक मनोभाव वस्तुओंमें विद्यमान भलाई या बुराईपर भी निर्भर नहीं करता, बल्कि वह अपने-आप उत्पन्न होता है। वह दूसरोंको अपने अंदर भगवान्‌को वहन करनेवाले, भले ही उनमें भगवान् चाहे जितने मोटे पर्देसे क्यों न ढके हों, आत्मा तथा श्रीमाताजीके बच्चे समझता है।

★

मधुरता और सुन्दर भावनाको बढ़ने दो, क्योंकि वे इस बातके अत्यंत प्रबल लक्षण हैं कि अंतरात्मा, चैत्य पुरुष जागृत है तथा हमारे साथ उसका संपर्क बना हुआ है। अपने विचार या वाणी या कार्यकी भूलोंसे विचलित मत होओ — उन्हें अपनेसे दूर रखो मानो वे ऊपरी चीजें हों जिनपर दिव्य शक्ति और ज्योति कार्य करेंगी तथा जिन्हें दूर करेंगी। बस, एक ही केंद्रीय वस्तुका ध्यान रखो — अपने अंतरात्माका तथा इन उच्चतर सत्य वस्तुओंका जिन्हें वह अपने साथ लाता है।

★

यह हृदयके पीछे विद्यमान तुम्हारा अंतरात्मा, चैत्य पुरुष है, जो जागृत है और चाहता है कि मन भगवान्‌पर एकाग्र हो। यह मनका स्वभाव है कि वह अन्य चीजोंकी ओर चला जाता है, पर अब जब कि वह ऐसा करता है, हृदयमें बेचैनी होती है, चैत्य दुःख होता है, क्योंकि हृदय तुरत यह अनुभव करता है कि यह भूल है और सिर भी दुखता है क्योंकि भागवत शक्तिको कार्य करनेमें बाधा पहुंचती है। यह एक ऐसी चीज है जो प्रारंभिक अवस्थामें, चेतनाके साधनाकी ओर उद्‌घाटित हो जानेके बाद, बहुत अधिक घटित होती है।

★

चैत्य पुरुषके द्वारा उत्पन्न बेचैनीको अवसाद नहीं कह सकते — यह अपने स्वभावमें गलत क्रियाओंका एक प्रकारका परित्याग होता है।

★

तुम्हें जो रुलाई आती है वह चैत्य पुरुषसे आती है — यह चैत्य आकांक्षा और अभीप्साका आंसू है। एक विशेष अवस्थामें बहुतोंको ऐसा होता है और यह बहुत अच्छा लक्षण है। दूसरी भावनाएं और प्रवृत्तियां भी उसी स्रोतसे आयी हैं। वे यह सूचित करती हैं कि चैत्य पुरुष बड़ा प्रबल प्रभाव डाल रहा है और, जैसा कि हम कहते हैं, सामने आनेकी तैयारी कर रहा है। इस क्रियाको स्वीकार करो और इसे संपन्न होने दो।

★

यह बिलकुल ठीक है कि रोनेसे ऐसी शक्तियां भीतर घुस आती हैं जिन्हें बाहर ही रखना चाहिये — क्योंकि रोनेका अर्थ है आंतरिक संयमका हट जाना और प्राणिक प्रतिक्रिया तथा अहंकारका प्रकट होना। केवल चैत्य रुलाई ही ऐसी चीज है जो इन शक्तियोंके लिये दरवाजा नहीं खोलती — बल्कि वह रुलाई बिना किसी क्लेशके होती है, भक्ति, आध्यात्मिक अनुराग या आनंदका आंसू होती है।

तुम्हारा अनुभव बहुत सुन्दर था — ऐसे अनुभवोंके द्वारा आंतरिक सत्ता उस चीजको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करती है जिसे जागृत अवस्थामें आध्यात्मिक चेतना और आध्यात्मिक जीवनके आधारके रूपमें स्थापित करना आवश्यक होता है।

*

स्पष्ट ही, जब वशमें करनेकी अक्षमता तथा अति-उत्सुकता है तब वह अवश्य ही प्राणिक स्वभावकी एक क्रिया है। प्राण-पुरुष किसी क्रियामें भाग ले सकता है पर उसपर उसका अधिकार नहीं होना चाहिये — उसे चैत्यके अधीन होना चाहिये।

*

ये चैत्य स्पर्शके अधीन प्राणकी क्रियाएं हैं। यदि नीचेकी ओर चैत्य आधार स्थापित हो गया हो तो उसका अनुभव एक अंतर्निहित स्थिरता और विश्वासके रूपमें अथवा आत्मसमर्पण-के एक स्थायी भावके रूपमें होगा।

*

चैत्य अग्नि अभीप्सा, शुद्धि और तपस्याकी अग्नि है जो चैत्य पुरुषसे आती है। यह स्वयं चैत्य पुरुष नहीं है, बल्कि चैत्य पुरुषकी एक शक्ति है। चैत्य पुरुष एक पुरुष है, लौ नहीं है — चैत्य अग्नि पुरुष नहीं है, यह ऐसी चीज है जो पुरुषकी निजी है।

*

घनीभूत स्थिरता और समर्पणसे भरेपूर अभीप्साके रूपमें विद्यमान अग्नि, निःसंदेह, वह पहली चीज है जिसे हृदयमें प्रज्ज्वलित करना चाहिये।

*

यह सच है कि अभीप्साकी अग्निको निरंतर जलाये रखना होगा; परंतु यह अग्नि चैत्य अग्नि है और जैसे-जैसे अपने भीतर चैत्य सत्ता वर्द्धित होती है वैसे-वैसे यह भी बल उठती या जलने लगती है और बढ़ती जाती है तथा चैत्य सत्ताके बढ़नेके लिये निश्चलता आवश्यक होती है। यही कारण है कि तुम्हारे अंदर चैत्य सत्ताके बढ़नेके लिये तथा निश्चलताके बढ़ने-के लिये भी हम कार्य करते रहे हैं एवं यही कारण है कि हम चाहते हैं कि तुम पूरे धैर्य और विश्वासके साथ श्रीमाताजीकी क्रियाके लिये प्रतीक्षा करो। श्रीमाताजीको सर्वदा याद करते रहने और अपने भीतर एक जैसी निष्कंप आगको सदा बनाये रखनेका स्वयं यह अर्थ है कि साधनामें काफी प्रगति हो गयी है और इसकी तैयारी अनेक उपायोंके द्वारा करनी होगी ठीक जैसे कि कुछ अनुभव तुम्हें हो रहे हैं। अतएव अपने विश्वासपर अटल-अचल बने रहो और जो कुछ करना आवश्यक है वह अवश्य किया जायगा।

*

केंद्रीय आग चैत्य पुरुषमें है, पर इसे सत्ताके समस्त भागोंमें प्रज्ज्वलित किया जा सकता है।

*

ठीक भौतिक चेतना वह चीज है जिसमें आगको जलाये रखना कठिन होता है — भौतिक चेतना किसी निश्चित क्रमका सतत अनुसरण बड़ी आसानीसे कर सकती है, पर किसी सतत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सजीव प्रयासको आसानीसे नहीं जारी रख सकती। परंतु कुछ समयके बाद उसे ऐसा करनेके लिये तैयार किया जा सकता है। सब प्रकारकी सहायता तुम्हें दी जायगी।

*

यदि अहं यह समझता है कि वही चैत्य आग है तो यह घमंडकी बात है। यदि चेतना चैत्य आगके साथ एकात्म अनुभव करती है और उसे यह ज्ञान होता है कि यह आग सभी अशुद्धियोंको जला सकती है तो फिर यह एक सच्चा अनुभव है।

*

यह सच है कि यदि चेतना शांत-स्थिर बनी रहे तो चैत्य पुरुष अंदरकी गहराईमेंसे अधिकाधिक अभिव्यक्त होगा और इस बातका सुस्पष्ट ज्ञान प्राप्त होगा कि क्या सत्य है और आध्यात्मिक दृष्टिसे सही है तथा क्या गलत या असत्य है और फिर इसीके साथ-साथ आयेगी उस सबको फेंक देनेकी शक्ति जो विरोधी, अयथार्थ या असत्य है।

अग्निका अनुभव बिलकुल सही है, — यह शुद्धि और एकाग्रता (अर्थात् चेतनाको एकत्र करके दृढ़तापूर्वक भगवान्‌की ओर मोड़ देने) की महान् आग है, चैत्य अग्नि है जिसमेंसे सबको गुजरना ही होगा ताकि वे स्थायी और पूर्ण रूपसे श्रीमाताजीतक पहुंच जायं।

*

जिस आगको तुमने देखा उससे डरना भूल है, क्योंकि वह पवित्र बनानेवाली दिव्य अग्नि है जिसे तुमने जलते हुए देखा और जो कोई हानि नहीं पहुंचाती। यह केवल उस चीजको दूर कर देती है जिसे वहां नहीं रहना चाहिये। यही कारण है कि उसके बाद आता है एक हलकापन या एक खालीपन। तुम्हें बस शांत-स्थिर बने रहना है और उस अग्निको अपना कार्य करने देना है। उस समय जिस गर्मीको मनुष्य अनुभव करता है वह ज्वरका ताप अथवा कोई दूसरी दूषित गर्मी नहीं है। बादमें, जैसा कि तुमने अनुभव किया, सब कुछ ठंडा और हलका हो जाता है।

*

ये सब चीजें इस समय चलनेवाली प्रक्रियाको सूचित करनेवाले लक्षण हैं और अब ये बार-बार प्रकट हो रही हैं। गर्मीका महसूस होना बाधाओंको जला डालनेवाली चैत्य अग्निका परिणाम है — ठंडापन और पूर्ण निश्चलता उसीके फलस्वरूप आती हैं। सोनेकी प्रवृत्ति वास्तवमें आंतरिक चेतनाके अंदर पैठ जानेकी प्रवृत्ति है जो परिवर्तनके लिये पड़नेवाले दबावके कारण आयी है।

जिस ज्योतिर्मय विशालताको तुमने देखा वह मानवीय मन, प्राण और शरीरकी चेतनाकी संकीर्ण सीमाओंसे मुक्त यथार्थ चेतनाकी विशालता थी। यह ठीक है कि मन संकीर्ण है, लेकिन केवल तुम्हारा ही नहीं बल्कि सभी मनुष्योंके मन, यहांतक कि अत्यंत विकसित मन भी सच्ची चेतनाकी, जिसकी कोई सीमा नहीं, विशालताके मुकाबले संकीर्ण हैं! ठीक यही विशालता है जो साधनासे आयेगी और जिसके लिये ये प्रक्रियाएं तैयारी कर रही हैं। फूलोंकी वृष्टिका अर्थ है चैत्य गुणों और क्रियाओंकी प्रचुरता और मानसिक विजयका सफेद फूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचित करता है उस विजयकी ओर — बाहरी अज्ञानके ऊपर आंतरिक ज्योतिकी मानसिक विजयकी ओर — जानेका पग जिसकी ओर इस समय उसे ले जाया जा रहा है।

*

शरीरमें जो गर्मी महसूस होती है वह महज उस क्रियाके कारण उत्पन्न हुई है जो भीतर चल रही है; यही वह चीज है जिसे तपस्‌की ऊष्मा कहते हैं। इसमें कोई भी चीज अस्वास्थ्यकर नहीं है जैसा कि ज्वरकी गर्मीमें होती है। जो सुन्दर गंध तुम्हें मिलती है वह है सूक्ष्म या चैत्य गंध, ठीक जिस तरह कि कमलका सूक्ष्म-दर्शन एक सूक्ष्म या चैत्य दर्शन है।

चैत्य पुरुष प्रायः ही हमारे भीतर एक बालकके रूपमें दिखायी देता या अनुभूत होता है, — शायद उसीको तुम अपने भीतर अनुभव कर रहे हो; वह पूर्ण सच्चाईकी मांग कर रहा है, परंतु सच्चाईका यहां अर्थ लिया जाता है केवल भागवत प्रभावों और प्रवेगोंकी ओर उद्‌घाटन, अन्य किसी चीजकी ओर नहीं। उसकी मांगका अर्थ यह नहीं है कि तुमने कोई दोष किया है बल्कि केवल यह है कि तुम्हारे अंदरका चैत्य पुरुष तुमसे यह चाहता है कि तुम पूर्ण रूपसे एकमात्र उसीके शासनके अधीन आ जाओ जिसमें कि तुम्हारे अंदरकी सब चीजें एकमात्र भगवान्‌के लिये हो जायं। दुःखका भाव शायद तुम्हारे प्राण-पुरुषका इस मांगके लिये प्रत्युत्तर है — वह यह सोचता है कि उसने अवश्य ही कोई भूल कर दी है; परंतु इस प्रकारका दुःखका भाव आवश्यक नहीं है। प्राण-पुरुष चुपचाप चैत्य प्रक्रियाकी प्रतीक्षा कर सकता है जो ठीक समयपर आवश्यक सभी बातें पूरी कर देगी।

*

जो आग तुमने देखी वह फिर वही शुद्धि और तपस्याकी चैत्य आग थी और माला थी पूजाकी वस्तु जिसे वह श्रीमाताजीके लिये, साधकमें विद्यमान चैत्य और दिव्य चेतना (मोती और हीरा) के लिये तैयार कर रहा था। सुन्दर स्थान भी संभवतः चैत्यका ही एक प्रतीक था और कमल चैत्य चेतनाके उद्‌घाटनको सूचित करता था।

द्वादश-दल कमल और द्वादश-किरणसूर्य उस एक चीजको, भगवती मांकी पूर्ण सत्य-चेतनाको सूचित करते हैं। वह उग रही थी पर आधी ही उगी थी। लाल रंग शक्तिका चिह्न था।

*

अग्नि है चैत्य अग्नि — वह भागवत उपस्थिति नहीं है। यदि चैत्य पुरुष सक्रिय और खुला हुआ हो तो दिव्य उपस्थितिका अनुभव हो सकता है — इस (उपस्थितिके अनुभव) के लिये यह आवश्यक नहीं है कि चैत्य पुरुष सामने हो। फिर वह सामने हो भी सकता है, पर भागवत उपस्थितिका अनुभव हृदयमें अभी नहीं भी हो सकता, उस समय केवल अभीप्सा, भक्ति, आत्मदानके भाव ही उदित हो सकते हैं। इन सब बातोंके विषयमें कुछ निश्चित नियम नहीं है — यह विभिन्न स्वभाववालोंमें विभिन्न रूपसे विकसित होता है।

*

यदि वह हृदयमें है तो वह चैत्य अग्नि हो सकती है — संभवतः हर्षने उस आगको नहीं उत्पन्न किया है बल्कि तुम जो इस निर्णयपर पहुंचे थे कि तुम माताजीके कार्यपर विश्वास करोगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे मन उसे समझे या न समझे, उस निर्णयने उत्पन्न किया। ऐसा मनोभाव चैत्यके उद्घाटनको बढ़ावा देता है और इसलिये तुरत चैत्य हर्ष ले आता तथा चैत्य केंद्रमें अग्नि-को प्रज्ज्वलित करता है।

★

सभी मनुष्योंमें भौतिक मनको अपने अभ्यास छोड़नेमें एक जैसी कठिनाई होती है; उसके लिये दूसरी कोई चीज इससे अधिक कठिन नहीं है। जिस आगको तुम अनुभव करते हो वह अवश्य ही वह चीज होगी जिसे हम 'अग्नि' कहते हैं, जो शुद्धिकी अग्नि है और भौतिक मनको परिवर्तित करनेके लिये उसपर क्रिया करती है।

जिस पुलको तुमने देखा वह साधारण चेतनासे आध्यात्मिक चेतनामें जानेके पथका प्रतीक था; विशाल मैदान विशाल शांति और निश्चल-नीरवताका प्रतीक था जो शांति और नीरवता भगवान्‌पर भरोसा करनेपर आध्यात्मिक चेतनाके साथ आती हैं।

जिस सुगंधको तुमने अनुभव किया वे सच्ची सुगंधें थीं पर भौतिक जगत्‌की नहीं थीं। रक्त और मांसका यह शरीर ही हम लोगोंका संपूर्ण स्वरूप नहीं है; आंखोंसे अदृश्य एक सूक्ष्म शरीर भी है और जब हमारी आंतरिक चेतना खुलती है तब हम उसके विषयमें सज्ञान होते हैं। उसी शरीरकी गहराईमेंसे वे सुगंधें आयी थीं, वे पवित्रता, प्रेम और आत्मसमर्पण (गुलाब) आदिकी गंध थीं। उसी शरीरके अंतरतम भागमें चैत्य पुरुष निवास करता है और उस समय तुम वहीं जानेका प्रयास करते हो जिस समय भीतर पैठनेकी प्रेरणा या दबाव आता है; यही कारण था कि तुमने अपनेको अधिकाधिक शांतिपूर्ण अनुभव किया, क्योंकि तुम अपनी चैत्य सत्ताकी अधिकाधिक गहराईमें पैठ रहे थे और वहींसे वे सुगंधें आयी थीं।

★

सुधा है देवताओंका खाद्य या पेय पदार्थ अमृत। योगमें इस शब्दका प्रयोग उस चीजके लिये किया जाता है जो अत्यंत गभीर एकाग्रता होनेपर ब्रह्मरंध्रसे प्रवाहित होकर जीभपर आ जाती है। परंतु यह आंतरिक सत्ताकी चीज है, अतएव यह वह चैत्य मिठास होगी जो सारे शरीरमें प्रवाहित होती है।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविंद

भारतीय राष्ट्र और उसका धर्म

यह राष्ट्र (भारत) कोई नयी जाति नहीं है जो अभी-अभी प्रकृति देवीके कारखानेसे निकली हुई कच्ची चीज हो अथवा जो आधुनिक परिस्थितियोंके द्वारा सृष्ट हुई हो। यह जाति इस पृथ्वीपर विद्यमान सभी जातियों और संस्कृतियोंमें सबसे प्राचीन है, अपनी प्राण-शक्तिमें सबसे अधिक अजेय है, अपनी महानतामें अत्यंत ऊंची, अपने जीवनमें अत्यंत गभीर और अपनी गुप्त संभावनाओंमें अत्यंत अद्‌भुत है और यह विदेशी जातियोंके रक्तसे और अन्य प्रकारकी मानव-सभ्यताओंसे शक्तिके अनेक स्रोतोंको अपने अंदर ग्रहण करनेके बाद सदाके लिये अपनेको एक सुसंगठित राष्ट्रीय एकतामें उठा ले जानेका अब प्रयास कर रही है।

*

हम विश्वास करते हैं कि भारतके लिये यह दैवनिर्दिष्ट है कि वह अपने स्वतंत्र जीवन और सभ्यताका निर्माण करे, विश्वके अग्रभागमें खड़ा होवे और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक समस्याओंको हल करे जिन्हें हल करनेमें यूरोप असफल हो गया है और फिर भी जिनके समाधानकी खोजको और उस खोजमें एक परीक्षणसे दूसरे परीक्षणमें, एक असफलतासे दूसरी असफलतामें जाते रहनेकी विक्षुब्ध अवस्थाको ही वह अपनी प्रगति समझता है। हमारे साधन उतने ही महान् होने चाहियें जितना महान् हमारा लक्ष्य है और उस लक्ष्यको सिद्ध करने योग्य साधनोंको खोज निकालने और प्रयुक्त करनेकी शक्ति केवल तभी पायी जा सकती है जब कि हम अपने अंदर ही शक्तिके शाश्वत स्रोतको खोजेंगे।

*

एकमात्र आंतरिक भाव ही रक्षा करता है, और इसलिये हृदयमें महान् और स्वतंत्र बनकर ही हम सामाजिक और राजनीतिक रूपसे महान् और स्वतंत्र हो सकते हैं।

*

मनुष्यजातिके कल्याणके लिये भारतके नवनिर्माणमें सहायक होना हमारा उद्देश्य है — राष्ट्रीयताकी इसी भावनाका हम अनुसरण और प्रचार करते हैं। हम मनुष्यजातिसे कहते है: "अब वह समय आ गया है जब तुम्हें अपना महान् पग आगे उठाना होगा और भौतिक सत्तासे ऊपर उठकर एक अधिक ऊंचे, अधिक गहरे और अधिक बड़े जीवनमें पहुंच जाना होगा। उसी महान् जीवनकी ओर मनुष्यता आगे बढ़ रही है। आज जो समस्याएं मनुष्यजातिको परेशान कर रही हैं उनका समाधान तभी किया जा सकता है जब हम अपने आंतरिक राज्यको जीत लें; प्रकृतिकी शक्तियोंको अपने जुएके नीचेले आकर अपनी सुख-सुविधा और भोगमें नियुक्त करके नहीं बल्कि बुद्धि तथा आत्माकी शक्तियोंको अधिकृत कर, मनुष्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भीतरी और बाहरी स्वतंत्रताको सुरक्षित कर तथा अपने अंतरके बलसे बाहरी प्रकृतिको जीतकर उनको हल किया जा सकता है। इस कार्यके लिये एशियाका पुनर्जागरण आवश्यक है और इसलिये एशिया जग रहा है। इस कार्यके लिये भारतकी स्वाधीनता और महानता अनिवार्य है और इसलिये वह अपने दैवनिर्दिष्ट स्वाधीनता और महानताका दावा कर रहा है। सारी मनुष्यजातिके हितके लिये यह आवश्यक है कि वह अपने दावेको पूर्ण रूपसे स्थापित और चरितार्थ करे।"

हम अपने राष्ट्रसे कहते हैं: "यह भगवान्‌की इच्छा है कि हम लोग सच्चे 'हम' बनें (सच्चे अर्थमें भारतीय) हों, 'यूरोप' न हों। हमने अपनी सत्ताके विधानसे भिन्न दूसरोंके जीवन-विधानको अपनाकर अपने जीवनको फिरसे प्राप्त करनेका यत्न किया है। हमें उस मार्गसे पीछे लौटकर स्वयं अपने अंदर अपने जीवन और शक्ति-सामर्थ्यका स्रोत ढूंढ़ निकालनेका प्रयत्न करना होगा। हमें अपने अतीतको जानना होगा और अपने भविष्यकी उद्देश्य-सिद्धिके लिये पुनः उसे पाना होगा। हमारा मुख्य कार्य है सबसे पहले अपने-आपको प्राप्त करना — अपने-को जानना और प्रत्येक चीजको भारतके शाश्वत जीवन तथा स्वभावके विधानके अनुरूप गढ़ना। इसलिये कर्मयोगीका उद्देश्य होगा अपने धर्म, समाज, दर्शन, राजनीति, साहित्य, कला, शासन-विधान, विज्ञान, चिंतन आदि जो कुछ हमारा था और है उस सबके मर्मको पढ़ना-समझना जिसमें कि हम स्वयं अपनेसे और अपने राष्ट्रसे यह कह सकें कि 'यही हमारा धर्म है।' हम पूर्ण रूपसे भारतीय विचार और ज्ञानकी दृष्टिके अनुसार यूरोपियन सभ्यताकी आलोचना करेंगे और पाश्चात्य देशकी छापको, जो हमारे ऊपर छायी हुई है, दूर झाड़ फेंकेंगे। हमें पश्चिमसे जो कुछ लेना है उसे भारतीय रूपमें लेंगे और एक बार जब अपने धर्मका पता पा जायेंगे तब केवल उसकी घोषणा ही नहीं करेंगे बल्कि उसे जीवनमें भी उतारेंगे, अपने व्यक्ति-गत जीवन, सामाजिक जीवन और राजनीतिक प्रयत्नोंमें भी उसीको अभिव्यक्त करेंगे।"

हम प्रत्येक व्यक्तिसे और विशेषकर उन युवकोंसे जो भारतका कार्य, विश्वका कार्य, भगवान्‌का कार्य करनेके लिये आज जग रहे हैं, कहते हैं: "यदि तुम अपने मनपर यूरोपियन विचारोंको अधिकार करने दो और भौतिक दृष्टिसे जीवनको देखो तो तुम इन आदर्शोंको ग्रहण नहीं कर सकते, इन्हें जीवनमें चरितार्थ करनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता। भौतिक रूपमें देखा जाय तो तुम कुछ भी नहीं हो, आध्यात्मिक दृष्टिसे ही तुम सब कुछ हो। सच पूछा जाय तो भारतीय ही ऐसे हैं जो प्रत्येक बातपर विश्वास करते हैं, प्रत्येक चीज कर डालनेका साहस कर सकते हैं, प्रत्येक चीजका बलिदान कर सकते हैं। अतएव सबसे पहले भारतीय बनो। अपने पूर्व-पुरुषोंसे प्राप्त पैतृक संपत्तिको हस्तगत करो। आर्य-विचार आर्य-साधना, आर्य-चरित्र और आर्य-जीवनको प्राप्त करो। वेदांत, गीता और योगका उद्धार करो। उन्हें केवल अपनी बुद्धि और हृद्‌गत भावोंके अंदर ही मत प्राप्त करो बल्कि उन्हें अपने जीवनमें उतारो। उनके अनुसार अपना जीवन बनाओ और फिर तुम महान् बन जाओगे, शक्तिशाली, सामर्थ्यवान्, अजेय और निर्भर बन जाओगे। न तो जीवन और न मृत्यु ही तुम्हारे लिये किसी प्रकारके भयका कारण होगी। कठिनाई और असंभावना शब्द तुम्हारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दकोषसे ही विलीन हो जायंगे। क्योंकि आत्माके अंदर ही शक्ति-सामर्थ्य नित्य, शाश्वत रूप-में विद्यमान रहता है और इसलिये तुम्हें पहले अपना निजी राज्य, आंतरिक स्वराज्य वापस जीतना होगा और उसके बाद ही तुम अपना बाहरी साम्राज्य जीत सकते हो। देखो, वहां मां निवास करती हैं और तुम्हारी पूजाकी प्रतीक्षा कर रही हैं जिसमें कि वह तुम्हें शक्ति दे सकें। उनपर विश्वास करो, उनकी सेवा करो, उनकी ही इच्छामें अपनी इच्छा मिला दो, देशके महत्तर अहंको, मनुष्यजातिकी सेवामें अपनी पृथक् स्वार्थपरताको डुबा दो। अपने अंदर विद्यमान समस्त शक्ति-सामर्थ्यके मूल स्रोतको ढूंढ़ निकालो और फिर तुम्हें बाकी सभी चीजें प्राप्त हो जायंगी – सामाजिक दृढ़ता, बौद्धिक श्रेष्ठता, राजनीतिक स्वाधीनता, मानवीय विचारधारापर अधिकार, विश्वका नेतृत्व सब कुछ अपने-आप तुम्हें हस्तगत हो जायगा।"

★

परंतु हमारे अंदर कमजोरियां हैं जो अभी बड़ी प्रबल हैं और उनका सुधार नहीं किया गया है। हमारा पहला कर्तव्य है एक निर्मम शल्यक्रियाके द्वारा इन्हें अपने हृदयोंमेंसे निकाल बाहर कर देना। यदि हमारे अंदर बौद्धिक उपकरण कम हैं तो आध्यात्मिक उपकरण भी पूर्णतासे बहुत दूर हैं। हमारे नेताओं और हमारे अनुयायियों दोनोंको एक गभीरतर साधना-की आवश्यकता है, हमारे आन्दोलनके भागवत गुरु और नायकके साथ एक अधिक सीधा संपर्क बनानेकी, एक आंतरिक उत्थानकी, हमारे विचार और कर्मके पीछे एक अधिक महान् और अधिक वेगवती शक्तिकी जरूरत है। अनुभवके बाद अनुभवोंने हमें यह स्पष्ट दिखा दिया है कि एक अनगढ़ अनैतिक यूरोपीय उमंगकी शक्तिसे हम विजयी नहीं होंगे। भारतीयो! भारतकी आध्यात्मिकता, भारतकी साधना, तपस्या, ज्ञान, शक्ति ही वह चीज है जो हमें स्व-तंत्र और महान् बनायेगी। लोग पूर्वकी इन महान् चीजोंका निम्न कोटिके अंगरेजी शब्दोंके द्वारा अनुवाद करते हैं, वे शब्द हैं 'डिसिप्लिन (अनुशासन)', 'फिलासोफी (दर्शन)' और 'स्ट्रेंग्थ (बल)'। तपस्या अनुशासनसे भी कहीं बड़ी एक चीज है; वह है आध्यात्मिक उपायोंके द्वारा अपने अंदर सृष्टि-स्थिति-संहारकारी दिव्य शक्तिको मूर्त्त करना। ज्ञान दर्शनशास्त्रसे कहीं बड़ी एक चीज है; वह है अंतःप्रेरित प्रत्यक्ष ज्ञान जो प्राचीन ऋषियोंके शब्दोंमें, आध्या-त्मिक दृष्टिकी सहायतासे प्राप्त होता है। शक्ति साधारण बलकी अपेक्षा कहीं बड़ी वस्तु है वह है विश्वव्यापी ऊर्जा जो व्यक्तिगत बना लेनेपर नक्षत्रोंको चला सकती है। बस, 'पूर्व' को ही भारतीय क्रांतिमें विजयी होना होगा। योगीको राजनीतिक नेताके पीछे खड़ा होना होगा या उसके भीतरसे अभिव्यक्त होना होगा; रामदासको शिवाजीके साथ एक शरीरमें पैदा होना होगा, मेजिनीको कावूरके साथ घुलमिल जाना होगा। बुद्धि और आत्माका, शक्ति और पवित्रताका विच्छेद भले ही यूरोपीय क्रांतिके लिये सहायक हो, पर यूरोपीय शक्तिकी सहायतासे हम (भारतीय) विजयी नहीं होंगे।

(संकलित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानं च, संध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानं, तस्मिन्, संध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदं च परलोकस्थानं च . . . .

स यत्र प्रस्वपित्यस्य लोकस्य सर्वावतो मात्रामपादाय स्वयं विहत्य, स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपित्यत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति।

न तत्र रथान . . . . . पन्थानो भवन्ति, ... न तत्रानन्दा मुदः प्रमुदो भवन्ति, ... न तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्य स्रवन्त्यो भवन्ति, अथ . . . . सृजते स हि कर्त्ता॥

स्वप्नेन शारीरमभि प्रहत्या सुप्तः सुप्तानभिचाकशीति॥

प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा।
स ईयतेऽमृतो यत्र कामं हिरण्मय पुरुष एकहंसः॥

अथो खल्वाहुः "जागृत देश एवास्यैष इति, यानि ध्येव, जागृत्पश्यति तानि सुप्त इति"; अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति॥

यह आत्मा विज्ञानमय है, हृदयके भीतर अंतर्ज्योति है; वह सत्ताकी समस्त अवस्थाओंमें समान रूपसे स्थित पुरुष है और दोनों लोकोंमें गति करता है। वह स्वप्न-पुरुष होकर इस लोकका और इसमें जो मृत्युके रूप हैं उनका अतिक्रमण कर जाता है। . . . . . .

इस पुरुषकी दो अवस्थाएं (planes) हैं यह लोक और परलोक; इसकी एक तीसरी अवस्था है जहां ये दोनों मिलती हैं, वह है स्वप्नावस्था और जब वह इन दोनोंके संधिस्थलमें स्थित होता है तो वह अपनी सत्ताकी दोनों अवस्थाओंको, अर्थात् इस लोकको और परलोकको देखता है। जब वह सोता है तो वह (विषय, शरीर, इन्द्रिय, भोग आदि) सबको अपने भीतर रखनेवाले जगत्के सारको लेता है और अपनी दीप्ति, अपनी ज्योतिके द्वारा स्वयं भग्न करता है और स्वयं निर्माण करता है; जब यह चेतनपुरुष सोता है तब वह अपनी ज्योतिसे ज्योतिर्मान होता है। वहां न मार्ग होते हैं न रथ, न हर्ष न सुख, न वापी तड़ाग नदियां होते हैं, किंतु वह अपनी ज्योतिसे उन्हें सृष्ट करता है, क्योंकि वह निर्माता है। निद्राके द्वारा वह अपने शरीरका परित्याग करता ह और न सोता हुआ उन्हें देखता है जो सोते हैं; वह अपने प्राणके द्वारा इस निम्न घोंसलेकी रक्षा करता है और वह अमृत (अमर) इस घोंसलेसे बाहर चला जाता है; अमृतस्वरूप (अमर) हिरण्मय पुरुष, एक हंस वहां चला जाता है जहां उसकी इच्छा होती है। ऐसा कहा जाता है कि उस- का केवल जागृत देश ही है, क्योंकि जिन पदार्थोंको वह जागृत अवस्था में देखता है उन्हें ही निद्राकी अवस्थामें देखता है; परंतु वहां वह स्वयं ज्योति (ज्योतिस्वरूप) होता है।

—बृहदारण्यकोपनिषद् ४-३-९,१०,११,१२,१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टं चा दृष्टं च.....अनुभूतं चाननुभूतं च, सच्चासच्च, सर्व पश्यति, सर्वः पश्यति ।।

जो देखा गया है और नहीं देखा गया है, जो अनुभूत हुआ है और जो अनुभूत नहीं हुआ है, जो है और जो नहीं है, उस सबको वह देखता है, वह सर्व है और देखता है।

—प्रश्नोपनिषद् ४-५

संपूर्ण मानव विचार, मनोमय मनुष्यका संपूर्ण अनुभव सदा स्वीकार और निषेधके बीचमें गति किया करता है; मनुष्यके मनके लिये विचारका कोई भी सत्य, अनुभवका कोई भी परिणाम ऐसा नहीं है जो स्वीकार न किया जा सकता हो और साथ ही जिसका निषेध न किया जा सकता हो। मानव मनने जीवके अस्तित्वका, विश्वके अस्तित्वका, इनमें अंतर्यामी या अंतःस्थ हर प्रकारके परमार्थ-तत्त्वका, जीव और विश्वसे परे हर प्रकारके परमार्थ-तत्त्वका निषेध किया है। परंतु साथ ही वह सदा इन्हें स्वीकार भी करता रहता है, — कभी इनमेंसे केवल किसी एकको, अथवा किन्हीं दोको अथवा सबको एक साथ। हमारे विचारशील मनको ऐसा इस कारण करना पड़ता है क्योंकि उसका स्वभाव ऐसा है कि वह संभावनाओंके साथ अज्ञानपूर्वक व्यवहार करता है; वह इन संभावनाओंमेंसे किसी एकके भी मूलमें रहनेवाले सत्यको नहीं रखता; वह इनमेंसे प्रत्येकको बारी-बारीसे अथवा अनेकोंको एक साथ लेकर उनकी थाह लेता और परीक्षा करता रहता है जिससे कि वह कदाचित् इनके संबंधमें किसी सुनिश्चित विश्वास या ज्ञानपर, किसी निश्चयपर पहुंच जाय। परंतु वह सापेक्षताओं और संभावनाओंके जगत्में रहनेके कारण किसी भी अंतिम निश्चयपर, किसी भी चरम और स्थायी दृढ़ विश्वासपर नहीं पहुंच सकता। यहांतक कि जो प्रत्यक्ष विद्यमान है, जो अनुभूत है वह भी हमारे मनको कदाचित् हो, कदाचित् न हो (**स्याद्वा, स्याद् न व**) के रूपमें जान पड़ता है; अथवा वह ऐसे "है" के रूपमें दिखायी देता है जो "संभवतः न हुआ हो" इसकी छायामें है और उसके रूपको धारण किये रहता है जो आगे नहीं होगा। हमारी प्राणसत्ता भी उसी अनिश्चयतासे पीड़ित है; उसकी दृष्टिमें जीवनका कोई भी लक्ष्य ऐसा नहीं है जिससे कि वह एक निश्चित और अंतिम संतोष प्राप्त कर सके अथवा जिसे वह स्थायी मूल्य प्रदान कर सके। हमारी प्रकृति तथ्यों और वास्तविकताओंको यथार्थ मानकर यात्रा प्रारंभ करती है; वह उनसे परे अनिश्चित संभावनाओंकी खोजमें प्रेरित की जाती है और अंतमें जिसे वह यथार्थ मानती थी उस सबमें संदेह करने लगती है। कारण वह मूलभूत अज्ञानसे यात्रा प्रारंभ करती है और सुनिश्चित सत्यको अपने अधिकारमें नहीं रखती; वह जिन सत्योंपर कुछ समयके लये विश्वास करती है वे सब उसे आगे चलनेपर आंशिक, अपूर्ण और संदिग्ध दिखायी देने लगते हैं।

प्रारंभमें मनुष्य अपने दैहिक या भौतिक मनमें निवास करता है; यह मन जो यथाभूत (actual) है, भौतिक है, विषय-रूप है उसे तथ्य रूपमें स्वीकार करता है और इस तथ्यको असंदिग्ध स्वयंसिद्ध सत्य मानता है; जो यथाभूत (actual), भौतिक विषय-रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है उसे मिथ्या या अननुभूत मानता है; वह उसे तभी पूरी तरह यथार्थ मानता है जब कि वह पदार्थ अपने-आपको यथाभूत (actual), भौतिक तथ्य, विषय-रूप बनानेमें सफल हो जाता है। दैहिक मन अपनी सत्ताको भी एक विषय-रूप तथ्य मानता है, उसे केवल इसलिये यथार्थ मानता है कि उसका अस्तित्व दृश्य और इंद्रियग्राह्य देहमें है; दूसरी समस्त विषयी-रूप (subjective) सत्ताओं और वस्तुओंको वह उसी प्रमाणके आधारपर मानता है; वह उन्हें वहींतक स्वीकार करता है जहांतक कि वे हमारी बाहरी चेतनाका विषय हो सकती हैं अथवा बुद्धिके उस भागको स्वीकार्य हो सकती हैं जो उस चेतनासे प्रदान किये गये तथ्योंपर ज्ञानका निर्माण करता है और ज्ञानके एकमात्र ठोस आधारके रूपमें उनपर निर्भर करता है। भौतिक विज्ञान इस मनोवृत्तिका विशाल विस्तार है; यह विज्ञान इंद्रियकी भूलों-को सुधारता है और जो तथ्य और पदार्थ हमारे दैहिक अंगोंसे ग्राह्य नहीं हैं उन्हें विषयके क्षेत्रमें लानेके साधनोंको खोज निकालकर भौतिक मनकी प्रारंभिक परिसीमाओंका अतिक्रमण कर जाता है। परंतु इसका भी यथार्थताका मानदंड वही है, अर्थात् जो विषय है, भौतिक यथाभूत है वही यथार्थ है; इसके लिये यथार्थताकी कसौटी यह है कि जिसे पदार्थकी विध्या-त्मक बुद्धि (positive reason) से सत्य प्रमाणित किया जाना संभव है और जिसका इंद्रियग्राह्य प्रमाण संभव है वही यथार्थ है।

परंतु मनके पास प्राण-मन या प्राणमय मन भी है जो कामनाका उपकरण है; यह यथाभूत (actual) से संतुष्ट नहीं है, यह संभावनाओंसे व्यवहार करता है; नवीनताके प्रति इसकी उत्कंठा रहती है; यह सदा कामनाकी तृप्तिके लिये, सुखभोगके लिये, अपनी शक्ति और लाभके प्रदेशकी विशाल आत्मप्रतिष्ठा और वृद्धिके लिये अनुभवकी सीमाओंको सर्वदा विस्तृत करनेकी चेष्टा करता रहता है। यह कामना करता है, सुखभोग करता है, यथाभूतों-पर अधिकार करता है; परंतु यह असिद्ध संभावनाओंके पीछे भी दौड़ता है, उन्हें समूर्त करने, उनपर अधिकार करने और उनका सुखभोग करनेके लिये भी उत्सुक रहता है। यह केवल भौतिक और विषय-रूपसे तृप्त नहीं होता; जो विषयी-रूप है, परिकल्पनात्मक है, शुद्ध आवे-गात्मक है, उनकी भी यह खोज करता है, उनमें तृप्ति और सुख चाहता है। यदि मनुष्य-के भीतर यह तत्त्व न हो तो उसका दैहिक मन अपने भीतर सीमित रहता हुआ पशुके मनके समान बना रहेगा; वह मनुष्य प्रारंभिक यथाभूत दैहिक जीवन और उस जीवनकी सीमाओं-को ही उसकी संपूर्ण संभावना स्वीकार करेगा, जड़ प्रकृति की स्थापित व्यवस्थामें गति करेगा और इससे परेके किसी भी पदार्थको नहीं चाहेगा। परंतु यह प्राणमय मन, यह अशांत प्राण-इच्छा अपनी मांगोंके साथ प्रवेश करती है और इस जड़ या बंधी-बंधायी तृप्तिको जो कि यथाभूतताकी सीमाओंके भीतर अवरुद्ध पड़ी रहती है, अव्यवस्थित कर देती है। यह कामना एवं लालसाको सदा बढ़ाती है, अतृप्ति, असंतोष, अशांतिको उत्पन्न करती है, किसी ऐसे पदार्थ-को चाहती है जो उससे अधिक है जिसे जीवन देनेमें समर्थ प्रतीत होता है; यह असिद्ध संभा-वनाओंको वास्तवता प्रदान करके भौतिक यथाभूतताके क्षेत्रको बहुत अधिक विस्तृत कर देती है; परंतु साथ ही यह सर्वदा अधिकाधिककी मांग करती रहती है, विजय करनेके लिये नवीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकोंकी खोज करती है, परिस्थितिकी सीमाओंका अतिक्रमण करने और आत्मातीत होनेके लिये अनवरत प्रेरणा करती रहती है। अशांति और अनिश्चयताके कारण इस प्राणमय मनके साथ विचारशील मन आ मिलता है; यह प्रत्येक पदार्थकी जांच-पड़ताल करता है; प्रत्येक पदार्थमें संदेह करता है; सिद्धांतोंका निर्माण करता है और उन्हें भग्न करता है; निश्चित मतोंकी रचना करता है किंतु अंतमें उनमेंसे किसीको भी निश्चित नहीं मानता; इंद्रियोंके प्रमाणको स्वीकार करता है और उसमें संदेह करता है; युक्तिद्वारा प्राप्त परिणामोंका अनुसरण करता है परंतु फिर उनसे भिन्न या सर्वथा विपरीत परिणामोंपर पहुंचनेके लिये उनका प्रत्याख्यान कर देता है, और इस प्रक्रियाको यदि अनंत कालके लिये नहीं तो अनिश्चित कालके लिये चलाता रहता है। यही मानव-विचार और मानव-प्रयासका इतिहास है; इस इतिहासमें हम देखते हैं कि सीमाओंके बंधन निरंतर टूटते रहते हैं किंतु मानव-विचार और प्रयास उन्हीं चक्करोंमें घूमते रहते हैं, ये चक्कर संभवतः बड़े होते जा सकते हैं किंतु इनके घुमावोंकी दिशा वही होती है अथवा निरंतर एक जैसी ही होती है। मानव मन सदा खोज करता रहता है, सदा सक्रिय रहता है, किंतु जीवनके लक्ष्यों और उद्देश्योंकी दृढ़तया सुस्थिर यथार्थतापर अथवा स्वयं अपनी निश्चयताओं और दृढ़ धारणाओं की सुस्थिर यथार्थतापर सत्तासंबंधी अपने विचारके किसी सुप्रतिष्ठित आधार या दृढ़ रूपपर नहीं पहुंचता।

इस सतत अशांति और कठोर परिश्रमकी अवस्थामें रहते-रहते एक ऐसा समय आता है जब कि दैहिक मन विषय-रूप निश्चयताकी अपनी दृढ़ धारणाको खो बैठता है और ऐसे अज्ञेयवादमें प्रवेश करता है जो उस मनके अपने बनाये हुए जीवन और ज्ञानसंबंधी मानदंडोंमें संदेह करता है; वह यह संदेह करता है कि क्या यह सब वास्तवमें यथार्थ है, अथवा यदि सब यथार्थ है तो क्या व्यर्थ नहीं है; प्राणमय मन, जीवनसे पराजित और विफल हुआ अथवा अपनी समस्त तृप्तियोंसे असंतुष्ट हुआ, गहरी जुगुप्सा और निराशासे अभिभूत होकर, यह अनुभव करता है कि सब व्यर्थ है, आत्माके लिये दुःखदायी है; वह जीवन और जगत्‌को मिथ्या, जिस सबकी यहां खोज की जाती है उस सबको भ्रम मानकर उसका परित्याग करनेके लिये तैयार हो जाता है। विचारशील मन प्राणमय मनके समस्त सिद्धांतोंको चकनाचूर करके यह अनुभव करता है कि सब मनकी रचनाएं हैं और उनमें कुछ भी यथार्थता नहीं है; अथवा यह अनुभव करता है कि एकमात्र यथार्थ तत्त्व कोई ऐसा तत्त्व है जो इस सत्तासे अतीत है, जो बनाया या निर्माण किया गया नहीं है, जो निरपेक्ष और सनातन है; वह सब जो सापेक्ष है, जो कालसे संबंध रखता है स्वप्न है, मनका अपभ्रम है अथवा कोई विशाल उन्माद, बृहत् विश्वीय भ्रम, प्रतीयमान सत्ताके रूपमें दृष्टिगोचर होनेवाला भ्रांतिकारी आकार है। अस्ति-तत्त्वको पराभूत करके निषेध-तत्त्व प्रबल हो जाता है और विश्वात्मक और चरम बन जाता है। इससे महान् विश्व-निषेधक धर्मों और दर्शनोंकी उत्पत्ति होती है; इससे ही ऐसे वैराग्यकी भावना उत्पन्न होती है जो कहती है कि इस जीवनमें कुछ भी प्रयोजनसिद्धि नहीं है, जो कहीं अन्यत्र (परलोकमें) निर्दोष एवं नित्य जीवनको खोजती है, अथवा ऐसी इच्छा उत्पन्न होती है जो जीवनका अचल ब्रह्ममें या आदि असत्‌में निर्वाण करना चाहती है। भारतमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके दो महानतम मनीषी बुद्ध और शंकरने जगत्-निषेधके दर्शनकी रचना करके उसे उच्चतम बल और मूल्य प्रदान किया है। इन दो दार्शनिकोंके समयके मध्यमें अथवा पीछे दूसरे पर्याप्त महत्त्वपूर्ण दर्शन प्रकट हुए हैं, जिनमेंसे कुछ व्यापक रूपमें स्वीकृत हुए हैं; ये ऐसे मनुष्योंके द्वारा रचित हुए हैं जो प्रतिभाशाली थे और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि (insight) एवं सूक्ष्म विचारशक्ति रखते थे। इन दर्शनोंने कम या अधिक शक्ति और सफलताके साथ इन दो महान् दर्शनोंके सिद्धांतोंका प्रतिवाद किया है; परंतु इनमेंसे कोई भी ऐसा नहीं है जिसका निरूपण उन दो दर्शनोंके समान शक्ति रखता हो अथवा जिसके प्रवर्तक उन दो दर्शनोंके प्रवर्तकों के समान बलशाली व्यक्तित्व रखते हों अथवा जो उनके समान गहरा और विस्तृत प्रभाव रखते हों। इन दो विलक्षण आध्यात्मिक दर्शनोंकी भावनाने भारतके विचार, धर्म और सामान्य मनपर प्रचंड शक्तिके साथ प्रभाव डाला है; भारतीय दार्शनिक मनकी ऐतिहासिक परंपरामें शंकर बुद्धको ग्रहण करते हैं, उन्हें पूर्ण बनाते हैं और उनका स्थान ग्रहण कर लेते हैं। सर्वत्र इन दर्शनोंकी भावनाकी छाया छायी हुई है, सर्वत्र इन तीन महान् सूत्रसिद्धांतोंकी छाप है—कर्म ही बंधनका कारण है, पुनर्जन्मके चक्रसे मुक्त होना होगा, सब कुछ माया है। इसलिये विश्व-सत्ताके निषेधके पीछे जो विचार या सत्य है उसपर नये सिरेसे दृष्टिपात करना और चाहे संक्षेपमें ही क्यों न हो, यह विचार करना आवश्यक है कि उसके जो मुख्य सिद्धांत या सुझाव हैं उनका मूल्य क्या है, किस यथार्थताके आधारपर वे खड़े हैं, युक्ति या अनुभवके लिये वे कहांतक अनुपेक्ष्य हैं। वर्तमान प्रसंगमें हमारे लिये यह पर्याप्त होगा कि हम महान् विश्व-भ्रम या मायाकी अवधारणाके चारों ओर जो मुख्य विचार एकत्रित हो गये हैं उनपर दृष्टि डालें और उनके विरोधमें उन विचारोंको उपस्थित करें जो हमारी अपनी विचारधारा और दृष्टिके अनुकूल हैं; कारण इन दोनों विचारधाराओंके मूलमें एकतम ब्रह्मका भाव विद्यमान है; परंतु इनमेंसे एक धारा इस परिणामपर पहुंचती है कि विश्व भ्रम है, दूसरी इस परिणामपर पहुंचती है कि विश्व सत्य है; एकमें मिथ्या या सत्य-मिथ्या (अनिर्वचनीय) विश्व विश्वातीत ब्रह्मपर आश्रित है, दूसरी विचारधारामें सत्य विश्व ऐसे परमार्थ-तत्त्व (ब्रह्म) पर आश्रित है जो एक साथ विश्वात्मक और विश्वातीत या निरपेक्ष दोनों है।

प्राणमयी सत्ताकी जीवनके प्रति घृणाको, प्राणमय मन की जीवनसे पराङ्मुखता (विरक्ति) को, स्वयं अपने-आपमें, प्रामाणिक या अंतिम नहीं माना जा सकता। इसका अत्यंत बलशाली प्रेरक तत्त्व है निराशाका भाव और पराजय-विफलताका स्वीकार; परंतु यह प्रेरक तत्त्व आदर्श-वादीके तद्विपरीत प्रेरक तत्त्व—दृढ़ आशा और उसकी प्राप्त करनेकी श्रद्धा और इच्छाकी अपेक्षा अधिक अंतिम होनेका दावा नहीं कर सकता। तथापि विफलताके इस भावको जो मनका समर्थन है उसमें एक विशेष प्रामाणिकता है; हमारा विचारशील मन जो यह अनुभव करता है कि मनुष्यके जितने भी प्रयत्न और पार्थिव प्रयास हैं उन सबके पीछे एक भ्रम है, मनुष्यके राजनीतिक और सामाजिक सिद्धांत भ्रम हैं, पूर्णता लानेके लिये जो उसके नैतिक प्रयास हैं वे भ्रम हैं, लोकोपकार और सेवा भ्रम हैं; कर्म, यश, शक्ति, सफलता, सिद्धि सब भ्रम हैं, इस-में एक सत्य है। मानवीय सामाजिक और राजनीतिक प्रयास सदा एक चक्रके भीतर घूमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है और किसी भी परिणामपर नहीं ले जाता; मनुष्यका जीवन और प्रकृति सदा वही, सदा अपूर्ण बने रहते हैं, और विधान (law), संस्थाएं, शिक्षा, दर्शन, नैतिकता, धार्मिक शिक्षाएं इनमेंसे कोई भी पूर्ण मनुष्यको उत्पन्न करनेमें सफल नहीं हुआ है, पूर्ण मानवजातिको उत्पन्न करनेमें तो और भी कम सफल हुआ है। इसके संबंधमें यह कहावत चरितार्थ होती है कि कुत्तेकी पूंछको चाहे जितना भी सीधा क्यों न करो वह फिर अपने स्वाभाविक टेढ़ेपनपर आ जाती है। परोपकार, लोकोपकार, सेवा, ईसाई-धर्मके प्रेम, बुद्ध-धर्मकी दयाने जगत्को अणु-मात्र भी अधिक सुखी नहीं बनाया है; ये जहां-तहां अत्यणुमात्र क्षणिक चैन प्रदान करते हैं, जगत्की विशाल दुःखाग्निपर कुछ बूंदें डाल देते हैं। सभी लक्ष्य अंतमें क्षणिक और व्यर्थ होते हैं, समस्त सफलताएं असंतोषप्रद या क्षणिक होती हैं; समस्त कर्मोंमें सफलता एवं विफलताके साथ कठोर परिश्रम करना होता है और फिर भी अंतमें कुछ भी निश्चित फल नहीं प्राप्त होता; मानवजीवनमें जो भी परिवर्तन किये जाते हैं वे केवल बाहरी रूपमें होते हैं और ये रूप एक-दूसरेके पीछे व्यर्थके चक्रमें घूमते रहते हैं; कारण जीवनका मूल स्वरूप, उसका सामान्य स्वभाव सर्वदा वही बना रहता है। पदार्थोंके संबंधकी इस दृष्टिके विषयमें यह कहा जा सकता है कि यह अतिरंजित है, परंतु इसमें एक ऐसी शक्ति है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता; इसका समर्थन मनुष्यके शताब्दियोंके अनुभवसे होता है और इसमें ऐसी सार्थकता (significance) है जो किसी-न-किसी समय मनके सामने अत्यधिक प्रभावशाली रूपमें स्वयंसिद्ध बनकर उपस्थित होती है। केवल इतना ही नहीं है, अपितु यदि यह सत्य हो कि पार्थिव सत्ताके मूलभूत विधान और मूल्य बंधे-बंधाये हैं अथवा यह कि उसे सदा बार-बार उन्हीं चक्रोंमें घूमते रहना हो,— और यह दीर्घ कालसे बहुत प्रमुख भाव रहा है, — तो अंतमें पदार्थों-संबंधी इस दृष्टिसे कठिनाईसे ही बचा जा सकता है। कारण, अपूर्णता, अज्ञान, विफलता और दुःख वर्तमान विश्व-व्यवस्थाके प्रमुख तत्त्व हैं और इनके जो विपरीत तत्त्व ज्ञान, सुख, सफलता, पूर्णता हैं वे सदा धोखा देनेवाले और संदिग्ध पाये जाते हैं। ये दो विरोधी तत्त्व जटिलताके साथ एक-दूसरेसे यहांतक मिल गये हैं कि यदि पदार्थोंकी यह अवस्था किसी महत्तर पूर्णताकी ओर गति करनेवाली न हो, यदि यह विश्व-व्यवस्थाका स्थायी स्वभाव हो तो कठिनाईसे ही इस परिणामसे बचा जा सकता है कि जो कुछ भी यहां है वह सब निश्चेतन (जड़) ऊर्जाकी सृष्टि है; हमारी स्थूल चेतना जो किसी भी लक्ष्यपर पहुंचनेमें असमर्थ है उसका कारण यही है कि यह सब निश्चेतनाकी सृष्टि है अथवा हमें इस परिणामपर पहुंचना पड़ता है कि यह जगत् जानबूझकर अग्निपरीक्षा और विफलताके क्षेत्रके रूपमें ही बनाया गया है, इससे मनुष्य तभी बच सकता है जब कि वह इसका परित्याग करके कहीं अन्य लोकमें चला जाय; अथवा इस परिणामपर पहुंचना होगा कि यह जगत् एक विशाल और लक्ष्यहीन भ्रम है।

इन तीन भिन्न-भिन्न सिद्धांतोंमेंसे दूसरा सिद्धांत, जैसा कि वह हमारे सामने उपस्थित किया जाता है, दार्शनिक तर्कके लिये कुछ भी आधार नहीं रखता; क्योंकि इसके अनुसार इस लोक और परलोकके बीचके संबंधका कोई भी संतोषप्रद संकेत हमें नहीं मिलता; ये लोक एक-दूसरेके विपरीत स्वभावके माने गये हैं परंतु इनमें क्या अनिवार्य संबंध हैं इसकी कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या नहीं की गयी है; इसके अतिरिक्त अग्निपरीक्षा और विफलताकी आवश्यकता या मूलभूत सार्थकतापर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। इसके संबंधमें यह कहा जा सकता है कि यह सब किसी स्वच्छंद द्रष्टाकी रहस्यमयी इच्छाका परिणाम है, परंतु इसका समर्थन दार्शनिक तर्कसे नहीं किया जा सकता। यह मत तभी बोधगम्य हो सकता है जब कि हम यह मानें कि अमर आत्माओंने अज्ञानमें आनेकी साहसिकताको स्वेच्छासे चुना और उनके लिये यह आवश्यक हुआ कि वे अज्ञानमय जगत्के स्वभावको सीखें जिससे कि वे उसका परित्याग कर सकें। परंतु विश्वसृष्टिका यह उद्देश्य जो कि निश्चय ही आनुषंगिक और सर्वथा स्वल्प-कालीन है, जिसका पृथ्वी एक सामयिक अनुभवक्षेत्र है, इस जटिल विश्वके विशाल और स्थायी प्रपंचकी व्याख्या नहीं कर सकता। यह उद्देश्य संतोषदायक व्याख्याका एक कार्यकर अंग बन सकता है यदि यह जगत् किसी महत्तर सृष्टिजनक उद्देश्यके कार्यान्वयनका क्षेत्र हो; यदि यह जगत् दिव्य सत्य या दिव्य संभावनाकी ऐसी अभिव्यक्ति हो जिसमें कि कुछ विशेष अवस्था-ओंमें प्रारंभिक अज्ञानको आवश्यक तत्त्वके रूपमें आना चाहिये; यदि इस विश्वकी व्याख्या ऐसी हो कि जिसमें अज्ञानका एक ऐसा दबाव हो जो उसे ज्ञानकी ओर प्रेरित करता हो, अपूर्ण अभिव्यक्तिका एक ऐसा दबाव हो जो उसे पूर्णतामें परिणत करता हो, विफलताका ऐसा दबाव हो जो अंतिम विजयमें सहायक होता हो दुःखका ऐसा दबाव हो जो सत्ताके दिव्य आनंदके उन्मज्जनको तैयार करता हो। ऐसी दशामें निराशा, विफलता, भ्रम और समस्त पदार्थोंकी व्यर्थताका भाव प्रामाणिक नहीं होगा; कारण जो पक्ष उस भावके औचित्यको सिद्ध करते प्रतीत होते हैं वे एक कठिन विकासकी केवल स्वाभाविक परिस्थितियांमात्र होंगे। संघर्ष और प्रयास, सफलता और विफलता, हर्ष और दुःखका जो दबाव है, ज्ञान और अज्ञानका जो मिश्रण है वह सब इसलिये आवश्यक है कि इसके अनुभवके द्वारा अंतरात्मा, मन, प्राण और भौतिक भाग आध्यात्मिक पूर्णत्वप्राप्त सत्ताके पूर्ण प्रकाशमें परिणत हो जाय। हमें यह ज्ञात होगा कि यह विकासमयी अभिव्यक्तिकी एक प्रक्रिया है; तब स्वच्छंद सर्वशक्तिमानके आदेश या विश्वभ्रम, अर्थहीन मायाकी हवाई कल्पनाको लानेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं होगी।

परंतु विश्वनिषेधके दर्शनका एक उच्च मानसिक और आध्यात्मिक आधार भी है और यहां हम अधिक ठोस भूमिपर हैं; कारण, यह कहा जा सकता है कि जगत् स्वरूपतः भ्रम ही है और भ्रम-रूप जगत्के रूपों और परिस्थितियोंके आधारपर बना कोई भी तर्क न तो जगत्के अस्तित्वको न्यायसंगत ठहरा सकता है और न उसे यथार्थ सिद्ध कर सकता है; केवल एक ही यथार्थ तत्त्व, परमार्थ-तत्त्व है, वह है विश्वातीत ब्रह्म। चाहे हमारा जीवन देवताओंके जीवनमें क्यों न परिणत हो जाय, अथवा चाहे कोई भी दिव्य परिपूर्णता क्यों न हो, वह, जगत्का जो मूलभूत स्वधर्म है मूलतः मिथ्यात्व उसे मिटा या हटा नहीं सकती; कारण वह परिपूर्णता भी भ्रमका केवल एक चमकदार पक्ष ही होगी। अथवा यदि जगत् सर्वथा भ्रम (मिथ्या) न हो तो भी वह निम्न कोटिका (व्यावहारिक) सत्य होगा और उसका अंत तब हो जायगा जब कि जीवात्माको यह अनुभव हो जायगा कि एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है (ब्रह्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यं), और विश्वातीत एवं अक्षर निरपेक्ष ब्रह्मके सिवाय और कुछ भी नहीं है (**नेह नास्ति किंचन**)। यदि यही एकमात्र सत्य है तो हमारे पैरोंके नीचेसे सभी भूमि निकल जाती है; दिव्य अभिव्यक्ति, अंतरात्माकी जड़तत्त्वमें विजय, उसका सत्तापर प्रभुत्व, प्रकृतिमें दिव्य जीवन यह सभी मिथ्या होगा अथवा कम-से-कम कोई ऐसा पदार्थ होगा जो पूर्णतया यथार्थ नहीं है और जो कुछ कालके लिये एकमात्र सच्चे परमार्थ-तत्त्व (ब्रह्म) पर अध्यारोपित है। परंतु यहां सब कुछ परमार्थ-तत्त्वके संबंधमें मनकी अवधारणा या मनोमय प्राणीके अनुभवपर निर्भर करता है; यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि कहांतक वह अवधारणा प्रामाणिक है अथवा कहांतक वह अनुभव, चाहे वह आध्यात्मिक ही क्यों न हो, अनुपेक्ष्य है, कहांतक वह पूर्णतया अंतिम, एकमात्र अवश्यंभावी रूपमें माने जाने योग्य है।

विश्व-भ्रमको कभी-कभी ऐसा माना जाता है कि यह कोई ऐसा पदार्थ है जो मिथ्या प्रमातृगत अनुभवका स्वभाव रखता है — यद्यपि यह मत सर्वसम्मत नहीं है; इस मतके अनुसार यह विश्व ऐसे रूपों और क्रियाओंका एक रूप है या हो सकता है जो पदार्थोंकी किसी सनातन स्वप्नावस्थामें अथवा स्वप्नावस्थामयी चेतनामें उत्पन्न होते हैं और यह शुद्ध और लक्षण-रहित (**अलक्षणं**) ज्ञानस्वरूप सत्पुरुषपर स्वल्पकालके लिये आरोपित किया जाता है; यह ऐसा स्वप्न है जो अनंतमें उत्पन्न होता है। मायावादके अनेक मत हैं जो अपने आधारमें तो समान हैं किंतु पूरी तरह और प्रत्येक स्थलपर ऐकमत्य नहीं होते। इन मायावादी दर्शनोंमें विश्वको स्वप्नकी उपमा देकर वर्णन किया गया है, परंतु यह केवल उपमा मात्र है, यह विश्व-भ्रमका आंतरिक धर्म नहीं है। हमारे प्रत्यक्ष निश्चायक (positive) दैहिक मनके लिये यह अंगीकार करना कठिन है कि हम, जगत् और जीवन अर्थात् एकमात्र ऐसे पदार्थ जिनके संबंधमें कि हमारी चेतना निश्चित प्रमाण उपस्थित करती है, असत् है, ऐसा धोखा है जिन्हें हमारी चेतनाने हमारे ऊपर आरोपित किया है। कुछ उपमाएं, विशेषकर स्वप्न और अपभ्रमकी उपमाएं इसलिये उपस्थित की जाती हैं कि जिससे यह दिखलाया जा सके कि यह संभव है कि हमारी चेतना ऐसे अनुभव करे जो उसे सत्य प्रतीत हों किंतु वे यथार्थमें बिना किसी आधारके अथवा बिना पर्याप्त आधारके सिद्ध हो जायं। जिस प्रकार स्वप्न स्वप्नद्रष्टाके लिये तबतक यथार्थ होता है जबतक कि वह सोता रहता है, परंतु जब वह जाग जाता है तो उसे मिथ्या ज्ञात होता है, इसी प्रकार जगत्के संबंधमें हमारा अनुभव हमें निश्चयात्मक और यथार्थ प्रतीत होता है, किंतु जब हम भ्रमसे पृथक् खड़े होते हैं तो हमें यह अनुभव होता है कि उसमें कुछ भी यथार्थता नहीं थी। परंतु हमारा दैहिक मन चाहे कुछ भी कहे, हमारे लिये यह अच्छा होगा कि हम स्वप्नकी उपमाको उसका पूरा मूल्य प्रदान करें और यह देखें कि विश्व-अनुभवके संबंधमें जो हमारा भाव है वह किसी रूपमें समान आधार रखता है या नहीं। कारण, जगत्के संबंधमें जो यह भाव है कि वह स्वप्न है, चाहे वह प्रमातृगत मनका स्वप्न हो अथवा जीवात्माका स्वप्न हो अथवा चाहे ब्रह्ममें स्वप्न हो, मनुष्यकी भावना और विचारधारामें बहुधा मायावादकी ओर प्रवृत्तिको ले आता है और उसे बलके साथ माननेको विवश करता है। यदि जगत्-स्वप्नके भावमें कोई प्रामाणिकता नहीं है तो हमें उसे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो युक्तियां यह सिद्ध करती हैं कि जगत् स्वप्न नहीं है उन्हें निश्चित रूपमें जानना चाहिये और इस भावको भली प्रकार मार्गसे हटा देना चाहिये। यदि इसमें कोई प्रामाणिकता है तो हमें देखना चाहिये कि वह क्या है और वह कहांतक है। यदि जगत् भ्रम है, स्वप्न भ्रम नहीं है, तो इस भेदको भी दृढ़ आधारपर उपस्थित करना चाहिये।

स्वप्न मिथ्या इस कारण प्रतीत होता है कि प्रथम वह समाप्त हो जाता है और जब हम चेतनाकी एक अवस्था (स्वप्न) से दूसरी अवस्था (जागृति) में जो कि हमारी सामान्य अवस्था है, चले जाते हैं तो उसमें फिर कोई प्रामाणिकता नहीं रहती। परंतु यह युक्ति स्वयं पर्याप्त नहीं है; कारण यह भी हो सकता है कि चेतनाकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएं हों और उनमेंसे प्रत्येक अपनी स्वतंत्र यथार्थता रखती हो; यदि पदार्थोंकी एक अवस्थाकी चेतना क्षीण हो जाती है और उसके विषय स्मृतिसे लुप्त हो जाते हैं अथवा चाहे स्मृतिमें बने हों, तो जैसे ही हम दूसरी अवस्थामें चले जाते हैं वैसे ही वह अवस्था भ्रांत प्रतीत होती है; यह पूरी तरह सामान्य स्थिति है; परंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जिस अवस्थामें हम अब आये हैं वह यथार्थ है अथवा जिस अवस्थाको हम पीछे छोड़ आये हैं वह मिथ्या है। यदि पृथ्वीकी परिस्थितियां उस अंतरात्माको जो किसी भिन्न लोकमें या चेतनाके दूसरे स्तरमें जा रहा है, मिथ्या प्रतीत होने लगी हैं तो इससे उनका मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होगा। इसी प्रकार जब हम आध्यात्मिक शांत निश्चलता या किसी निर्वाणमें पहुंचते हैं और तब हमें विश्व-सत्ता मिथ्या प्रतीत होती है, तो यह तथ्य यह नहीं सिद्ध करता कि विश्व हर समय भ्रम ही था। जो चेतना जगत्-में निवास करती है उसके लिये जगत् यथार्थ है और जो चेतना निर्वाणमें निमग्न है उसके लिये निरुपाधिक सत् (शुद्ध ब्रह्म) यथार्थ है; यही है जो स्थापित होता है। हमारे स्वप्नानुभवको मान्यता देना अस्वीकार करनेका हेतु यह है कि स्वप्न कोई ऐसा स्वल्पकाल-स्थायी पदार्थ है जिसका पूर्ववर्त्ती और उत्तरवर्तियोंसे कोई संबंध नहीं है। साधारण तौरपर भी हम यह देखते हैं कि इसमें कोई भी ऐसी संबद्धता या सार्थकता नहीं होती जिसे हमारी जागृत सत्ता समझ सके। यदि हमारे स्वप्न हमारे जागृत जीवनके समान संबद्धता या समानुगति (coherence) का एक अंग हों, जिस प्रकार हम प्रतिदिन पहले दिनकी जागृत अवस्थाके जगदनुभवको ग्रहण करते हैं और उसमें पहले दिनके अनुभवके साथ समनुगति, एक धारावाहिकता रहती है, उसी प्रकार यदि हम प्रत्येक रात्रिमें पहली रात्रिके स्वप्न-अनुभवको फिर लें, उसे आगे बढ़ायें और इनमें एक धारावाहिकता और संबद्धता हो तो स्वप्न हमारे लिये एक दूसरा ही स्वरूप ग्रहण कर ले। इसलिये स्वप्नावस्था और जागृत जीवनमें कोई तुलना नहीं है। ये अनुभव सर्वथा भिन्न स्वभाव, प्रामाण्य, व्यवस्था रखते हैं। हमारे जीवनके विषयमें यह दोष दिया जाता है कि वह क्षणिक है और बहुधा यह भी कहा जाता है कि वह आंतरिक संबद्धता (coherence) और सार्थकतासे रहित है। परंतु यह हो सकता है कि उसमें जो पूर्ण सार्थकता (significance) की कमी है वह हमारी समझकी कमी या परिसीमाके कारण हो। वस्तुतः जब हम भीतर प्रवेश करते हैं और जीवनको भीतरसे देखने लगते हैं तो वह पूर्ण संबंधित सार्थकता रखता हुआ दिखायी देता है; उस समय हम देखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि पहले जो हमें संबद्धताका अभाव प्रतीत होता था वह दूर हो जाता है और वह हमारे आंतरिक दर्शन और ज्ञानकी असंबद्धताके कारण था, लेशमात्र भी वह जीवनका स्वभाव न था। जीवनमें कुछ भी उत्तलीय असंबद्धता नहीं है; इसकी अपेक्षा हमारे मनोंको ऐसा अनुभव होता है कि जीवन दृढ़ अनुक्रमोंकी शृंखला है; यदि हम यह कहें, जैसा कि कभी-कभी कहा जाता है, ऐसा अनुभव हमारे मनका विभ्रम (delusion) है, यदि अनुक्रम हमारे मनोंका बनाया हुआ है और वस्तुतः जीवनमें नहीं है, तो इससे चेतनाकी दो अवस्थाओंका भेद दूर नहीं हो जाता। कारण हमारी प्रेक्षक आंतरिक चेतना (साक्षी चैतन्य) के द्वारा प्रदत्त संबद्धता (अनुगति) स्वप्नमें नहीं होती; वहां जो अनुक्रमका भाव होता है वह जाग्रत् जीवनके संबंधोंके अस्पष्ट एवं मिथ्या अनुकरणके कारण होता है; वह एक अवचेतन अनुकरण है; परंतु यह अनुकरणात्मक अनुक्रम छायारूप और अपूर्ण होता है, सदा भग्न होता रहता है और अनेक बार उसका सर्वथा अभाव होता है। हमें यह भी दिखायी देता है कि हमारी जागृत चेतना जीवनकी परिस्थितियोंपर जो कुछ सीमातक नियंत्रण करती है उससे स्वप्नचेतना सर्वथा रहित होती है; स्वप्न-चेतनामें अवचेतन रचनाकी प्रकृतिजात-अनैच्छिक क्रिया (Nature-automatism) रहती है, मनुष्यके विकसित मनकी सचेतन इच्छा और संगठनकारिणी शक्ति नहीं होती। इसके अतिरिक्त, स्वप्नकी क्षणिकता आमूल है और एक स्वप्न दूसरे स्वप्नसे कुछ भी संबंध नहीं रखता; परंतु जागृत जीवनकी क्षणिकता विस्तारमें है; इस बातका कोई प्रमाण नहीं है कि विश्वका जो हमें संबंधित समग्र अनुभव होता है उसमें क्षणिकता हो। हम देखते हैं कि हमारे शरीर नष्ट हो जाते हैं किंतु आत्माएं युगोंतक एक जन्मसे दूसरे जन्ममें गति करते रहते हैं। कल्पों या अनेक प्रकाश-चक्रोंके बीतनेपर नक्षत्र और ग्रहोंकी प्रलय (खंड प्रलय) हो सकती है, परंतु विश्व, विश्वसत्ता भलीभांति नित्य हो सकते हैं, कारण निश्चय ही वह क्रियाकी अविच्छिन्न धारा है। कोई भी ऐसा प्रमाण नहीं है कि जो यह सिद्ध कर सके कि जो अनंत ऊर्जा विश्वकी सृष्टि करती है उसका या उसके कर्मका अंत या आदि है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि स्वप्न जीवन और जागृत जीवनमें अत्यधिक असादृश्य या विसंवाद है और इन दोनोंमें सादृश्यकी उपमा लागू नहीं हो सकती।

परंतु यहां यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या निश्चय ही हमारे स्वप्न पूर्णतया अयथार्थ और अर्थहीन हैं? क्या यह संभव नहीं है कि वे उन पदार्थोंका जो यथार्थ हैं कोई प्रतिकृति (figure), कोई प्रतिबिंब अभिलेख (image-record) या कोई प्रतीकात्मक प्रतिलेख (symbolic transcript) या प्रतिरूप (representation) हों? इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये हमें निद्रा और स्वप्नके स्वभावकी, उनकी उत्पत्तिकी विधिकी, उनके जन्मस्थानकी परीक्षा करनी होगी। निद्रामें यह होता है कि हमारी चेतना अपने जागृत अनुभवके क्षेत्रसे हट जाती है; ऐसा माना जाता है कि निद्राकी अवस्थामें हमारी चेतना विश्राम लेती है, निलंबित (suspended) होती है अथवा प्रसुप्तावस्थामें (in obeyance)होती है; परंतु यह हमारी इस विषयसंबंधी स्थूल दृष्टि है। जो प्रसुप्त अवस्थामें है, वे जागृत क्रियायें हैं, जो विश्रामकी अवस्थामें है वह उत्तलीय मन है और हमारे दैहिक भागका सामान्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचेतन कर्म है; परंतु आंतरिक चेतना निलंबित नहीं है, वह नवीन आंतरिक क्रियाओंमें प्रवेश कर जाती है; हम उसके केवल एक ऐसे भागकी स्मृति रखते हैं जो हमारे उस भागमें घटित या अभिलिखित होता है जो उत्तलके समीप है। इस प्रकार निद्रामें उत्तलके समीप एक धुंधला अवचेतन तत्त्व विद्यमान रहता है जो हमारे स्वप्नके अनुभवोंका ग्राही, आधान (receptacle) या मार्ग है और साथ ही स्वप्नोंका निर्माता भी है; परंतु उस अवचेतन-के पीछे है अंतस्तलीय चेतन तत्त्वकी गहराई और विशालता, अर्थात् हमारी छिपी हुई अंतः-सत्ता और चेतनाकी समग्रता जो कि सर्वथा भिन्न प्रकारकी है। साधारणतया हमारे भीतर जो हमारा अवचेतन भाग है, जो चेतना और पूर्ण निश्चेतनाके बीचमें है, वह इस ऊपरी परतके द्वारा अपनी रचनाओंको स्वप्नके रूपमें भेजता है; इन रचनाओंपर आपाततः क्रमहीनता और असंबद्धताकी छाप लगी रहती है। इनमेंसे अनेक स्वप्नकी पलायनशील रचनाएं होती हैं; ये रचनाएं हमारे वर्तमान जीवनकी ऐसी परिस्थितियोंके ऊपर बनी होती हैं जो आपाततः विशृंखलित रूपमें चुनी हुई होती हैं और परिवर्तित होते रहनेवाली हवाई कल्पनाओंसे घिरी होती हैं; दूसरे स्वप्न अतीतको अथवा इसकी अपेक्षा अतीतकालीन परिस्थितियों और मनुष्योंकी स्मृतिको प्रारंभ-बिंदु बनाकर उसके आधारपर वैसे ही पलायनशील भवनोंके रूपमें बने होते हैं। अवचेतन भागसे उत्पन्न हुए दूसरे कुछ स्वप्न ऐसे होते हैं जो किसी भी ऐसे प्रारंभ या आधारके बिना केवल हवाई कल्पनामात्र होते हैं। परंतु मनोविश्लेषणकी नवीन पद्धति पहली बार हमारे स्वप्नोंको एक प्रकारकी वैज्ञानिक समझके साथ जाननेका प्रयत्न कर रही है; उसने उनमें अर्थोंकी एक प्रणालीको खोजा और स्थापित किया है; यह हमारे भीतरके पदार्थोंकी एक ऐसी कुंजी है जिसे जानना और उसका उपयोग करना हमारी जागृत चेतनाके लिये आव-श्यक है। यह पद्धति हमारे स्वप्नके अनुभवके संपूर्ण स्वभाव और मूल्यको बदल देती है। यह स्वप्नानुभवको इस प्रकार देखने लगी है मानों कोई यथार्थ वस्तु उसके पीछे है और मानो वह वस्तु कोई कम व्यावहारिक महत्त्वकी नहीं है।

परंतु अवचेतन ही एकमात्र हमारे स्वप्नोंका निर्माण करनेवाला नहीं है। अवचेतन हमारे भीतर हमारी निगूढ़ आंतरिक सत्ताका वह चरम सीमांत है जहां वह निश्चेतनसे मिलता है; यह हमारी चेतनाका वह स्तर है जहां निश्चेतन अर्द्ध-चेतन होनेके लिये प्रयास करता है; उत्तलीय दैहिक चेतना जब जागृत स्तरसे पीछे हटकर निश्चेतनकी ओर जाती है तो वह भी इस मध्यवर्ती अवचेतनामें विश्राम लेती है। अथवा एक दूसरे दृष्टिकोणसे हम यह कह सकते हैं कि हमारा यह निचला भाग निश्चेतनाका ऐसा उपकक्ष (antichamber) है जिसके मध्यसे उसकी रचनाएं हमारी जागृत या अंतस्तलीय सत्तामें उठकर आती हैं। हमारा उत्तलीय दैहिक भाग यहां सर्वप्रथम मूल कारण निश्चेतनाकी उपज है; जब हम सोते हैं और हमारा यह उत्तलीय दैहिक भाग अपनी उस जननी निश्चेतनाकी ओर प्रत्यावृत्त होता है (relapses) तो वह इस अवचेतन तत्त्व, उपकक्ष (antichamber) या अधःस्तर (substratum) में प्रवेश करता है; वहां वह अपने अनुभवोंके और मनके अतीत या वर्तमान चिर अभ्यासोंके संस्कारोंको पाता है; कारण इन सबने अपना चिह्न हमारे अवचेतन भागपर छोड़ा है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां वे पुनरावर्तनकी शक्ति रखते हैं। इस पुनरावर्तनका प्रभाव हमारी जागृत अवस्था-पर यह होता है कि यह पुनरावर्तन पुराने चिर-अभ्यासों, प्रसुप्त या दमित या निरुद्ध अंतर्वेगों, हमारी प्रकृतिके परित्यक्त तत्त्वोंके पुनराविर्भावका रूप धारण कर लेता है; अथवा वह पुनरावर्तन इन दमित, निरुद्ध या परित्यक्त, न कि मिटाये हुए, अंतर्वेगों या तत्त्वोंके किसी ऐसे अनूठे प्रच्छन्न या सूक्ष्म परिणामका रूप धारण कर लेता है जिसे सरलतासे पहचाना नहीं जा सकता। स्वप्नकी चेतनामें जो दिखायी देता है वह एक आपाततः काल्पनिक निर्माण होता है, दबे हुए संस्कारोंके ऊपर या चारों ओर आकृतियों और क्रियाओंका एक मिश्रण होता है; इन आकृतियों और क्रियाओंमें एक अर्थ होता है किंतु उसे हमारी जागृत बुद्धि ग्रहण नहीं कर पाती, क्योंकि अवचेतनाकी अर्थ-प्रणालीमें पहुंचनेका सूत्र उसके पास नहीं है। कुछ समय-के अनंतर यह अवचेतन क्रिया फिर पूर्ण निश्चेतनामें डूबती प्रतीत होती है और हम इस अवस्थाको स्वप्नरहित गहरी निद्रा कहते हैं; वहांसे हम फिर स्वप्नकी छिछली अवस्थामें अथवा जागृत उत्तलपर आ जाते हैं।

परंतु वस्तुतः, जिसे हम स्वप्नरहित निद्रा कहते हैं, उसमें हम अवचेतनके गभीरतर और घनतर (denser) परतमें चले जाते हैं; इस अवस्थामें चेतना इतनी अधिक अंतर्ग्रस्त, निमज्जित या अंधकारावृत्त, मंद और बोझिल होती है कि वह अपनी रचनाओंको उत्तलपर लानेमें असमर्थ होती है: उस अवस्थामें हम स्वप्न तो देखते हैं किंतु इन अधिक अस्पष्ट स्वप्न-आकृतियोंको अवचेतनके अभिलेखन परतमें ग्रहण करने या बनाये रखनेमें असमर्थ होते हैं। अथवा इसकी अपेक्षा, यह हो सकता है कि हमारे मनका जो भाग शरीरके सो जानेपर सक्रिय रहता है वह हमारी सत्ताके आंतरिक प्रदेशोंमें, अर्थात् अंतस्तलीय मानसिक, अंतस्तलीय प्राणिक, सूक्ष्म दैहिक प्रदेशोंमें प्रवेश कर जाता है और वहां हमारे उत्तलीय भागोंके साथ हर प्रकारके सक्रिय संबंधको खो बैठता है। जबतक हम इन प्रदेशोंकी बहुत अधिक गहराइयों में नहीं जाते और उत्तलीय भागोंकी निकटवर्ती गहराइयोंमें होते हैं तो उत्तलीय अवचेतन जो कि हमारी निद्रित-जागृत अवस्था है, इन निकटवर्ती गहराइयोंमें हुए अनुभवके कुछ अंशका अभिलेख कर लेता है; परंतु वह यह अभिलेख स्वयं अपनी ऐसी प्रतिलिपि (transcription) में करता है जो बहुधा स्वाभाविक असंबद्धता (incoherence) से विकृत होती है और सर्वदा, जब कि अत्यंत संबद्ध होती है तब भी, जागृत अनुभवके जगत्से ली हुई आकृतियोंका रूप धारण कर लेती है। परंतु यदि हम अधिक गहराईमें भीतर चले जाते हैं तो वहां कोई अभिलेख नहीं होता अथवा यदि होता है तो उसे पहचाना नहीं जा सकता और हम इस भ्रममें होते हैं कि वह स्वप्नरहित अवस्था है; परंतु आंतरिक स्वप्न-चेतनाकी क्रिया वर्तमानमें नीरव और निष्क्रिय अवचेतन उत्तलके पर्देके पीछे होती ही रहती है। यह निरंतर होती रहनेवाली स्वप्न-क्रिया हमें उस समय प्रकाशित होती है जब कि हम अधिक भीतरमें सचेतन होते हैं; कारण, तब हमारा संबंध बोझिलतर और गंभीरतर अवचेतन अधःस्तरसे होता है; तब हम भीतरी स्वप्न-क्रियाके ही समय अथवा जागनेपर फिर पीछेकी ओर लौटते हुए या उसकी स्मृति रखते हुए उसे जान सकते हैं जो उस समय घटित हुआ था जब कि हम इन चेतनाहीन गहराइयोंमें डूबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। यह भी संभव है कि हम अपने भीतरके गभीरतर अंतस्तलीय पुरुषों (selves) की चेतना प्राप्त करें; तब हमें उन अनुभवोंका भी ज्ञान होता है जो हमारी सत्ताके ऐसे दूसरे स्तरोंपर अथवा यहांतक कि अतिभौतिक लोकोंमें होते हैं और जिनमें गुह्यतया प्रवेश करनेका अधिकार हमें निद्रा प्रदान करती है। ऐसे अनुभवोंका प्रतिलेख (transcription) हमारे पास आता है: परंतु यहां जो प्रतिलिपिक है वह अवचेतना नहीं है, वह अंतस्तलीय चेतना है, एक महत्तर स्वप्न-निर्माता है।

इस प्रकार यदि अंतस्तलीय पुरुष हमारी स्वप्नचेतनामें सम्मुखीन हो जाता है तो कभी-कभी अंतस्तलीय बुद्धिकी क्रिया होने लगती है; ऐसी दशामें स्वप्न विचारोंकी एक धाराका रूप धारण कर लेता है; अनेक बार स्वप्न कोई विलक्षण या स्पष्ट आकार धारण कर लेता है; हमारी जागृत चेतना जिन समस्याओंको न सुलझा सकी थी वे सुलझ जाती हैं; भविष्य-के लिये चेतावनियां, पूर्वाभास (premonitions) संकेत मिल जाते हैं; सामान्य अवचेतन असंबद्ध स्वप्नोंका स्थान तथ्यानुकूल स्वप्न ग्रहण कर लेते हैं। इस अवस्थामें ऐसे प्रतीकात्मक चित्रोंकी रचना भी आ सकती है जिनमेंसे कुछ मानस स्वभावके और कुछ प्राणिक स्वभावके होते हैं। मानस स्वभावके चित्र अपने आकारोंमें सुनिश्चित और अर्थमें स्पष्ट होते हैं। प्राण-मय स्वभावके चित्र बहुधा जटिल होते हैं और हमारी जागृत चेतनाके लिये दुर्बोध होते हैं, परंतु यदि हम इनके रहस्य-सूत्रको पकड़ सकें तो ये अपने निजी अर्थको और अपनी अनोखी संबद्ध प्रणालीको प्रकट करते हैं। अंतमें, हमारे पास उन घटनाओंके अभिलेख आ सकते हैं जिन्हें हमने अपनी सत्ताके या विश्वसत्ताके उन स्तरों या लोकोंमें देखा या अनुभव किया है जिन-में कि हम निद्राकी अवस्थामें प्रवेश करते हैं; प्रतीकात्मक स्वप्नोंके समान ये अभिलेख, कभी-कभी हमारे अपने भीतरी या बाहरी जीवनसे या दूसरोंके जीवनसे बलशाली संबंध रखते हैं, हमारी अपनी या दूसरोंकी मानस सत्ता और प्राणिक सत्ताके तत्त्वोंको प्रकाशित करते हैं अथवा उनपर ऐसे प्रभावोंको प्रकट करते हैं जिनके संबंधमें हमारी जागृत चेतना सर्वथा अज्ञ होती है। परंतु कभी-कभी वे ऐसा कोई संबंध नहीं रखते और चेतनाके दूसरे ऐसे गठित स्तरों (लोकों) के केवल अभिलेख मात्र होते हैं जो हमारी भौतिक सत्तासे स्वतंत्र होते हैं। हमारी अत्यंत साधारण निद्राकी दशामें जो स्वप्न हमें दिखायी देते हैं उनमेंसे अधिकतर अव-चेतन स्तरके होते हैं और प्रायः उन्हें ही हम स्मरण रखते हैं; परंतु कभी-कभी अंतस्तलीय स्वप्न-निर्माता हमारी निद्रा-अवस्थाकी चेतनापर इतना गहरा प्रभाव डालता है कि उसकी क्रियाओंकी छाप हमारी जागृत स्मृतिपर बन जाती है। यदि हम अपनी आंतरिक सत्ताका विकास करें, साधारण मनुष्य जिस प्रकार रहते हैं उसकी अपेक्षा अधिक अंतर्मुखी होकर रहें, तब हमारी वर्तमान स्थिति बदल जाती है और एक विशालतर स्वप्न-चेतना हमारे सामने प्रकट हो जाती है; तब हमारे स्वप्न अवचेतन स्वभावके न रहकर अंतस्तलीय स्वभाव ग्रहण कर सकते और सच्चे और अर्थपूर्ण हो सकते हैं।

यह भी संभव है कि हम निद्राकी अवस्थामें पूर्णतया सचेतन बने रहें और अपने स्वप्न-अनुभवकी आदिसे अंततककी समस्त भूमिकाओंका अथवा उनमेंसे अनेकोंका अनुसरण कर सकें;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा देखा गया है कि तब हमें अपने विषयमें ऐसा अनुभव होता है कि हम चेतनाकी एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें जाते हुए स्वल्प कालके लिये ज्योतिर्मय और शांतिपूर्ण स्वप्नरहित विश्राममें जाते हैं; यह स्वल्पकालीन विश्राम ही जागृत प्रकृतिकी ऊर्जाओंका सच्चा पुनःस्थापनकर्त्ता (restorer) है; इसके अनंतर हम उसी मार्गसे जागृत चेतनामें आ जाते हैं। इस प्रकार जब हम एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें जाते हैं तो सामान्यतया पहली अवस्थाके अनुभवोंको हम भूलते जाते हैं; जब वहांसे हम फिर वापस लौटते हैं तो उन्हीं अनुभवोंकी स्मृति रखते हैं जो अधिक स्पष्ट होते हैं अथवा जागृत उत्तलके समीपतम होते हैं। परंतु इसमें सुधार किया जा सकता है; इससे अधिककी स्मृति रखना संभव है; यह भी संभव है कि ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली जाय कि प्रत्येक अवस्थाकी स्मृति रखते हुए एक स्वप्नसे दूसरेमें, एक अवस्थासे दूसरीमें पीछेको चला जाय और संपूर्ण दृश्य एक बार फिर हमारे सामने उपस्थित हो जाय। निद्रा-अवस्थाके जीवनके सुसंबद्ध ज्ञानको प्राप्त करना कठिन है और उसे सहज-स्वाभाविक बनाये रखना और भी अधिक कठिन है, परंतु संभव अवश्य है।

हमारी अंतस्तलीय सत्ता (self) हमारी उत्तलीय दैहिक सत्ताके समान, निश्चेतनकी ऊर्जाकी सृष्टि नहीं है; यह उन दो चेतनाओंका मिलन-स्थल है जिनमेंसे एक नीचेसे विकासके द्वारा उन्मज्जित होती है और दूसरी ऊपरसे अंतर्भावको लिये उतरी है। इस अंतस्तलीय सत्ताके अंतर्गत आते हैं हमारा आंतरिक मन, हमारी आंतरिक प्राणमयी सत्ता, आंतरिक या सूक्ष्म दैहिक सत्ता जो हमारी बाहरी सत्ता और प्रकृतिसे विशालतर है। हमारी उत्तलीय सत्तामें जो कुछ भी ऐसा है जो प्रथम अवस्थावाली विश्व-ऊर्जाकी रचना नहीं है, अथवा जो हमारी उत्तलीय चेतनाकी स्वाभाविक परिवर्द्धित क्रिया नहीं है, अथवा बाहरी विश्व-प्रकृतिके अभिघातोंके प्रति उत्तलीय चेतनाकी प्रतिक्रिया नहीं है, उस सबका छिपा हुआ मूल उपादान यह आंतरिक सत्ता ही है; और यहांतक कि इस रचनामें, इन क्रियाओंमें, इन प्रतिक्रियाओंमें भी अंतस्तलीय सत्ता भाग लेती है और उनपर प्रचुर प्रभाव डालती है। हमारी उत्तलीय सत्ता विश्वसे मन और इंद्रियोंके द्वारा अधिकांशमें परोक्ष (indirect) संबंध ही रखती है; इससे भिन्न, हमारी अंतस्तलीय सत्तामें एक ऐसी चेतना है जो विश्वके साथ साक्षात् संबंध करनेकी शक्ति रखती है। यहां (अंतस्तलीय सत्तामें) हैं आंतरिक इंद्रियां, अर्थात् अंतस्तलीय दृष्टि (चक्षु), स्पर्शेंद्रिय, श्रवणेंद्रिय (श्रोत); परंतु ये सूक्ष्म इंद्रियां पदार्थोंके ज्ञानको बाहरसे अंतःसत्ताके पास ले जानेवाली होनेकी अपेक्षा अंतःसत्ताके पदार्थोंकी प्रत्यक्ष चेतना (प्रत्यक्ष ज्ञान) करानेवाले द्वार हैं; अंतस्तलीय सत्ता अपने ज्ञानके लिये इंद्रियोंपर निर्भर नहीं करती; वह पदार्थोंका जो सीधे अनुभव करती है उसे ये केवल एक रूप प्रदान करती हैं। जागृत मनकी दशामें जैसे स्थूल इंद्रियां पदार्थोंके रूपोंको मनके सामने ले जाकर उपस्थित करती हैं जिससे कि मन उन्हें प्रमाण रूपमें ग्रहण करके अथवा उन्हें परोक्ष रचनात्मक अनुभवके लिये प्रारंभबिंदु या आधार बना सके, ऐसा ये सूक्ष्म इंद्रियां नहीं करतीं। अंतस्तलीय सत्ताको यह अधिकार है कि वह वैश्व चेतनाके मनोमय, प्राणमय और सूक्ष्म-भौतिक स्तरों (लोकों) में प्रवेश कर सके; वह भौतिक स्तर और भौतिक जगत्में सीमित नहीं है। अंतर्भावकी अवस्थामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे अवतरण करते समय मार्गमें जिन लोकोंकी सृष्टि हुई है और निश्चेतनासे अतिचेतनाकी ओर पुनः आरोहणके प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये जो अवतरण अवस्थाके लोकोंके अनुरूप स्तर या लोक उत्पन्न हुए होंगे या निर्मित हुए होंगे, उनके साथ संसर्ग रखनेके साधन अंतस्तलीय पुरुष (सत्ता) के पास हैं। हमारा मन और हमारी प्राणमयी सत्ता जब उत्तलीय क्रियाओंसे प्रत्याहृत होते हैं, चाहे वे निद्राके द्वारा हों या अंतर्मुखी एकाग्रताके द्वारा हों अथवा चाहे भीतरकी समाधिमें निमग्नताके द्वारा हों, वे आंतरिक सत्ताके इस विशाल प्रदेशमें ही प्रवेश करते हैं।

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी जागृत अवस्था हमारी परिसीमित उत्तलीय सत्ताके नीचेसे या पीछेसे उठते हुए अंतःप्रेरणाओं, अंतर्भासों, विचारों, इच्छा-रूप सुझावों, इंद्रियज्ञान-रूप सुझावों, कर्मके प्रति प्रेरणाओंको प्राप्त करती है; परंतु वास्तवमें वह इन सबको अंतःतलीय सत्तासे प्राप्त करती है, उनके सच्चे उद्गम स्थलके ज्ञानसे शून्य होती है और अंतस्तलीय सत्ताके साथ अपने संबंधको नहीं जानती। समाधिके समान निद्रा भी हमारे लिये अंतस्तलीय सत्ताके द्वारको खोल देती है; कारण समाधिके समान निद्रामें भी हम परिसीमित जागृत व्यक्तित्वके पीछे चले जाते हैं और इस पर्देके पीछे ही अंतस्तलीय सत्ता अपना अस्तित्व रखती है। परंतु हम अपने निद्रानुभवके अभिलेखोंको स्वप्नके द्वारा और स्वप्नमें आये हुए आकारोंके द्वारा प्राप्त करते हैं; हम उन्हें उस अवस्थामें प्राप्त नहीं करते जिसे आंतरिक जागरण कहा जा सकता है और जो समाधि अवस्थाका एक ऐसा रूप है जो वहां सहज भावसे अनुभव किया जा सकता है; हम निद्रानुभवके अभिलेखोंको उन अतिसामान्य स्पष्ट दर्शनोंमें और दूसरे अधिक ज्योतिर्मय और ठोस संचार-प्रकारोंमें भी प्राप्त नहीं करते जिनका विकास हमारी आंतरिक अंतस्तलीय ज्ञानशक्ति(cognition)तब करती है जब कि वह जागृत सत्ताके साथ चिर-अभ्यस्त या कादाचित्क संबंध करती है। हमारा अवचेतन भी पदके पीछे विद्यमान सत्ताका ही भाग है; अपने उस अनुबंध (annexe) अवचेतनके साथ अंतस्तलीय आंतरिक वस्तुओंका और अतिभौतिक अनुभवोंका द्रष्टा है; उत्तलीय अवचेतना तो केवल लिपिकार है। यही कारण है कि उपनिषद् अंतस्तलीय सत्ताको स्वप्न-पुरुष नाम देती है, क्योंकि सामान्यतया स्वप्नों, अंतर्दर्शनों, आंतरिक अनुभवकी समाहित अवस्थाओंमें हम उसमें प्रवेश करते हैं और उसके अनुभवोंके अंश होते हैं; इसी प्रकार उपनिषद् अतिचेतनको सुप्त पुरुष कहती है क्योंकि जब हम इस अतिचेतनामें प्रवेश करते हैं तो सामान्यतया समस्त मानसिक या ऐंद्रियक अनुभव बंद हो जाते हैं। कारण, अधिक गहरी समाधिमें, जिसमें कि अतिचेतनाका स्पर्श हमारे मनको डुबा देता है, उससे कोई अभिलेख अथवा उसकी अंतर्वस्तुओंका कोई प्रतिलेख सामान्यतया हमारे पास नहीं पहुंच सकता; जब हम साधनाके द्वारा कोई विशेष या असाधारण उन्नति कर लेते हैं किसी अतिसामान्य अवस्थामें पहुंचते हैं, अथवा हमारी सामान्यताकी सीमा टूट जाती है या उसमें दरार पड़ जाती है, तो तब हम अतिचेतनाके संदेशों या स्पर्शोंके प्रति उत्तल-पर सचेतन हो सकते हैं। परंतु स्वप्नावस्था, सुषुप्ति-अवस्था इन आलंकारिक नामोंके होते हुए भी, चेतनाकी इन दोनों अवस्थाओंका क्षेत्र स्पष्टतया यथार्थताका क्षेत्र माना जाता था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह यथार्थताका क्षेत्र उस जाग्रत् अवस्थाके क्षेत्रसे कम यथार्थ नहीं माना जाता था जिसमें कि हमारी प्रत्यक्ष करनेवाली चेतनाकी क्रियाएं भौतिक पदार्थोंके और भौतिक विश्वके साथ हमारे संयोगोंके अभिलेख (record) या प्रतिलेख (transcript) हैं। निःसंदेह, तीनों ही अवस्थाएं भ्रमकी श्रेणीमें लायी जा सकती हैं; उनके संबंधमें जो हमारे अनुभव हैं उन सबको एक साथ भ्रांत चेतनाकी रचनाएं कहा जा सकता है; यह कहा जा सकता है कि हमारी जागृत अवस्था हमारी स्वप्न या सुषुप्ति अवस्थासे कम भ्रांत नहीं है क्योंकि एकमात्र सच्चा सत्य या यथार्थ यथार्थता है अव्यवहार्य आत्मा या अद्वैत जिसे कि वेदांतने आत्माकी तुरीय अवस्था कहा है। परंतु समान रूपमें यह भी कहा जा सकता है कि ये एक ही परमार्थ-तत्त्वकी ऐसी तीन भूमिकाएं या चेतनाकी ऐसी तीन अवस्थाएं हैं जिनमें कि आत्मानुभव और विश्वानुभवकी तीन विभिन्न श्रेणियोंके साथ हमारा संपर्क समूर्त्त होता है।

यदि यह स्वप्न-अनुभवका सच्चा वर्णन है तो यह नहीं कहा जा सकता कि स्वप्न मिथ्या पदार्थोंके केवल मिथ्या आकार हैं जिन्हें स्वल्प कालके लिये हमारी अर्ध-चेतनापर इस प्रकार आरोपित किया गया है कि वे यथार्थ प्रतीत होते हैं; इसलिये 'विश्व भ्रम है' इस मतके समर्थनमें जो स्वप्नकी उपमा दी जाती है वह ठीक नहीं है। तथापि इस मतके समर्थनमें यह कहा जा सकता है कि हमारे स्वप्न स्वयं यथार्थ वस्तुएं नहीं हैं अपितु यथार्थ वस्तुके प्रतिलेख (transcript) हैं; प्रतीक-प्रतिरूपों (symbol-images) का समूह हैं; इसी प्रकार विश्वके संबंधमें हमारा जागृत अनुभव भी कोई यथार्थ वस्तु नहीं है अपितु यथार्थ वस्तुका केवल एक प्रतिलेख (transcript) मात्र है, प्रतीक-प्रतिरूपोंके समूहकी एक शृंखला है। यह सर्वथा सत्य है कि मुख्यतया हम भौतिक विश्वको केवल उन प्रतिरूपों (images) के समूह के द्वारा देखते हैं जो हमारी इंद्रियोंपर अंकित या आरोपित होते हैं और यहांतक यह कथन न्यायसंगत है; यह भी अंगीकार किया जा सकता है कि एक विशेष अर्थमें और एक विशेष दृष्टिकोणसे हमारे अनुभव और क्रियाएं एक ऐसे सत्यके प्रतीक कहे जा सकते हैं जिसे कि हमारे जीवन अभिव्यक्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं किंतु वर्तमानमें केवल आंशिक सफलता और अपूर्ण संबद्धताके साथ। यदि यही सब कुछ हो तो यह कहा जा सकता है कि अनंतकी चेतना जो अपने स्वप्नमें जीवात्मा और पदार्थोंको देख रही है उसका यह स्वप्न-अनुभव ही जीवन है। परंतु यद्यपि पदार्थों और विश्वके संबंधमें हमारा प्रथम अनुभव इंद्रियोंके द्वारा गृहीत प्रतिबिंबों या प्रतिरूपोंका बना हुआ है, तथापि ये प्रतिबिंब चेतनाके भीतर विद्यमान एक स्वतःचेष्ट अंतर्भासके द्वारा पूर्ण, युक्तिसंगत और क्रमबद्ध किये जाते हैं; यह अंतर्भास प्रतिबिंबका बिंब पदार्थके साथ सीधा संबंध जोड़ता है और पदार्थका स्पष्ट अनुभव कर लेता है; इस प्रकार हम इंद्रियोंके द्वारा गृहीत प्रतिबिंबोंके द्वारा सच्चे पदार्थके केवल अनुवाद या प्रतिलेखको ही नहीं पढ़ रहे हैं अपितु उनके द्वारा सच्चे पदार्थको देख रहे हैं। अनभवकी यह पर्याप्तता बुद्धिकी क्रियासे और भी अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि यह इंद्रियोंके द्वारा गृहीत पदार्थोंके नियमोंकी गहराईमें जाती है और उन्हें समझती है और इंद्रियद्वारा गृहीत प्रतिलेखका सूक्ष्मताके साथ प्रेक्षण कर सकती है और उसकी भूलोंको सुधार सकती है। इसलिये हम इस परिणामपर पहुंच सकते हैं कि हम अपने प्रतिबिंब-रूप इंद्रिय-अभिलेखके द्वारा अंतर्भास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदिति सह भारत माता

पुरानी फाइलें

हमारे पास सन् १९४४, ४५, ४६, ४८, ४९ तथा ५० से ५९ सालतक सभी वर्षोंकी कुछ अजिल्द या सजिल्द फाइलें हैं। जो सज्जन इन्हें लेना चाहेंगे उन्हें हम

३१ दिसंबर १९६४

तक निम्नांकित रियायती मूल्यपर दे सकते हैं।

मूल्य	अजिल्द	रु. ४.००
	सजिल्द	रु. ६.००

डाक खर्च अलग

स्कूल, कालेज, पुस्तकालय, वाचनालय

आदि सार्वजनिक संस्थाओंको हस और भी अधिक रियायत दे सकते हैं।

कृपया पत्रव्यवहार करें।

अदिति कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम पो. आ.

पांडिचेरी–२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक कुतुबमीनार और चूना

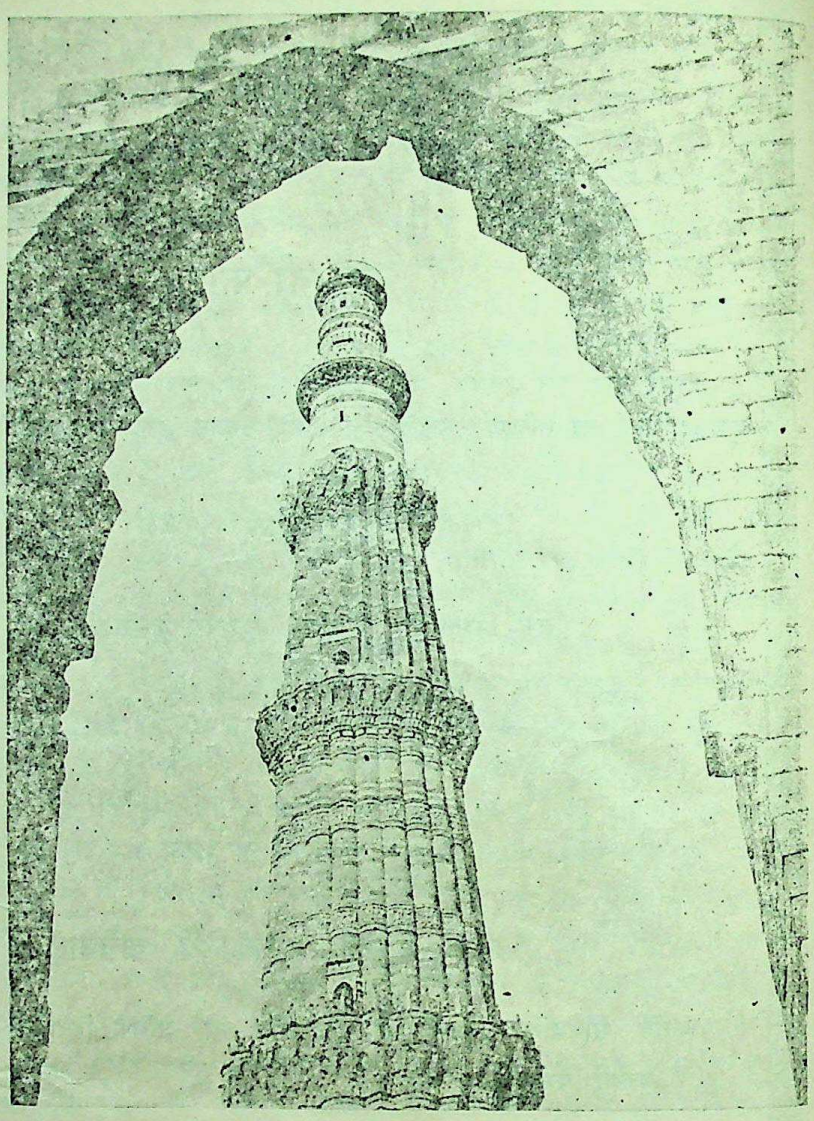

कुछ लोग कहते हैं कि कुतु[illegible] को पृथ्वीराज चौहानने बनवाना आरंभ किया था जिससे कि उनकी प्रिय पुत्री रोज उसके ऊपर चढ़कर पुण्य-सलिला यमुनाके दर्शन कर सके।

दूसरोंका कहना है कि पृथ्वीराजके चाचा विग्रहराजने इसे बनवाना शुरू किया था जिससे कि वह उसपरसे अपनी शत्रु-सेना-की गतिविधिका निरीक्षण कर सकें।

प्रचलित मत यह है कि कुतुबुद्दीनने एक विजय-स्तंभके रूपमें इसे बनवाना प्रारंभ किया और पीछे अल्तमशने इस २३४ फुट ऊंची कुतुबमीनारको पूरा करवाया।

किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि जगत्की यह सबसे ऊंची प्राचीन मीनार इस कारण सात सौ वर्षोंसे भी अधिक समयतक प्रकृतिके थपेड़ोंको सह चुकी है और आज भी सुदृढ़ बनी हुई है कि इसके निर्माणमें चूनेके मसालेका प्रयोग किया गया था।

गत ३५ वर्षों से चूने के निर्माता और विक्रेता

एस. एन. सण्डरसन एंड कंपनी

१ देशबंधु गुप्ता रोड, पोस्ट बक्स नं० ८५

नई दिल्ली

शाखाएं :—दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, वाराणसी, इलाहाबाद, देहरादून, मेरठ, आगरा, कलकत्ता, रानीगंज, पटना, झरिया, मैहर, सतना, कटनी, जुकेही, बंबई और पांडीचेरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि तुम्हारा आत्मदान पूर्ण हो और तुम पूर्णतः सच्चे हो तो तुम्हारा आध्यात्मिक लक्ष्यतक पहुंचना सुनिश्चित है।

—श्रीमां

फोन : 33.1998 तार : GENERIMP

केशरीचंद सुमेरमल

जनरल मर्चेंट व कमिशन एजेन्ट

८ नारायणप्रसाद बाबू लेन, कलकत्ता–७.

कलकत्तेका सर्वश्रेष्ठ

'ऋषिराज' ब्राह्मी आंवला

केश तैल

"दिमागी काम करनेवालोंको इसका अवश्य उपयोग करना चाहिये। यह जड़ी-बूटियोंसे बना मनोहर और गुणाकारी केश तैल है।"

चरक केमिकल वर्क्स

प्राइवेट लिमिटेड

१६१/१ महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता–७.

The spiritual destiny always stands–it may be delayed or seem to be lost for a time, but it is never abolished.

—SRI AUROBINDO

With the Compliments of :

DINDAYAL RAMROOP

r5/1 Sovaram Bysack Street,

CALCUTTA-7

Phone : 33-1682

CC-0. In Public Domain. Sri Muthulakshmi Research Academy Collection, Chennai.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

..... कुछ लोग क

भगवान्‌की इच्छा अभिव्यक्त होनेकी है, निष्क्रियता और अखंड निश्चल-नीरवतामें एकदम पीछे हटकर उसीमें बने रहनेकी नहीं है; यदि भागवत चेतनाका अर्थ वास्तवमें अनभिव्यक्त आनंदकी निष्क्रियता होता तो फिर कभी कोई सृष्टि हुई ही नहीं होती।

—श्रीमां

ओनेस्टी राइस मिल्स

जामुरिया (वेस्ट बेंगाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

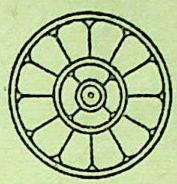

One of the chief obstacles to the establishment of a progressive harmony is our eagerness to prove to an opponent that he is wrong and we are right.

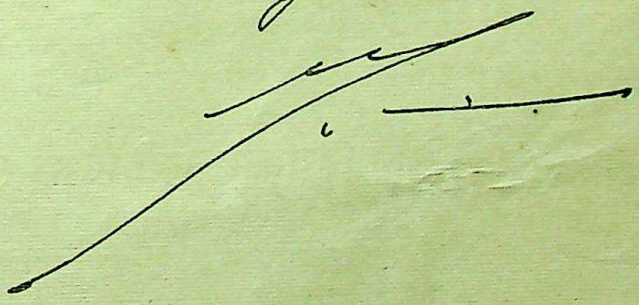

प्रगतिशील सामंजस्यके स्थापित होनेमें सबसे प्रधान बाधा यह है कि हम अपने विपक्षीके सामने यह सिद्ध करनेके लिये व्यग्र रहते हैं कि हम ठीक हैं और वही गलत है।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लोग व

हिंदीमें

श्रीअरविंदका विशद जीवन-चरित

श्रीअरविंद, श्रीमां और आश्रमके अनेक चित्रों सहित

श्रीअरविंद-चरितामृत

लेखक—डा. भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

मूल्य रु. ५.००

मिलने के पते :—

श्रीअरविंद सोसायटी,
२, बाबूराम रोड,
कलकत्ता—१

श्रीअरविंद सोसायटी
श्रीअरविंद आश्रम
पांडिचेरी—२

"खोजमें एक आनंद है, मतीक्षामें एक आनंद है,
कमसे कम उतना ही बड़ा आनंद जितना कि प्राप्तिमें।"

श्रीमाताजीकी नवीनतम पुस्तक

श्रीमाताजीके वचन

[एकमात्र मैत्र और हिन्दीमें प्राप्य]

मूल्य रु. २.००

सजिल्द रु. २.५०

श्रीअरविंद आश्रम; पांडिचेरी—२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा साहित्य

१६५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

શિક્ષણ અને સાહિત્ય

सा विद्या या विमुक्तये

સંપાદકમંડળ

જુગતરામ દવે
ગોપાલદાસ પટેલ
ઠાકોરભાઈ દેસાઈ
મણિભાઈ દેસાઈ
મગનભાઈ દેસાઈ (તંત્રી)
જીવણજી દેસાઈ (વ્યવસ્થાપક)

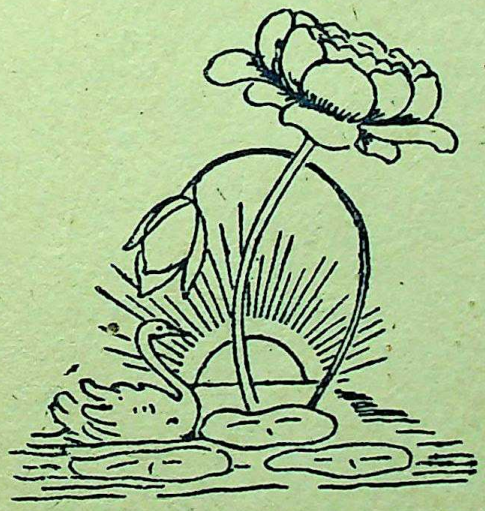

વર્ષ ૧૨ અંક ૯

સપ્ટેમ્બર નવજીવન, અમદાવાદ ૧૯૫૩

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

શિક્ષણ અને સાહિત્ય

સપ્ટેમ્બર, ૧૯૫૩

વર્ષ ૧૨ અંક ૯

અનુક્રમણિકા

વિષય	લેખક	પૃષ્ઠ
સંતોના અનુજ	સ્વામી આનંદ	૨૫૭
ઋદ્ધિ અને સંસ્કૃતિ	મગનભાઈ દેસાઈ	૨૬૧
વન્દોની મહામારી	મગનભાઈ દેસાઈ	૨૬૪
કવિશ્રી ખબરદાર	ત્રંબકલાલ મા૦ શુક્લ	૨૬૬
આપણા કિશોરલાલભાઈ	ડૉ. આનંદશંકર વૈદ્ય	૨૬૭
શિક્ષકો માટે સ્વાધ્યાય યોજના	જુગતરામ દવે	૨૬૯
કવિશ્રી ખબરદાર	મુકુલભાઈ કલાર્થી	૨૭૦
ચલ ભૂદાને	ઉશનસ્	૨૭૧
'પંચ ત્યાં પરમેશ્વર'	વિનોબા	૨૭૨
ભાવના બળની રાષ્ટ્રીય શક્તિ	ગો૦	૨૭૪
કેનોપનિષદનો સ્વાધ્યાય–૯	મગનભાઈ દેસાઈ	૨૭૫
સાભાર સ્વીકાર		૨૭૭
પેનિસિલિન વગેરે 'રામબાણ' દવાઓ વિષે ચેતવણી	ગો૦	૨૭૮
કેન્સર	ગો૦	૨૮૦
માસિક વિવેચન		
સ્વ૦ કિશોરલાલભાઈ	મ૦	૨૮૧
બહુમતી અને સર્વસંમતિ	મ૦	૨૮૧
કાશ્મીરમાં દગાબાજી	મ૦	૨૮૨
પાકિસ્તાન પર અસર	મ૦	૨૮૩
કાશ્મીરનો લોકમત	મ૦	૨૮૪
કોરિયામાં હિંદી સૈન્ય	મ૦	૨૮૫
કોરિયા અને અમેરિકા	મ૦	૨૮૫
ફરજિયાત લશ્કરી તાલીમ	મ૦	૨૮૫
અંગ્રેજી માધ્યમની શાળાઓમાં પ્રવેશ	મ૦	૨૮૬
બેકારીનિવારણ માટે મૂડીસંગ્રહ!	વિ૦	૨૮૭
દેશની મહાનતા શામાં રહેલી છે?	મ૦	૨૮૭
ઉચ્ચ કેળવણીનું ખર્ચ અને ફી	મ૦	૨૮૭
નવું વાચન		
સ્વદેશી શા માટે?	વિ૦	૨૮૮

સૂચના

આ માસિક દર મહિનાની પહેલી તારીખે બહાર પડશે.

એક અઠવાડિયામાં અંક ન મળે તો ગ્રાહકે પોતાનો ગ્રાહકનંબર લખી ખબર આપવાથી તે અંક મોકલી આપવામાં આવશે. એ પહેલાં ટપાલ ખાતામાં પૂરી તપાસ કરી લેવા વિનંતી છે.

સરનામાનો ફેરફાર અમને તુરત જણાવશો કે જેથી નવો અંક નવા સરનામે મોકલી શકાય.

ગ્રાહકોને પત્રવહેવાર કરતી વખતે પોતાનો ગ્રાહકનંબર અવશ્ય જણાવવા વિનંતી છે.

ગ્રાહકો પોતાનું લવાજમ નવજીવન કાર્યાલયની શાખાઓમાં મુંબઈ (૧૩૦, પ્રિન્સેસ સ્ટ્રીટ); સુરત (કણપીઠ બન્નર); રાજકોટ (લાખાજીરાજ રોડ), દિલ્હી (ઑર ઇન્ડિયા ઑફિસ સામે, કોનોટ સરકસ, નવી દિલ્હી); ઇદોર (ગાંધી-ભવન, યશવંત રોડ) અને વડોદરા (કોઠી સામે, રાવપુરા) ભરી શકશે.

લવાજમના દર

દેશમાં રૂા. ૪); પરદેશમાં રૂા. ૬) અથવા શિ. દસ; છૂટક નકલ આઠ આના

વ્યવસ્થાપક,
શિક્ષણ અને સાહિત્ય
નવજીવન કાર્યાલય,
પો. બૉક્સ ૧૦૫, **અમદાવાદ**

અમારાં નવાં પ્રકાશનો

શ્રેયાર્થીની સાધના [સદ્‌ગત કિશોરલાલભાઈનું જીવન-ચરિત]: લે૦ નરહરિ દ્વા૦ પરીખ; કિં. રૂ. ૩–૦–૦; ટપાલખર્ચ ૧–૦–૦.

ગીતા પ્રવચનો: લે૦ વિનોબા ભાવે; કાચું પૂઠું કિં. રૂ. ૧–૦–૦; ટપાલખર્ચ ૦–૭–૦; પાકું પૂઠું કિં. રૂ. ૧–૮–૦; ટપાલખર્ચ ૦–૧૦–૦.

પૂર્વ આફ્રિકામાં: લે૦ કાકા કાલેલકર; કિં. રૂ. ૩–૦–૦; ટપાલખર્ચ ૦–૧૦–૦.

ભાવી ભારતકી એક તસવીર: લે૦ કિશોરલાલ મશરૂવાલા; કી૦ રુ૦ ૧–૦–૦; ડાકખર્ચ ૦–૫–૦.

હિન્દી પાઠાવલી (તીસરી કિતાબ): સંપા૦ ગિરિરાજકિશોર, નાનુભાઈ વારોટ; કી૦ રુ૦ ૧–૮–૦; ડાકખર્ચ ૦–૬–૦.

Bhoodan Yajna: By Vinoba Bhave; Price Rs. 1–8–0; Postage etc. 0–5–0.

નવજીવન પ્રકાશન મંદિર, અમદાવાદ-૯

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

શિક્ષણ અને સાહિત્ય

सा विद्या या विमुक्तये

વર્ષ ૧૬–અંક ૯] અમદાવાદ [સપ્ટેમ્બર, ૧૯૫૬

સંતોના અનુભવ*

મરહૂમ કિશોરલાલભાઈ મરનારાંની પાછળ તેમનાં સ્મારકો, જીવનચરિત્રો વગેરે કરવાની વિરુદ્ધ હતા. મરણ પૂર્વે થોડાં વર્ષ અગાઉ 'મરણવિધિ' નામના એમના એક લેખે બહોળી પ્રસિદ્ધિ મેળવેલી. પણ એમના અવસાન પછી આ જીવનચરિત્ર લખાવા અંગેની ચર્ચામાં એક શ્રદ્ધેય મુરબ્બીની દલીલે સુસ્ત વલણવાળા મિત્રોને નિરુત્તર કર્યા : 'પોતાના દેશકાળ અને સમકાલીન સમાજને પોતાના પ્રખર વિચારબળ, અવિરત કર્મયોગ અને નિર્મળ ચારિત્ર્યગુણોથી પ્રભાવિત કરનાર વ્યક્તિઓ અને વિભૂતિઓનાં જીવનચરિત્રો ન લખવાં તો શું બ્યસતી, દુરાચારી, સટોડિયા, કાળાં-બજારિયા કે સિનેમા સ્ટારનાં જ ચરિત્રો લખીલખાવીને પ્રજાને ઊંચે ચડાવવાની આશા રાખવી ?'

આ પછી સ્વર્ગસ્થના નિકટતમ મિત્ર અને જીવનભરના સાથી શ્રી નરહરિભાઈએ આ ચરિત્ર લખવાનું માથે લીધું અને શ્રી નાથજીએ આ યોજનાને આશીર્વચનથી નવાજ્યું. ચરિત્ર લખાઈ રહેવા આવ્યું ને નાથજીએ મને લખ્યું : 'આ જીવનચરિત્રમાં તમારા ઉદ્‌ગાર ન હોય એ કલ્પના મને વસમી થઈ પડી છે. આપણા સૌની આંખને ઓઝલ થયેલા આપણા સન્મિત્ર વિષે સદ્‌ભાવભર્યા બે શબ્દ લખવા કરતાં વિશેષ આપણે શું કરી શકીએ ?'

* * *

કિશોરલાલભાઈને પહેલપ્રથમ મેં સને ૧૯૬૮ની આસપાસ સાબરમતી આશ્રમમાં જોયા ત્યારે જ એમનું શરીર દમિયલ અને રોગિષ્ઠ હતું. જિંદગીના અંત સુધી તેવું જ રહ્યું. શરૂમાં એમને અને એમની સાંપ્રદાયિક રહેણીને જોઈને મને બહુ અણગમો થતો. ધર્મ, અધ્યાત્મ કે શાસ્ત્રોની ચર્ચામાં એમની પૃથક્કરણ શૈલી અને જૂની પરિભાષા મને અકળાવતી. એમને નવી જીવનદૃષ્ટિ લીધા પછી 'જીવનશોધન' અને બીજા સંખ્યા-બંધ ગ્રંથોમાં એમણે પોતાની પ્રખર વિચારણાઓ પ્રજા આગળ રજૂ કરી. આમાંની કેટલીક વિચારણાઓ મને કે મારા જેવા બીજાઓને અસ્વીકાર્ય લાગતી. પણ એ બધી પાછળ એમની જે નિખાલસતા, સત્યનિષ્ઠા અને સામુદાયિક શ્રેય માટેની તાલાવેલી હતી તે શ્રદ્ધાળુ અશ્રદ્ધાળુ દરેકના હૃદયને સ્પર્શ્યા વગર ન રહેતી.

કિશોરલાલભાઈએ નાથજીને જાહેરપણે પોતાના ગુરુ તરીકે ઓળખાવ્યા. પણ એ ગુરુશિષ્ય સંબંધ આપણા દેશની પરંપરાની છાપનો નહોતો. કિશોરલાલભાઈ જ્યારે પોતાની સત્યની ખોજમાં અતિ વ્યાકુળ અવસ્થાએ હતા તે ટાંકણે નાથજીએ એમને સાથ આપી ચોક્કસ જીવનદૃષ્ટિ આપી. એ ઋણસ્વીકાર કિશોરલાલભાઈએ જાહેરપણે કર્યો અને જીવનભર એ કૃતજ્ઞભાવ એમનામાં કાયમ રહ્યો, એટલો જ એનો અર્થ સમજવો જોઈએ.

નાથજીએ કિશોરલાલભાઈનું કે કોઈનું ગુરુપદ કદી ધારણ કર્યું નથી. બલ્કે ગુરુસંસ્થાનાં અનિષ્ટોની જાણપ એમનામાં ઘણાખરા આધુનિકોના જેટલી જ તીવ્ર છે, એ એમના પરિચયમાં આવેલ સૌ કોઈ જાણે છે. કિશોરલાલભાઈની જૂની ઘરેડની શ્રદ્ધા–ઉપાસનાના પાયા હચમચાવી મૂકવામાં પોતે જાણ્યેઅજાણ્યે નિમિત્ત બન્યા, તે પછી એમની વ્યાકુળતા ન શમે ત્યાં સુધી સાથ આપી એમને યથાશક્તિ દોરવાનું નાથજીને પક્ષે અનિવાર્ય થઈ પડ્યું; ને ખરું જોતાં કિશોરલાલભાઈને શાંતિ મળી

* શ્રી કિ૦ ધ૦ મ૦ની પુણ્યતિથિને પ્રસંગે પ્રગટ થનાર 'શ્રેયાર્થીની સાધના' નામે સદ્‌ગતના જીવનચરિત (લે૦ શ્રી નરહરિભાઈ દ્વા૦ પરીખ)ની પ્રસ્તાવના.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ત્યારે કેમ જાણે પોતાનો જ છુટકારો થયો એમ નાથજીને લાગ્યું. આ વાત એમણે મિત્રોને એકથી વધુ વેળા કહી છે.

ગુરુશિષ્યનો નાતો મારી નજરમાં તો સૌથી શ્રેષ્ઠ અર્થમાં સખા–સન્મિત્ર–નો નાતો છે. અને આ ચરિત્રગ્રંથમાં નાથજીએ લખેલા કિશોરલાલભાઈની સાધનાને લગતા પ્રકરણમાં એમણે નિખાલસપણે આ બતાવ્યું છે. એટલું જ નહીં પણ એક સન્મિત્ર તરીકે કિશોરલાલભાઈનું પણ પોતાના ઉપર ઋણ હોવાનો એકરાર તેમણે કિશોરલાલભાઈના જેટલા જ કૃતજ્ઞભાવે કર્યો છે. આ વસ્તુ આપણા ગુરુસંસ્થાના ઇતિહાસમાં જેટલી અનુપમ તેટલી જ નવી છે.

વિવેકાનંદે રામકૃષ્ણ પરમહંસને તેમના નિર્વાણ બાદ પ્રસિદ્ધિમાં આણ્યા. પણ કિશોરલાલભાઈએ નાથજીને જીવતેજીવત પ્રસિદ્ધિ આપી. દુન્યવી કે પરમાર્થી કોઈ પણ ક્ષેત્રમાં પુરુષાર્થી વ્યક્તિને બીજાને નામે ઓળખાવામાં હમેશાં એક જાતની સંકડામણ કે ગૂંગળામણ થતી હોય છે. નાથજીએ 'કિશોરલાલભાઈના ગુરુ' તરીકેનું 'આંગળીચીંધામણું' વર્ષોથી વેઠ્યું છે. એમાંથી આવા સત્પુરુષોને બચાવી લેવા અને તેમને તેમના પોતાના જ વ્યક્તિત્વને દરજ્જે ઓળખવા એ વ્યક્તિ તેમ જ સમાજ બેઉને માટે નરવું છે.

* * *

જીવનદર્શન, તત્ત્વજ્ઞાન, કેળવણી, સામાજિક તેમ જ પ્રજાકીય ઉત્થાન, રચનાત્મક કામો, આર્થિક નિયોજનો, રાજકીય સિદ્ધાંતવાદો અને દેશની સમસ્યાઓને લગતી તેમની પ્રગલ્ભ વિચારણાઓ તેમણે લખેલા લગભગ બે ડઝન ગ્રંથોમાં, 'નવજીવન', 'યંગ ઇન્ડિયા', 'હરિજન' પત્રોમાં અને પછીનાં વર્ષોમાં દેશભરનાં સામયિકોમાં તેમણે કરેલાં અસંખ્ય લખાણો રૂપે દેશને મળી છે. આ બધાંમાં તેમણે ગાંધીજીની અનેક વિચારધારાઓને તેમ જ સિદ્ધાન્તોને વિશદ કર્યાં. ગાંધીજીએ પ્રચારેલા આદર્શોને અને કાર્યક્રમોને પેરેપેરે કરીને પ્રજાને સમજાવવા હસાવવામાં સૌથી મોટા પ્રમાણભૂત ભાષ્યકાર અને સ્મૃતિકારની પ્રતિષ્ઠા એમણે મેળવી. ખુદ ગાંધીજીએ પણ એકથી વધુ પ્રસંગે તેમને તેવી મહોર આપી.

એમનું બહોળું વિચારચંતન એમની પોતાની કમાઈ હતી. સ્વામી સહજાનંદ, ગાંધીજી, નાથજી કે કોઈ એક ગુરુજન પાસેથી પામેલ મૂડીનો વેપાર એમણે ન કર્યો. જે લીધું તે પચાવ્યું ને પોતાનું કરી લઈ પૂરેપૂરા ઋણસ્વીકાર સાથે, પણ પોતાને પગ કાટલે, વેચ્યું. આમાં જેટલું એમનું નિરભિમાન હતું તેટલી જ જાણેઅજાણે પોતાને હાથે કોઈ ને પણ અન્યાય ન થવા દેવાની તેમની ઇન્તેજારી હતી.

એમનું તમામ ચિંતન અને લેખન પ્રજાજીવનની શુદ્ધિ, વૃદ્ધિ, સંસ્કાર અને નવરચના અર્થે હતું. દુનિયાભરને માટે એમાં પ્રેરણા અને સંદેશ હતાં. નવરા ધીમાનોના 'કાવ્યશાસ્ત્રવિનોદ' અર્થે એમણે કદી ન લખ્યું. સુશિક્ષિત અને આમવર્ગો વચ્ચેની સંસ્કારિતાનો ભેદ 'ભદ્ર સંસ્કૃતિ' અને 'સંત સંસ્કૃતિ' એવાં રૂડાં નામ શોધીને એમણે ઓળખાવ્યો. આ નામો આપણા સાહિત્યમાં અમર રહેશે.

જિંદગીભર પ્રખર કેળવણીકાર અને શાણા સલાહકાર તરીકે ગાંધીજીની વિવિધ સંસ્થાઓ જોડે તેઓ સંકળાયેલા રહ્યા. એક કે બીજી સંસ્થામાંથી જૂજ રકમ આજીવિકા અર્થે લેતા. ગ્રંથો કે લખાણોના પુરસ્કાર ઇત્યાદિ કશું ન લેતા. કોઈ તરફથી આવે જ તો તે આપી દેતા.

નૈતિક ગુણો અને સંયમી જીવનવહેવાર દ્વારા પ્રજાના ચારિત્ર્યઘડતરનો એમનો આગ્રહ ઘણા આધુનિકોની નજરમાં એમને 'ચોખલિયા' ઠરાવતો. સાહિત્ય, સંગીત અને લલિત કલાઓને નામે વિલાસવૃત્તિનું અનુશીલન એમને કોચવતું. સ્ત્રીપુરુષ વચ્ચે નરવી વહેવારમર્યાદા એમને મન કુદરતી કાનૂન હતો. ચાહે તેવા સોહામણા લેબલ હેઠળ પણ એનું અતિક્રમણ પ્રજાના શરીરમનના આરોગ્યને હાનિકર્તા નીવડ્યા વગર ન રહે એમ માનતા. સ્ત્રીજાતિ પ્રત્યેનો એમનો અતિ ઊંડો આદર બધો જ તેમને સારુ ગોમતીબહેનમાં સમાતો.

મધ્યયુગીન ખ્રિસ્તી સાધુ ટોમસ કેમ્પીસનો ચિંતન ગ્રંથ 'ઈશુનું અનુકરણ' આજે ચારપાંચ સૈકાથી ખ્રિસ્તી આલમમાં બાઇબલ લગોલગની પ્રતિષ્ઠા પામ્યો છે. મારે મતે કિશોરલાલભાઈની ચિંતનવિચારણાઓ આપણે ત્યાં કંઈક તેવું જ સ્થાન ભોગવશે.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

એમનું જીવનદર્શન વિવેકપ્રધાન હતું. હું એને ઘણી વાર 'ટાઢુંબોળ રેશનલિઝમ' કહેતો. પણ એમનો જીવનવહેવાર મમતાભરપૂર અને હૂંફાળો હતો. સાવ ભાંગેલું શરીર છતાં અતિથિ આગંતુકને સત્કારવા ઊઠીને સામા જતા. મોટા મોટા દેશનેતાઓથી માંડીને અદના કાર્યકર્તા કે નવરા ટીકાખોર સુધી સૌને એકસરખા સૌજન્યથી સાંભળે, કે એકસરખી ધીરજ અને સમતાથી જવાબો લખે. એ જ બધા સદ્‌ગુણોને પ્રભાવે તેઓ સૌના શ્રદ્ધેય અને આદરપાત્ર બન્યા.

પેગમ્બર સાહેબના સૌજન્ય વિષે કહેવાય છે કે, એમની આખી ઉમ્મર દરમ્યાન એક પણ એવો અવસર કે પ્રસંગ કોઈએ જાણ્યો નહીં, જ્યારે રસ્તે જતાં કોઈ એમને સામું મળ્યું ને એને આવકારવા એમનો હાથ પહેલો લંબાયો નહીં. કિશોરલાલભાઈમાં પણ એ જ સૌજન્ય ભારોભાર હતું એ વાતના અસંખ્ય સાક્ષી જડશે.

આ જ ગુણોને બળે ગાંધી સેવા સંઘ જેવી દેશવ્યાપી સર્વોપરી સંસ્થાના પ્રમુખ તરીકે એમને જ સૌએ પસંદ કર્યા; અને સરદાર, રાજેન્દ્રબાબુ, રાજાજી જેવા રાષ્ટ્રમાન્ય નેતાઓએ એમની નીચે સંઘના સભ્યો થવામાં ગૌરવ માન્યું. એ જ ગુણોથી દેશભરનાં અસંખ્ય અદનાં કાર્યકર્તા કુટુંબોમાં પૂજ્ય વડીલનું સ્થાન પામ્યા. પ્રાંતીય ભાવ જેવું તો કશું એમનામાં કદી હતું જ નહીં. સર્વધર્મસમભાવ તેટલો જ અનુપમ. દેશના તેટલા જ વિદેશવાસીઓના અને આ દેશમાં વસતા કેટલાયે નાનામોટા મુસ્લિમો, પરદેશી પાદરીઓ કે સમાજસેવકોના તેઓ મિત્ર હતા.

* * *

અને નર્યા કોરા વિચારધનના જ એ વહેવારિયા નહોતા. અતિ ભાંગેલી તબિયતે ને શરીરે પણ ગાંધીજીની એકેએક સત્યાગ્રહલડતોમાં એમણે સક્રિય ભાગ લીધો અને લાંબી જેલો ફરી ફરીને વેઠી. ૧૯૪૨ની લડત વેળાએ રાબેતા મુજબ મધરાતે પોલીસ સેવાગ્રામ આશ્રમમાં પકડવા આવી. રેંટિયો પૂણી લઈ પહેરણભેર નીકળ્યા. નાગપુર જબલપુર કયાં લઈ જશે, કોઈ જાણે નહીં. પાછલી રાતની ટાઢમાં દમના હુમલા હેરાન હેરાન કરી મૂકશે એમ સમજી ગોમતીબહેને બે પાંચ લવંગ પહેરણના ગજવામાં મૂકવા માંડ્યાં. કહે, 'ના, એ ન લઉં. હવે મારા શરીરની કાળજીની જવાબદારી સરકારને માથે.' જેલોમાં પણ બીજાને ન્યાય અપાવવા ખાતર મરણઅપવાસ વહોરવા તૈયાર. દરેક જેલવાસ દરમ્યાન અસંખ્ય રાજદ્વારીઓના તેમ જ કાર્યકર્તાઓના પ્રીતિપાત્ર બની જીવનભરના મૈત્રીસંબંધો બાંધ્યા ને ત્યાંની ફરજિયાત ફુરસદમાં તબિયતે બેહતર છતાં અનુપમ સાહિત્યસર્જન કર્યાં. વિદેશી ભાષાનાં સાહિત્ય-રત્નોનાં ભાષાંતરો કરવામાં તેમણે નાનમ ન માની.

ગાંધીજીની હત્યા પછી બંધ રહેલાં 'હરિજન' પત્રોનું તંત્રીપદ 'ભગવાન ભરોસે' લીધું ત્યારે એમની વ્યાધિગ્રસ્ત તબિયતને કારણે એ ભાર સહન કરવાની એમની શક્તિ વિષે ઘણા શંકિત હતા. પણ અવિરત ઉદ્યમ કરીને છ માસમાં ભલભલાના મોંમાં એમણે આંગળાં ઘલાવ્યાં! K. G. M. આદ્યાક્ષરો M. K. G. ના પર્યાય થઈ પડ્યા. દેશ આખાના કોંગ્રેસીઓ, રચનાત્મક કાર્યકરો, આગેવાનો, મિનિસ્ટરો, સંસ્થા-સંચાલકો, વિરોધીઓ, હૈયાબળ્યા પેટબળ્યા ટીકાખોરો, સૌને પેટછૂટી વાત કર્યાનું ઠેકાણું થઈ પડ્યા.

સાડાચાર વરસ એકધારું સંપાદન અનન્ય નિષ્ઠાથી ચલાવ્યું. કોંગ્રેસી સરકારોની, સરદારની, જવાહરલાલજીની, કોઈની શેહમાં ન તણાયા કે ન કોઈનો ભીડમુલાજો રાખ્યો. કડવાં સત્ય ઉચ્ચારીને ભલા ભૂપનાં મોં કટાણાં કરાવ્યાં. વિનય કદી ન લોપ્યો. છતાં સત્ય જેટલા જ નિષ્ઠુર રહ્યા. ન વધુ ન ઘટુ. રોમે રોમાંએ કયાંક સત્યને ડુંગળી જેવું સરખાવ્યું છે. ખાતાં નાકે ધુમાડા નીકળે ને આંખમાં પાણી આવે.

જિંદગીનું છેલ્લું વર્ષ એમણે સંત વિનોબાની ભૂદાનયજ્ઞ પ્રવૃત્તિની અતિ ઉત્કટ હિમાયત કરવા પાછળ આપ્યું. વિનોબા પછી બીજે જ નંબરે એમના જેટલી એકધારી અને જિગરભરી ભૂદાન રજૂઆત ને વકીલાત દેશ આગળ એઓ જીવ્યા ત્યાં સુધી ભાગ્યે જ બીજા કોઈ દેશનેતાએ કરી હશે. ગાંધીજીના તપ અને પુણ્યથી થયેલી દેશની રાજકીય મુક્તિની પાછળ આર્થિક અને સામાજિક ક્ષેત્રમાં શુદ્ધ અહિંસાત્મક દેશવ્યાપી ક્રાન્તિ સિદ્ધ કરવાનો માર્ગ આ એક જ છે અને તે આપણા દેશની સંત સંસ્કૃતિના અને આમજનતાના એકમાત્ર અનન્ય ઉપાસક વિનોબાને જ સૂઝ્યો; આ પ્રવૃત્તિના

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ગર્ભમાં દેશની તમામ સમસ્યાઓના અહિંસક ઉકેલ અને દેશની તમામ ધર્મ આકાંક્ષાઓની સિદ્ધિ રહેલાં છે; એમ તેઓ માનતા. એમાં જ દૃઢ રહીને બૂહાનયજ્ઞની હિમાયત એમણે જીવનની અંતઘડી સુધી કરી.

* * *

રોગો અને વ્યાધિઓ આખી ઉમ્મર એમનાં સાથી રહ્યાં. દેહકષ્ટ રોજેરોજનું એટલું કે જોનારને કમકમાં આવે. ઘડીએ ઘડીએ દમ લેવા સારુ ફેફસાં જોડે સંગ્રામ કરતાં કરતાં એવડ વળી જાય. મિનિટો સુધી કોકડું વળી પડી રહે, ને હુમલો શમે તેવા જ પાછા બેઠા થઈ કલમ ઉપાડે; કાં કાંતે. અંત લગી આ જ દશા રહી. રોગો તથા ઉપચારો વેઠી વેઠીને બધાનું જ્ઞાન એટલું કે ભલભલા વૈદ્ય દાક્તરને ગૂંચવે.

આ બધા પારાવાર દેહકષ્ટના પરિહાર રૂપે કે કોણ જાણે, પણ તેવો જ અપરંપાર વિનોદ પ્રભુએ એમનામાં મૂકેલો. પોતાને ભોગે પૂરો પાડીને રાચે. જીવ નિચોવાઈને નીકળી જવા કરતો હોય એટલી વેદના વચ્ચે પણ જે કોઈ હાજર હોય તેની જોડે, કે ગોમતીબહેન જોડે, એમનો મુક્ત નિર્દંશ વિનોદ ચાલુ જ હોય. મિત્રો જોડેના પત્રવહેવારમાં પણ ટપકે. ટાંકવા બેસીએ તો પાનાં ભરાય.

મરણના થોડા જ મહિના અગાઉ બારડોલીમાં નરહરિભાઈને વસમો મંદવાડ આવ્યો ને ઍપેન્ડિસાઈટીસનું ઑપરેશન અનિવાર્ય થઈ પડ્યું; ત્યારે પોતાની તબિયત છેક જ ક્ષીણ થતી જતી હતી છતાં બસૂસ મુંબઈ આવીને રહ્યા. હૉસ્પિતાલ સુધી બબર લેવા આવે ને ઑપરેશનને દિવસે ઑપરેશન ચાલ્યું, પૂરું થયું ને ભાન આવ્યું ત્યાં સુધી આખો વખત હૉસ્પિતાલમાં બેસી રહ્યા.

પ્રાન્તેપ્રાન્તના અસંખ્ય નાનામોટા કાર્યકર્તાઓ, તંત્રીઓ, સંસ્થાવાળાઓ, પરદેશીઓ, વિશ્વશાંતિ પરિષદ, ગાંધીજી સ્થાપિત વિવિધ સંઘો, સ્ત્રીઓની સેવાસંસ્થાઓ, ગોસેવા, રંગતપાતિયાંની સેવા, હરિજનસેવા, વેજીટેબલ વિરોધીઓ, સૌ જોડે સરખી આત્મીયતા. સૌનો ગાંધીજીની પાછળ એમના પ્રત્યે તેટલો જ આદર. અવસાનના બબર આવ્યા ત્યારે આખરદિન લગી કૉંગ્રેસને ગાળો લખનારા પણ પોતાનો પિતા ગયો કહી પોક્કેપોક રડ્યા. દેશને ખૂણેખૂણેથી ને પરદેશોથી શોકના જે સેંકડો તારકાગળો વરસ્યા તેમાં સૌને પોતાનો નિકટતમ સ્વજન અને સન્મિત્ર ખોયાનું દુઃખ હતું.

ગાંધીજી પોતાનાં અંતેવાસીઓ આગળ કેટલીક વાર કહેતા કે મારા બેહાં ભલે તમે કોઈ ન ઝળકો, પણ હું નહીં હોઉં તે દિવસે દુનિયા તમારું હીર દેખવાની છે. કિશોરલાલભાઈએ અને વિનોબાએ ગાંધીજીનીબ્બે ભવિષ્યવાણીને સત્તર આના સાચી પાડી.

* * *

આ ગ્રંથરૂપે શ્રી નરહરિભાઈએ કરેલા ચરિત્રનિરૂપણ વિષે તેમ જ તેની રચના વિષે લખવાની ધૃષ્ટતા ન કરું. એમના જેવા સમત્વશીલ અને નિકટતમ સાથીએ જાતે અપંગ છતાં અત્યંત પ્રેમ અને ભાવથી આવડો પરિશ્રમ બેડીને આ ચરિત્ર લખવાનું માથે લીધું અને શુષ્ક લેખાતા વિષયોની રજૂઆતમાં પણ classic (કલાસિક)નો દરજ્જો પામેલી એમની અનેક ગ્રંથ-રચનાઓમાં એક નિર્મળ શાંત classic (કલાસિક)નો ઉમેરો કર્યો એથી વધુ અનુરૂપ અને સોહામણું બીજું શું હોઈ શકે? જે યોગ્યતાપૂર્વક કિશોરલાલભાઈએ ગાંધીજીની પાછળ 'હરિજન' પત્રોનું સંપાદન કર્યું તે જ યોગ્યતાપૂર્વક નરહરિભાઈએ આ ચરિત્રગ્રંથનું નિર્માણ કર્યું છે.

આ પ્રસ્તાવના પૂરી કરું તે અગાઉ કિશોરલાલભાઈના ચિંતનલેખનના એક મોટા ઊગમ અને પ્રેરણારૂપ નાથજીના વિચારસાહિત્યનાં વર્ષો લગી અનન્ય નિષ્ઠાથી સંગ્રહ, સંપાદન અને ભાષાપલટ કરનાર, કિશોરલાલભાઈના ગુરુબંધુ શ્રી રમણીકલાલ મોદીનો ઉલ્લેખ કર્યા વગર ન ચાલે. કશા વળતરની આશા વગર શુદ્ધ ભક્તિભાવમાં તરબોળ રહીને વરસોનાં વરસ એકધારો ઉદ્યમ એમણે કર્યો. નાથજીનાં તેમ જ કિશોરલાલભાઈનાં અસંખ્ય લેખોલખાણો, પ્રવચનો કે પત્રવહેવારો પાછળ એમનો અવિશ્રાંત ઉદ્યોગ છૂપો છે. એમના નિરભિમાને એમને કદી પ્રકાશમાં આવવા ન દીધા. પણ એમના ભક્તિભીના પરિશ્રમે ગુજરાતી ભાષાના ચિંતનસાહિત્યમાં જે ઉમેરો કર્યો છે તે માટે ગુજરાતી પ્રજા અને સાહિત્ય હમેશાં કૃતજ્ઞભાવે મગરૂબ રહેશે.

મુંબઈ, ૬ઠ્ઠી ઑગસ્ટ, ૧૯૫૬. **સ્વામી આનંદ**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

રૂઢિ અને સંસ્કૃતિ

સમાજના નિર્માણમાં તથા સુખશાંતિથી તેના નિર્વાહને માટે સંસ્કૃતિ કે સુધારો મોટી અને પાયાની જરૂર ગણાય. સમાજ પોતાનું સંગઠન અને સંગોપન તથા સંવર્ધન પોતાની વિશિષ્ટ સંસ્કૃતિ રચના દ્વારા કરે છે. તે દ્વારા તે સંસાર, સૃષ્ટિ તથા માનવજીવન વિષેના—કેવળ ભૌતિક કે સ્થૂલ કહેવાય એવા જ નહીં, પરંતુ સામાજિક અને સૂક્ષ્મ એવા આધ્યાત્મિક વિચારો અને સિદ્ધાંતો તથા માન્યતાઓને પણ તેમાં વણી લે છે; અને આમ ભૌતિક, આધિભૌતિક તથા આધ્યાત્મિક એવી બધી બાબતોને તાણાવાણારૂપે લઈને, ફૂલગૂંથણી કરે છે અને એમ પોતાની વિશિષ્ટતા પામે છે. આથી કરીને જ સંસ્કૃતિની રચનામાં આધ્યાત્મિક અને ધાર્મિક જેવાં ઊંડાં અને સૂક્ષ્મ કારણો ઉપરાંત સામાજિક, આર્થિક અને ભૌતિક એવાં બાહ્ય કારણો પણ કામ કરે છે. અને એ બધાં મળીને તે તે સંસ્કૃતિનો ઘાટ પેદા કરે છે. પશુપંખી અને વનસ્પતિની સૃષ્ટિની પ્રકૃતિથી માનવસૃષ્ટિ કે સમાજ જે જુદો પડે છે અને તેને આપણે જુદો ગણીએ છીએ, તે આ સંસ્કૃતિને કારણે છે.

આની અંદર જેને અંગ્રેજીમાં 'સિવિલિઝેશન' કે સુધારો કહે છે તે પણ આવી જાય. કેમ કે, સંસ્કૃતિ કે 'કલ્ચર' કેવળ સુધારાના કરતાં મોટી અને વ્યાપક તથા મૂલગત વસ્તુ છે.

આથી કરીને કોઈ વિશિષ્ટ સમાજની ચર્ચા કરવી હોય છે, ત્યારે તેની સંસ્કૃતિ મુખ્યત્વે તપાસવી પડે છે, તેના પાયાગત જીવનસિદ્ધાંતો જોવાના હોય છે, અને તેમને આધારે તે તે સમાજ જે જીવનપ્રણાલી ઊભી કરે છે તેને છણવામાં આવે છે.

સૂક્ષ્મ એવા પોતે ગ્રહણ કરેલા જીવનસિદ્ધાંતોને લોકજીવનમાં ઉતારવાને માટે, સમાજ જાત જાતની સંસ્થાઓ રચે છે અને પ્રથાઓ પાડે છે, અને તેમને અનુરૂપ લોકાચાર તથા તેમને સંકેત દ્વારા યાદ કરાવે એવા તે માટેના વિધિ યોજે છે.

અને તે આચાર તથા તેને માટેના સૂચક એવા વિધિ કાળે કરીને લોકોમાં રૂઢ બને છે.

એમ રૂઢિ એક સંસ્કૃતિનું પ્રબળ સાધન બને છે. મનુષ્યના વ્યક્તિજીવનમાં જેમ ટેવ, તેમ તેના સમાજ-જીવનમાં રૂઢિ છે અને તે એવી જ રીતે કામ કરે છે. એટલે, ટેવ પેઠે રૂઢિ પણ સારી માઠી હોય. કાળબળથી તેમાં ગતાનુગતિકતા અને પછી અર્થશૂન્યતા પણ આવે; અને એક ખાલી વિધિ તરીકે—સાપ જાય અને લિસોટા રહે તેમ—તે રહ્યા કરે, એમ બને છે. ત્યારે પાછા કોઈ સુધારકે અને વિચારકે તેમાં જીવ પૂરવાનો થાય છે; અને એમ પણ દરેક જીવંત સમાજમાં બને છે.

આવો સુધારો સદા થતો રહેવો એ પણ, રૂઢિ પેઠે, છતાં તેથી ભિન્ન છેઃ તેવું સંસ્કૃતિનું એક આવશ્યક અંગ છે; તે દ્વારા સંસ્કૃતિની ગંગા વહેતી રહે છે અને નિત્ય-નવીન જ નહીં, પણ નિત્ય-નિર્મળ અને પ્રગતિશીલ પણ બને છે.

સમાજના ઘડતરનો ઉપરનો વિચાર તેનો એક સનાતન નિયમ છે. તે ન સમજાય તો રૂઢિ, સુધારો વગેરે બાબતો વિચારમાં ગૂંચવાડો અને આચારમાં વહેમ ઊભાં કરે છે. અને તે પણ સાથે સાથે સદા ચાલતું જોવા મળે છે, જેને સમાજનો જ્ઞાનયજ્ઞ કે કેળવણી સાફ કરતાં રહે છે.

આટલી પ્રસ્તાવના સાથે, ઉપરના નિયમને સ્પર્શતા એવા બે પ્રશ્નો બે ભાઈઓએ થોડા વખત પર મને પત્ર લખીને પૂછેલા, તે તેમને મેં આપેલા જવાબ સાથે, નીચે ઉતારું છું. તે વાચકોને રસિક થશે એવી આશા છે.

૧૭-૮-'૫૩ મ૦

૧

એક ભાઈ તેમના ૨૦-૭-'૫૩ના પત્રમાં પૂછે છે :

"લગ્ન, સીમંત વગેરે પ્રસંગોએ આજે સમાજમાં દેવસ્થાન, ગોત્રજ, ખેતરપાળ, વગેરેની પૂજા કરવામાં આવે છે અને તેમને નિમિત્તે અમુક ખાસ ક્રિયાઓ કરવામાં આવે છે. દા. ત. અત્યારે મારાં ભાભીનું સીમંત છે તો બા-બાપુજી વગેરે કહે છે કે, આપણા ગોત્રજની ક્રિયા છે કે પાંચ શેરની લાપશી કરીને તેને ચડાવવી અને

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

સગાંઓને જમાડવાં. તેમ જ લગ્ન પ્રસંગે પણ અમુક વિચિત્ર લાગે એવી ક્રિયાઓ કરવામાં આવે છે.

"અંગત રીતે હું ભગવાન સિવાય બીજું કોઈ દેવદેવીમાં માનતો નથી. અને ગોત્રજ કે દેવસ્થાન વગેરેમાં પણ મને શ્રદ્ધા નથી.

"પણ જો તેવી પરંપરાથી ચાલી આવતી કોઈ ક્રિયા કરવામાં ન આવે, તો પરિણામ ખરાબ આવે — ગોત્રજ પરચો બતાવે, એમ વડીલો કહે છે. એ સાંભળી મને હસવું આવે છે.

"હવે તમને હું એ પૂછવા માગું છું કે, એ ગોત્રજ કે ખેતરપાળ વગેરે આખરે છે શું? એમનું તાત્ત્વિક સ્વરૂપ શું? શું તેઓ ઈશ્વરથી ભિન્ન છે? શું તેમને અલગ રીતે પૂજવા જોઈએ?

"તેમ જ વ્યાવહારિક રીતે એવી ક્રિયાઓ આવશ્યક હોય એમ મને નથી લાગતું. તેમ જ એવી ક્રિયાઓનું વૈદિક રીતે પણ કાંઈ મહત્ત્વ ખરું?

"બાપુજી કહે છે કે, જો તમે એવી ધાર્મિક ક્રિયા નહીં કરો તો હું તમારી સાથે ઘરમાં નહીં રહી શકું.

"આથી તમે મને એ સમજાવશો કે, સાધક અથવા શ્રેયાર્થીને માટે એવું કાંઈ માનવું અથવા કરવું જરૂરી છે? એવા કોઈ તત્ત્વનું જગતમાં અસ્તિત્વ છે? એમને ન માનવાથી અને તેમનો વિધિ ન કરવાથી ભવિષ્યમાં કાંઈ નુકસાન થાય — દેવ ચમત્કાર બતાવે, તેમાં માંદા પડાય, સ્ત્રી કે ભાવિ બાળકને નુકસાન થાય, બાળક ખોડવાળું આવે વગેરે વગેરે જનતની અનેક માન્યતાઓમાં કાંઈ તથ્ય ખરું? જોકે એ બધું જ વહેમ છે એમ હું દૃઢતાથી માનું છું, પણ છતાંય મારી વિચારશ્રેણીમાં ક્યાંક ભૂલ હોય તો? એવી શંકાથી તમને પુછાવું છું, તે મહેરબાની કરીને લખવાની કૃપા કરશો."

૨

[તેમને તા. ૨૩–૭–'૫૩ ના રોજ લખેલો મારો જવાબ :—]

તમારો તા. ૨૦–૭–'૫૩ નો પત્ર મળ્યો. તમે પૂછો છો તેવો સવાલ તમારી પેઢે કેટલાય બીજા નવયુવકોને થતો હશે. એ પેઢીની શ્રદ્ધાભક્તિ અને માન્યતાનો ફરક એમાં ભાગ ભજવી રહ્યો છે, એ ઉઘાડું છે. તેમાં તાત્ત્વિક કરતાં સામાજિક કારણ વધારે છે.

તમારા સવાલ ઉપર આવું. એક ઈશ્વર અને તે સત્ય-શિવ-સુંદર-રૂપ છે એમાં શ્રદ્ધા બેઠા પછી દેવ દેવીઓમાં શ્રદ્ધા જુદી રહેતી નથી. એ શ્રદ્ધા જો અચળ હોય તો બીજું ન માનવાનો ડર ન રહે. તો પછી તેમાંથી પરચો બતાવશે એવી બીક તો કેમ જ સંભવે?

પરંતુ, સમાજમાં સામાન્ય માણસો જન્મ, મરણ આદિ હર્ષશોકના પ્રસંગોએ દુઃખી સુખી થયા કરે છે. તે વખતે તેમાં સહભાગી થવાને નિમિત્તે મિત્રો તથા સગાંવહાલાં આવે જાય છે. તે નિમિત્તે જાત જાતના સામાજિક વિધિ–ઉત્સવો વગેરે ઊભા થાય છે. આ વખતે સૌ ઈશ્વરને અને તેની વિભૂતિઓને યાદ કરે, તો તેમાં આસ્તિકતાની ને નમ્રતાની કેળવણી રહેલી છે. તે પ્રસંગે બધું સાંગોપાંગ સારું પાર પડે, જે થવાનું હોય તે મંગળ થાય, એ જાતની ભાવના ઉત્કટ હોય છે, તેને પણ ધાર્મિક વિધિ, દેવ દેવીનું સ્થાપન ઇ૦ મારફત કાંઈક સાંત્વન અને શ્રદ્ધા મળે છે.

આમાંથી પછી ધીમે ધીમે એમ પણ સંસ્કાર જન્મે કે, જો ઉપરના વિધિ ઇ૦ કરીએ તેમાં ખોડ રહે કે ન કરીએ, તો દેવ દેવીનું કૂદું પડે. તે ડર સકામ વૃત્તિવાળાને તો ખૂબ સતાવે જ.

અને આવડો વિધિ થાય તેમાં સમાજમાં સમારંભ જેવું પણ બને; તેનું ખર્ચ ઇ૦ થાય; અને તેમાં પછી મોટાઈની સરસાઈ વગેરે પણ જાગે છે.

આમ એક સાદી વાતમાંથી ભારે સામાજિક-ધાર્મિક સંસ્કાર અને સમારંભ બને છે. તેમાંથી રૂઢિ પણ બની જાય. તે પછી બધા પાળતા થઈ જાય.

તમે પૂછો છો તે વિષે આવી કાંઈક મારી કલ્પના જાય છે. તમારે તમારાં માતાપિતા ભાઈભાભી વગેરેની ભાવના જોવી જોઈએ. તેઓ જો કાંઈક સંસ્કારવિધિ ઇચ્છે તો સમજપૂર્વક ધાર્મિક ગણાતો અંશ કરવામાં દોષ ન ગણાય; પણ તે પાછળ જમણ ઇ૦ નો ખોટો ખર્ચ કરવાનું તેનો અંશ ન ગણાય. તેમાં સૌએ પોતપોતાનું ગજું જોઈને વર્તવું જોઈએ.

મને લાગે છે કે આમાંથી તમને વિચારવાને માટે ભાથું મળી રહેશે.

૩

[બીજા એક ભાઈ તેમના તા. ૨૮–૭–'૫૩ના પત્રમાં કેટલીક શંકાઓ પૂછે છે :–]

"શ્રાદ્ધનો શો અર્થ? પિતૃશ્રાદ્ધ ભાદરવા માસમાં કૃષ્ણપક્ષના પંદર દિવસ રાખવામાં શું રહસ્ય હશે?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

પિતૃશ્રાદ્ધ માટે ગયા અને માતૃશ્રાદ્ધ માટે સિદ્ધપુર સ્થાનને મહત્ત્વ કેમ અપાતું હશે ?

"પિંડ અને ઉદકની ક્રિયાઓ કરવામાં શું રહસ્ય હશે ? સંન્યાસી (સનાતનીઓ પોતાની જાતને ગણતા)ને શ્રાદ્ધની આવશ્યકતા ખરી ? આર્યસમાજ ભાઈઓ તો મૃત્યુ બાદના શ્રાદ્ધનો ધિક્કાર જ કરે છે; હા, જીવતાં માતાપિતાની સેવાને ખાસ મહત્ત્વ આપે છે. જ્ઞાનેશ્વર મહારાજે પિતૃઓને સીધા શ્રાદ્ધમાં બોલાવ્યા. ગીતાજીમાં પહેલા અધ્યાયમાં અર્જુને કરેલી શંકામાં આ શ્રાદ્ધક્રિયાને સ્થાન છે. પિતરોમાં અર્થ માં હું એટલે શું ? પિતૃઓને પૂજનારા પિતૃલોકને પામે છે. પિતર શબ્દનો શો અર્થ થતો હશે ? પહેલાં શ્રાદ્ધમાં માંસ પીરસાતું હતું. હાલમાં દૂધને વધારે મહત્ત્વ આપવામાં આવે છે. આ બાબત સહેજે સમજી શકાય એવી છે. કારણ કે માંસ છોડાવનારે દૂધ ઘી ઉપર ભાર મૂકેલો જણાય છે.

"જીવતા પિતૃઓની સેવા તો જાણે પિતૃઋણ ફેડવાને માટે નિર્માયેલી હશે તે બાબત સમજી શકાય છે. પણ મરનારને અવગતિમાંથી કાઢવા માટે થતી આ ક્રિયાનું આધ્યાત્મિક રહસ્ય શું હશે ?

"જેની સાથે કોઈ જાતનો લોહીનો સંબંધ નથી (એટલે કે સગાં નથી) અને જેમના તરફથી આપણને જ્ઞાન-સમજણ પ્રાપ્ત થઈ છે, તેવી વ્યક્તિનું શ્રાદ્ધ કેવી રીતે કરી શકાય ? દા. ત. પૂજ્ય બાપુ કે જેમના જીવનમાંથી, બોધમાંથી આપણને ઘણું મળ્યું છે. હવે આવી વ્યક્તિનું શ્રાદ્ધ શું એકાદ બ્રાહ્મણ જમાડી, દક્ષણા આપી, કે ગયા જઈ આવી થઈ શકે ? — હા, આ બાબતનું નિરાકરણ શ્રી કાકા કાલેલકર યોજિત 'ગીતા-ધર્મ'માં મળે છે. તેઓ જણાવે છે ('ગીતાધર્મ'માં) કે, કોઈ વ્યક્તિ મરણ પામી અને તેનો જન્મ વાઘની યોનિમાં થયો. હવે તેના અનુયાયીએ તે વાઘને માંસ પહોંચાડી તેનું શ્રાદ્ધ કરવાનો ધર્મ પાળવાનો નથી, પણ તે મરનાર વ્યક્તિની શૌર્યતાનો ગુણ પોતામાં વધારી તેનો સદ્‌ઉપયોગ કરવાનો છે."

૪

[તેમને મેં તા. ૧૩-૮-'૫૩ના રોજ લખેલો ઉત્તર :]

તા. ૨૮-૭-'૫૩નો તમારો પત્ર મળ્યો. પિતૃઓના શ્રાદ્ધ વિષે પૂછો છો. આપણી સંસ્કૃતિમાં (અને ઘણું કરીને ચીનમાં પણ) પિતૃઓ યા વડીલોનું ભારે મહત્ત્વ માન્યું છે. 'પિતૃદેવો ભવ' એવી આજ્ઞા આપણને આદિકાળથી મળી છે. આપણો દેહ, આપણી પરિસ્થિતિ, આપણો સંસાર, આ બધું આપણા પિતૃઓનો વારસો છે. જેને સંસ્કૃતિ કહીએ છીએ તેની રચના એમણે કરી છે. પશ્ચિમમાં વિજ્ઞાનીઓ જેને પરિસ્થિતિ અને વારસો કહે છે, તે આપણે ત્યાં એક જીવંત દેવતા રૂપે કલ્પી તેની આરાધના યોજવામાં આવી છે. સંસ્કાર-નિર્માણનું કામ આ ઢબે કરવાની આપણા લોકોની રીત છે. એ દેવતાને પિતરો કહેવાયા એમ લાગે છે. વંશતંતુ મારફત એ આપણા જીવનમાં બેઠા છે, અને તે જીવંત સંબંધની કદરરૂપે શ્રદ્ધાપૂર્વક આપણે અમુક રીતે તેમનો અનુગ્રહ માનીએ — તેમને યાદ કરીએ, એવો સંસ્કાર શ્રાદ્ધની ક્રિયા રૂપે સમાજમાં નિર્માણ થયો હશે, એમ કહી શકાય. એમ આપણે સમાજની અમુક કેળવણી થયા કરે તેવું યોજવામાં આવ્યું. તેને માટે પછી વરસમાં અમુક સમયપત્રક બનવું જોઈએ; તેનો અમુક સંકેતવાળો સૂચક વિધિ યોજવો જોઈએ. અને આ બધું હજારો વરસની પરંપરામાં પડે, તો તેની આસપાસ અમુક ગૂઢતાનો ભાવ પેદા થાય. તે એક રૂઢિ બની જાય છે. આમ છતાં તે બધાના મૂળમાં સંસ્કૃતિને પોષક અને વ્યક્તિના ભાવના-જીવનને તાલીમ આપે, એવું મૂળ તત્ત્વ રહેલું છે, એ ઉઘાડું છે. એની કદર કર્યા વિના ન ચાલે. કેમ કે, એ દ્વારા આપણે આપણો સંસ્કૃતિદેહ ઘડવામાં જે સારું શોભીતું અને ટકાઉ હોય,— કે જે આપણા વડવાઓને આભારી છે,— તેને યાદ કરીને સંભાળવા તથા આગળ લેવા ને તેમાં વધારો કરવાની આપણી જે જવાબદારી છે, તે સમજીએ છીએ. એટલે શ્રાદ્ધ-નિમિત્તે આપણે આપણા પૂર્વજોના મહાગુણો યાદ કરીએ, તેમને જીવનમાં એક કુદરતી વારસા જેવા બનાવી મૂકીએ, એમાં એક ભારે કીમતી અંશ રહેલો છે. કુલીનતા જેવી વસ્તુ આ મૂળ વસ્તુને કારણે મોટી ચીજ ગણાય છે. તુલસીદાસે રામાયણમાં 'રઘુકુળ રીત સદા ચલી આઈ, પ્રાણ જાય પરુ વચન ન જાઈ' એમ કહ્યું છે, તેમાં સંસ્કારિતાની કેટલી પ્રબળ અસર પિતૃધર્મપાલનમાં રહેલી બતાવી છે!

આવી ભાવનાનું સાદું અને પ્રત્યક્ષ ફળ તો એ છે કે, નવી પેઢી પોતાનાં માબાપ પ્રત્યે સેવા અને

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ભક્તિભાવ રાખીને વર્તે. આ નાનીસૂની કેળવણી નથી. એની સામાજિક કિંમત પણ ભારે છે. તે દ્વારા 'ઘડપણ માટે વીમો' જેને કહેવાય છે, તે ઊતરી જતો. અને એવાં અનેક સામાજિક કામો તેની આસપાસ ગોઠવી લઈ ને ઉકેલાતાં.

આ પરથી મારા વિચારોની દિશા તમને ખ્યાલમાં આવશે એમ માનું છું. તેમાંથી એ પણ તમે આપોઆપ તારવી શકશો કે, આપણે સાચું શ્રાદ્ધ કરીએ તો મૂળે શું તત્ત્વ સંભાળવાનું છે. લોહીના સગાને જ આપણા પિતરો માનવાના નથી; તેઓ તો છે જ. પણ પિતરો તો આખી પેઢી રચનારા બધા છે. તે એક દૈવત છે, જેમાં અનેકાનેક લોક કલ્પવાના છે. પશ્ચિમના લોકો વારસો ને તેની અસર વ્યક્તિમાં શી હોય તે જુએ છે. એમાં કદાચ એમના પુનર્જન્મ વગેરેના ખ્યાલો કારણ હોય. આપણે પુનર્જન્મ અને જીવનની સતત પરંપરામાં રહેલી એકતા માનીએ છીએ. તેથી પિતરો મૂર્તરૂપે ન હોવા છતાં, તેઓનો સૂક્ષ્મદેહ સંસારમાં સંસ્કૃતિ રૂપે અને આપણા દેહ રૂપે છે જ. એમ આપણે એક પિંડ રૂપે છતાં બ્રહ્માંડની અંદરનો વિરાટ-દેહ જોઈએ છીએ અને એક અખંડ રૂપે તેને આરાધવા માગીએ છીએ.

આને માટે જમણ, તર્પણવિધિ ઇ૦ વસ્તુઓ રૂઢિ રૂપે ચાલે છે, તેમાં ફેરફારો થયા કરતા હશે. દરેકે તે વિષે વિવેકભેર વિચાર કરવો જોઈએ. તે કોઈ કરે કે નયે કરે; છતાં દરેક હિંદુએ પિતરોની ઉપરની દૃષ્ટિએ પૂજા કરવી જોઈએ; એટલે કે પોતાની સંસ્કૃતિની જે ઉદાત્ત પરંપરાનો વારસો તેમણે આપ્યો, તેને યાદ કરવો, તેને સાચવવો, અને તેમાં વધારો કરવો, એને પોતાનો ધર્મ માનવો જોઈએ; જીવન એવું ઘડવું જોઈએ.

મગનભાઈ દેસાઈ

વજ્રોની મહામારી

મહાભારતમાં એક વાત છે કે, શરણે આવેલા ડાંગવ રાજા માટે પાંડવો યાદવો સાથે યુદ્ધમાં ઊતર્યા. યુદ્ધમાં કટોકટીની વેળાએ બંને પક્ષે સામસામાં વજ્ર કહેવાય તેવાં આયુધ છોડ્યાં: શ્રીકૃષ્ણે સુદર્શન ચક્ર, અને ભીમે મહાદેવજી પાસેથી મેળવેલ ત્રિશૂળ. બંને વજ્રો એકબીજાથી ગાંજ્યાં જાય નહીં, એટલે જોરથી આકાશમાં ભટકાયાં અને તેમના આખડવાથી ઉત્પન્ન થયેલા તાપથી આખું વિશ્વ સંતપ્ત થવા લાગ્યું. એ વજ્રોને કેમે કરીને છૂટાં પાડવાં જોઈએ. બેમાંથી કોઈ કોઈનો ધ્વંસ ન કરી શકે. બે પાડા લડે ને ઝાડનો ખોડો કાઢે એવી વાત એ થઈ. તેમને છૂટાં પણ કોણ પાડી શકે? છેવટે સૃષ્ટિના ત્રીજા વજ્રરૂપ હનુમાનજીને મોકલવા પડ્યા. તેમણે એ બે વજ્રોને બે હાથમાં પકડી લઈ છૂટાં તો પાડ્યાં; પરંતુ એ ત્રણે વજ્રો પૃથ્વી ઉપર પડે ત્યારે પૃથ્વીને તૂટી જતી અટકાવવા અર્ધ વજ્ર એવા ભીમે પડખું ધર્યું. આમ વિશ્વનાં સાડાત્રણ વજ્ર ભેગાં થતાં ડાંગવ રાજાની ઘોડી બનેલી ઉર્વશીના શાપનો અંત આવ્યો અને આખા વિશ્વની હસ્તીને જોખમાવનાર વજ્રસંઘર્ષ શાંત થયો.

આ એક કલ્પના કે તેના કરતાં કદાચ કોઈક ખરી હકીકતનું કાવ્ય-કલા-મય વર્ણન ભલે હોય; પરંતુ તેમાં એક મહા સામાજિક સત્ય રહેલું છે, તે અત્યારની દુનિયાની સ્થિતિ ઉપરથી બતાવી શકાય એમ છે. એ સત્ય તે કાળે ઇતિહાસના કથાકારે પોતાનાં કવિચક્ષુથી જોયું અને તેને ઉપરની કથા દ્વારા નિરૂપ્યું છે, એ નિર્વિવાદ છે.

એ સત્ય ટૂંકમાં કહી શકાય: આજ યુરોપ-અમેરિકાનું એકત્રિત બળ એક વજ્રરૂપ બનીને ખડું છે; સામે સોવિયેટ મંડળનું સમષ્ટિબળ પણ બીજા વજ્રરૂપે ઠેકી રહ્યું છે. બંનેએ જ્ઞાન-વિજ્ઞાનની રાક્ષસી તપસ્યા કરીને એ વજ્રશક્તિ મેળવી છે, એ આપણે જાણીએ છીએ. એવી જ વિજ્ઞાન-તપસ્યા રામાયણકાળે રાવણે કરેલી ને અદ્ભુત આયુધો તે યજ્ઞમાંથી પેદા કરેલાં, એવું પ્રાચીન ધર્મ-પરિભાષામાં વર્ણન મળે છે.

આ બે શક્તિઓ આજે જગતના આકાશમાં બરોબર આખડી રહી છે; ક્યારેક તેમાંથી ચકમક ઝરે છે ને આગ પ્રગટે છે. તેમાંથી ક્યારે દારુણ દાવાનળ ફેલાય છે, એ જ જોવાનું બાકી છે. જગત થંભી

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

જઈને અને આજે તો તેની આગળ લાચાર બનીને જુએ છે. પ્રાચીન આખ્યાયિકાની ભાષામાં કહું તો, કોઈ ત્રીજા વજ્રે વચ્ચે પડી આ બે વજ્રનો સંઘર્ષ રોકવો જોઈએ અને તેમને જમીન પર લાવવાં જોઈએ. તો તે બેઉ શાંત થઈ, ધરતીને ધવા વળવા દે.

આ જ વસ્તુને અર્વાચીન પરિભાષામાં 'ત્રીજું બળ,' 'ત્રીજો પક્ષ,' વગેરે કહીને વર્ણવવામાં આવે છે; ને તેવા શામક શાંત પક્ષ કે બળની જરૂર છે, ને તે હવે જગતનાં બાકીનાં રાષ્ટ્રોએ—સોવિયેટ અને અમેરિકા બાદ કરતાં—જોવાનું છે.

ઉપરનો ખ્યાલ અમેરિકાના યુદ્ધનિષેધક અને શાંતિપ્રેમી શ્રી એ. જે. મસ્ટેએ તા. ૧૦-૭-'૫૩ના વિલાયતના 'પીસ ન્યૂસ' સાપ્તાહિકમાં લખેલા પત્ર પરથી આવ્યો. તે પત્રમાં શ્રી મસ્ટે એક બીજી ઉપમા આપીને આ વાત કરે છે,—મૂળે તો જોકે એક જ વસ્તુ છે. તે કહે છે કે, જર્મનીમાં જે 'લોખંડી પડદો' રચાયો છે તેની પૂર્વ બાજુ સોવિયેટ રાજ્ય-મંડળ સુસજ્જ ઊભું છે અને પશ્ચિમ બાજુ પર અમેરિકાની આગેવાની તળે આટલાંટિક રાજ્ય-મંડળ ઊભું છે. બે મહા મોટા 'લેવિયેથન'—રાવણો છે. બંનેની દશા જોતાં આજે જાણે એમ લાગે છે કે, બેઉને તાવ આવ્યો છે ને તેઓ પથારીવશ છે. ગમત એ છે કે, એકને તાવ આવે કે બીજાને પણ તે ચડે છે; અને બંને સાથે પથારીવશ થાય છે! પણ જગતનો સવાલ એ છે કે, આપણા આ માનવ-ઘરમાં કોઈ દાક્તર છે કે નહીં? બંને રાવણો સાથે પટકાય છે ને પડે છે, એ તો સાચી વાત છે. તેથી બંને નબળા પડે છે, તેય ઠીક છે. પણ તેમાંનો ગમે તે એક ન-કરે-નારાયણ અને આંધળિયાં પર ચડી જાય અને કૂદી પડે તો?

આજની સ્થિતિનું આમ વર્ણન કરીને તે અંતે જણાવે છે કે, "આ આંટીનો મૂળગત ઉપાય કરવા બે વાતની જરૂર છે—રશિયામાં સરમુખત્યારશાહી છે તે તથા અમેરિકામાં જે ધનદારાશાહી અને લૂંટેરુ મૂડીવાદ છે તે,—એ બંને ધરમૂળથી નાબૂદ થવાં જોઈએ. આ બે જરૂરિયાતોમાંની એકે વિષે કાંઈ થાય છે કે કેમ એ કહેવું અત્યારે વધારેપડતું વહેલું લાગે છે."

વાત એમ છે કે, માનવ વ્યક્તિ અને તેના સમગ્ર વિકાસને મૂળ મહત્ત્વની વાત ન સમજ્યાથી એક તરફ સામ્યવાદી સામ્રાજ્ય અને બીજી તરફ મૂડીવાદી સામ્રાજ્ય પેદા થયાં છે. યંત્ર અને તે દ્વારા ધૂમ પેદા કરીને સ્વદેશી ધર્મનો લોપ કરવો અને પોતે ખાનગી કે સરકારી મૂડીને જોરે જથાબંધ ઉત્પન્નનો લાભ લેવો, અને તેને જોરે પોતે મજબૂત બનીને સ્વરક્ષા કરવા તત્પર રહેવું—એ આજે બંને પક્ષે ચાલી રહ્યું છે. આ ધંધો ગોરી સંસ્કૃતિએ છેલ્લાં બે ત્રણ સૈકાંમાં શોધ્યો અને બરોબર જમાવ્યો છે. તેની બહાર તે બીજું કશું કોઈને સૂઝવા દેતી નથી. તેનું ચાલે તો સૂઝે તેને રોકે પણ. છતાં માનવ તરણોપાય એમાંથી બચીને પાછા માનવ ધર્મ અને માનવ સમાજની સાચી રક્ષા કરવામાં રહેલો છે. તે ઉપાય કોણ કરે? કોણ ચલાવે? આજના જગતનું મોટામાં મોટું અને એકમાત્ર આંતરરાષ્ટ્રીય કામ હોય તો આ છે. તેને જ લક્ષમાં રાખીને ગાંધીજીએ હિંદમાં પોતાનું જીવનકાર્ય કર્યું. તે અર્થે હિંદની સ્વતંત્રતા માગી; તે માટે લડ્યા; તે મેળવી. તે અર્થે તેને અનુરૂપ અર્થવ્યવસ્થાનો સ્વદેશી ધર્મનો સિદ્ધાંત તેમણે ખાદી ઇ૦ દ્વારા સમજાવ્યો ને તે ચાલ્યો એટલો અમલમાં મૂકી દેખાડ્યો; તે દ્વારા ઊંચનીચતા ને વર્ણભેદ તથા વર્ગભેદ વગેરે દૂર કરી શ્રમ-અને-ઉદ્યમ-પ્રધાન એક સમાજ રચવાના કાર્યક્રમો યોજી બતાવ્યા; તે અર્થે ધર્મભેદોને ગાળી નાખવા સર્વધર્મસમ-ભાવની દૃષ્ટિ બતાવી. હિંદ સામે સવાલ એ છે કે, આ બધો વારસો આજની સ્થિતિમાં જગત માટેનો તરણોપાય બને એમ છે, એ દૃએ તેને ખીલવી શકશે? અને તે મહામૂલી મૂડી પર જગતમાં શાંતિનો ધંધો શી રીતે માંડી શકાય, તેનો નમૂનો પોતાને ત્યાં રચશે? ત્રીજું વજ્ર જગતને જોઈએ તે હિંદ બનશે કે કેમ, એ જૂનો સવાલ પાછો આજે તેની પાસે ઊભો થાય છે.

૧૩-૮-'૫૩ **મગનભાઈ દેસાઈ**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

કવિશ્રી ખબરદાર

માતા ગુજરાતને ચરણે ચાલીસ ચાલીસ જેટલાં પુસ્તકો, પ્રેરણાકાવ્યો ને ઉદ્બોધનો તથા ગદ્ય-પદ્યનાં અનેક સુંદર ને અભ્યાસભર્યાં શુદ્ધ લખાણો લખી, ગુજરાતથી દૂર દૂર મદ્રાસમાં વસતા ને સાઇકલ-મોટરનો વેપાર કરતા છતાંયે પોતાની સાહિત્યોપાસના જીવનભર ચાલુ રાખનાર કવિશ્રી અરદેશર ફરામજી ખબરદાર તોતેર વર્ષની ઉંમરે મદ્રાસમાં તા. ૬૦-૭-'૫૬ની રાત્રે નવ વાગ્યે અવસાન પામ્યા. ગુજરાત-મહાગુજરાતની સાહિત્ય દ્વારા વિવિધ પ્રકારની સેવા કરનાર કવિશ્રી ખબરદાર જૂની સાહિત્યપેઢીના છેલ્લા ગણાય તેવા સાક્ષર હતા.

તેઓ શુદ્ધ ગુજરાતી બોલતા ને લખતા. ભાવનગરની સાહિત્ય પરિષદના પ્રમુખપદેથી તેમણે આપેલું વ્યાખ્યાન તો જાણે હજી થોડાં જ વરસો ઉપર સાંભળ્યું હોય તેમ લાગે છે. શ્વેત પોશાક અને માથે પારસી પાઘડી પહેરેલા ખબરદાર સ્વસ્થ પુરુષ જેવું શરીર ધરાવતા અને ડોલતા હુંગરની જેમ ધીર ગતિથી ચાલતા.

એમણે ગાંધીજીના 'નવજીવન'માં 'ગુજરાતનો યજ્ઞકુંડ' અને 'ખપ્પર ભરો! ખપ્પર ભરો હોજી' એવાં કાવ્યો પ્રસિદ્ધ કર્યાં હતાં. 'ભારતનો ટંકાર' તો અનેક યુવાનોને પાનો ચઢાવતું એમનું કાવ્યપુસ્તક છે. કવિશ્રીએ સરસ રાષ્ટ્રીય ગીતો લખ્યાં હતાં ને અવારનવાર સ્વમુખે ગાયાં પણ હતાં. 'વિલાસિકા', 'રસિકા', 'દર્શનિકા', 'સંદેશિકા', 'ભજનિકા' વગેરે તેમણે લખ્યાં હતાં. તેમણે 'પ્રભાતનો તપસ્વી' લખ્યું હતું અને 'શૂરાબાવીસ હજાર', 'સદાકાળ ગુજરાત' વગેરે લખી ગુજરાત અને તેના ઘડવૈયાઓ પ્રત્યે શ્રદ્ધાભક્તિ દાખવ્યાં હતાં. મલબારીનાં કાવ્યોની ચૂંટણી કરીને સારો એવો સંગ્રહ તેમણે ગુજરાતને આપ્યો છે.

તેઓ નાનપણથી કવિતા લખતા. કવિતા અને ભજન-સંગીતનો શોખ કવિને પૂર્વજોના વારસામાં મળેલો લાગે છે. તેઓ દમણમાં ૧૮૮૧ના નવેમ્બરની છઠ્ઠી તારીખે જન્મ્યા હતા. સને ૧૯૦૮થી મદ્રાસ રહેતા હતા. એમણે અંગ્રેજી ભાષામાં પણ કવિતા લખી છે. અનેક પત્રોના દિવાળીના અંકોમાં તેમની કવિતાઓ જોવામાં આવતી ને તેમનાં કાવ્યોને અગ્રસ્થાન મળતું. તેમનું ઉપનામ 'મોટાલાલ' હતું અને ખરેખર કવિશ્રી બાહ્ય દેખાવે ને દિલથી પણ મોટાલાલ જ હતા. છેવટના સમયમાં તેમની તબિયત સારી નહોતી. ને એ સમયે તેમનો ભજનો તરફનો પ્રેમ – જીવનનો ઝોક – જોવામાં આવે છે. તેમનાં ભજનોનો છેલ્લો સંગ્રહ તે 'ભજનિકા'.

'જ્યાં જ્યાં વસે એક ગુજરાતી, ત્યાં ત્યાં સદાકાળ ગુજરાત'; 'જ્યાં જ્યાં ગુજરાતી બોલી ત્યાં ત્યાં ગુજરાતી મહેલાત' જેવી કવિતા ગુજરાતને આપનાર કવિશ્રીની આંતરપ્રાંતીય ખ્યાતિ પણ સારી હતી. તેમને ઇતર પ્રાંતના કવિઓ અને લેખકો એક રાષ્ટ્રીય શાયર તરીકે ઓળખતા અને એક સ્થળે તો તેમને 'ગુજરાતકે ક્રાંતિકારી વિદ્રોહી કવિ' તરીકે ઓળખાવવામાં આવ્યા છે.

કવિશ્રીનો સ્વર્ગવાસ થતાં માતા ગુજરાતે તેનો એક સુપુત્ર, સુકવિ, લેખક અને ભક્ત ગુમાવ્યો છે. 'ભારતનો ટંકાર' અને 'ભજનિકા'ના કવિ અને લેખકને અનેકાનેક નમસ્કાર હો!

ત્રંબકલાલ મા૦ શુક્લ

ગીતા પ્રવચનો

વિનોબા ભાવે

વિનોબાજીએ ગીતાનો મર્મ સમજાવતાં, મૂળ મરાઠીમાં આપેલાં પ્રવચનોનો ગુજરાતી અનુવાદ.

આ પુસ્તકની અગત્યનો ઉલ્લેખ કરતાં વિનોબાજી એક પત્રમાં લખે છે:

"હું ઇચ્છું છું કે 'ગીતા પ્રવચનો' દરેક ગુજરાતી પાસે પહોંચી જાય. એનાં વાચનં અને મનનથી આપણા (ભૂદાનના) પ્રશ્નની સારી ભૂમિકા તૈયાર થાય છે, એવો ઉત્તર પ્રદેશનો અનુભવ છે."

કાચું પૂઠું કિં. રૂ. ૧-૦-૦ ટપાલરવાનગી ૦—૭-૦
પાકું પૂઠું કિં. રૂ. ૧-૮-૦ ટપાલરવાનગી ૦-૧૦-૦

નવજીવન પ્રકાશન મંદિર, અમદાવાદ-૯

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

આપણા કિશોરલાલભાઈ

આપણા હિતચિંતક અને માર્ગદર્શક પૂ. કિશોરલાલભાઈનું પવિત્ર સ્મરણ કરતાં વર્ષોની સ્મૃતિ તાજી થઈ જાય છે. એમનો પહેલો પરિચય મને પુસ્તકો દ્વારા થયો. બાળકોને કેવી રીતે કેળવવાં એ વિચાર અમને મૂંઝવતો હતો. 'કેળવણીના પાયા' નામના એમના પુસ્તકમાંથી કંઈક માર્ગદર્શન મળશે એમ માની એ વાંચવાનું શરૂ કર્યું. એની પ્રસ્તાવનામાં જ એમની નિખાલસતા, સરળતા, નિર્મળતા અને નમ્રતાનું દર્શન થયું. બાળકોના શિક્ષણ અંગે એમના વિચારો જોતાં અમે જોયું કે, બાળકોને કેળવતાં પહેલાં અમારે જ કેળવાવું પડશે. બાળકને શિક્ષણ આપતા પહેલાં આપણે જ સુસંસ્કારી, સંયમી, કેળવાયેલા અને વિચારક બનવું જોઈએ, એ કિશોરલાલભાઈના લખાણમાંથી સમજાયું.

'વિકાસના માર્ગો'વાળા પ્રકરણમાં બ્રહ્મચર્ય વિષે લખ્યું છે એ વાંચ્યું કે, બ્રહ્મચર્યના પાલનથી આપણાં શરીર, ઇન્દ્રિયો, મન, બુદ્ધિ, સ્મૃતિ સર્વેમાં શક્તિ વધે છે. અને એ શક્તિ સૂક્ષ્મ અને તેજસ્વી થાય છે. પ્રાણવિકાસમાં તે મદદરૂપ છે જ, પણ ગુણવિકાસ માટેય સદ્‌વિચાર, બ્રહ્મચર્ય અને સંયમ જરૂરી છે. જેને સંતોષી, સુખી અને સમાધાનવાળું જીવન જીવવું હોય તેણે પોતાના જીવનમાં અનેક સદ્‌ગુણોને પ્રયત્નપૂર્વક કેળવવા જોઈએ અને સમાજહિતાર્થે એનો ઉપયોગ કરવો જોઈએ.

'કેળવણીના પાયા'માં રસ પડ્યો, એટલે એ પૂરું કર્યા પછી 'જીવનશોધન' શરૂ કર્યું. એમાંથી જીવન વિષે નવી દૃષ્ટિ મળી અને સમજાયું કે, આપણે અજ્ઞાન, વહેમ અને ભ્રમથી મુક્ત થઈ ચિત્ત શુદ્ધ કરવું જોઈએ.

એમના 'ગીતામંથન' માંથી શુદ્ધ જીવન જીવવાની કળા, વિજ્ઞાન અને તત્ત્વજ્ઞાન શીખવા મળ્યાં.

'ઊધઈનું જીવન' માંથી વિશ્વનો નિયમ સમજાયો અને આખું વિશ્વ એક સત્ય નિયમથી જ ચાલે છે એનું ભાન થયું.

આ પુસ્તકો વાંચ્યા પછી કિશોરલાલભાઈને મળવાની ઉત્કંઠા થઈ અને એમને મળવા જવા રજા માગી. વળતી ટપાલે જવાબ આવ્યો કે, "જે પુસ્તકો વાંચ્યાં છે તે ફરીથી વાંચી જજો, અહીંયાં આવવાથી તમને વધુ નહીં મળે. પછી તમારી ઇચ્છા."

ઈ. સ. ૧૯૩૭માં જન્માષ્ટમીને દિવસે એમનાં દર્શન કરવા હરિજન આશ્રમ, સાબરમતીમાં ગયો ત્યારે તે રેંટિયો કાંતતાં, એક ભાઈ સાથે વ્યક્તિ, સમાજ અને કુદરતનો અવિભાજ્ય સંબંધ, એ વિષે વાતો કરતા હતા. એમનાં પુસ્તકોમાંથી મને જે ગમ્યું હતું તેની વાતો કરી. એક દિવસ એમના સહવાસમાં રહી, એ –

"અદ્વેષ સર્વ ભૂતોનો, મૈત્રી ને કરુણા ક્ષમા,
નિર્મમ, નિરહંકાર, સુખ–દુઃખે સમાનતા."

('ગીતાધ્વનિ', અ૦ ૧૨, શ્લો૦ ૧૩)

–ની જીવંત મૂર્તિના આશીર્વાદ લઈ, એ સાધુ દંપતીની રજા લીધી. કિશોરલાલભાઈ આશ્રમના ઝાંપા સુધી વળાવવા આવ્યા. એમનાં વિવેક અને વ્યવહારકુશળતા-માંથી ઘણું જોવા જાણવા મળ્યું.

બીજી વખતે અમે હરિપુરા મહાસભામાં મળ્યા. એ વખતે એમને ઇન્ફ્લુએન્ઝા થઈ ગયો હતો. એમને આરડોલી લઈ જવામાં આવ્યા. પાછળથી એમની તબિયતના સમાચાર જાણ્યા એટલે હું આરડોલી ગયો. એમણે મને કહ્યું, "તમે તમારું કામ મૂકીને શા માટે દોડી આવ્યા? મને તો સારું થઈ જશે. તમે તમને સોંપાયેલી ફરજ બજાવો એ જ મારી સેવા છે."

ફરીથી એ થામણા આવ્યા ત્યારે અમે એમને મળવા ગયા. ત્યારે જે વાંચ્યું હતું તેની વાતો કરી અને મેં કહ્યું કે, વાંચેલાનું અજીર્ણ થયું છે. ત્યારે કહે, "તમે ડૉક્ટર છો, ઊલટી કરો, અને ઊલટી ન થાય તો જે વાંચ્યું છે તેને પચાવો." ઉમરેઠ આવવા વિનંતી કરી ત્યારે કહે, "શું આ બધાં તમારાં ઘર નથી?"

૧૯૪૬ના ફેબ્રુઆરીમાં એમને મુંબઈમાં બીમાર હતા. હું ત્યાં ગયો અને એમને પગે પડ્યો, ત્યારે કહે, "આ રીત સારી નથી; આપણા હૃદયમાં ભાવ હોય એ બસ છે. માણસે માણસને નમ્રભાવે નમસ્કાર કરવા જોઈએ." પછી સૂતરની આંટી ગળામાં પહેરાવતો હતો, ત્યારે કહે, 'તેને ઉકેલવાની જરૂર નથી મારા

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

હાથમાં જ આપ્યો.” આ વખતે એમને તાવ હતો અને કફમાં લોહી આવતું હતું. નાગપુરથી રચનાત્મક કાર્યકરો ખાસ કામને અંગે વાતચીત કરવા આવેલા એમની સાથે આરામખુરસીમાં બેસીને વાતો કરતા હતા. મેં કહ્યું, “આપની તબિયત સારી નથી તો આરામ કરો.” તો કહે, “આ ભાઈઓ કેટલે બધે દૂરથી રચનાત્મક કામની વાતો કરવા આવ્યા છે; એમની સાથે વાતો ન કરું એટલું આ શરીરનું શું મહત્ત્વ છે?”

એમના ખોરાક સંબંધી વાતો કરી. મેં કહ્યું, “બાજરી લો તો સારું.” ત્યારે ગોમતીબહેન કહે, “મુંબઈમાં રેશનિંગમાં બાજરી મળતી નથી.” મુંબઈમાં મારા મિત્રને ત્યાં હું ઊતર્યો હતો તેમને વાત કરી. તે કહે, “બાજરી આપણા ઘરમાં છે તે તમે લઈ જાઓ.” ગોમતીબહેનને ટેલિફોન કર્યો કે, બાજરી લઈને હું આવું છું. તુરત જ ટેલિફોન ઉપર કિશોરલાલભાઈ આવ્યા અને બોલ્યા, “મહેરબાની કરી બાજરી ન લાવતા. રેશનિંગમાં જે કંઈ મળે તેનાથી જ ચલાવી લેવું જોઈએ.” હું તો સ્તબ્ધ થઈ ગયો.

૧૯૪૭માં હરિજન આશ્રમમાં મળવા ગયો ત્યારે આરોગ્ય સબંધી વાતો કરી, ત્યારે કહે, “આરોગ્ય સંબંધી કોઈ પણ વાદમાં ન પડતાં વૈજ્ઞાનિક દૃષ્ટિ જ રાખવી.”

મેં પૂછ્યું, “કૂકડો સવારે બરાબર સવા ચાર વાગ્યે બોલે છે; તે કઈ રીતે જાણતો હશે કે આટલા વાગ્યા છે?” ત્યારે કહે, “તમે એક નિશ્ચય કરી બાંધી જાઓ કે ચાર વાગ્યે ઊઠવું છે તો બરાબર ચાર વાગ્યે ઊઠો છો ને? તમને જે શક્તિ ઉઠાડે છે તે જ શક્તિ તેને પણ બોલાવે છે. પ્રાણીમાત્રમાં અંતઃપ્રેરણા હોય છે. સર્વત્ર એક પરમાત્માની શક્તિ-સત્તા જ કાર્ય કરી રહી છે. મારામાં, તમારામાં સર્વેમાં એક જ પ્રભુ વ્યાપી રહ્યો છે. જાણ્યે અજાણ્યે એ જ શક્તિનું આપણે શરણ લઈએ છીએ. આપણે જ્ઞાનપૂર્વક એનું આલંબન લેવું જોઈએ. આપણામાં ત્રણ મહાન શક્તિઓ છે — સંકલ્પશક્તિ, ચારિત્ર્યશક્તિ અને કર્તૃત્વશક્તિ. આ શક્તિઓનો સર્વના કલ્યાણ માટે સદુપયોગ કરીએ, આપણું અંતઃકરણ શુદ્ધ કરીએ, અંતરાત્માને વફાદાર રહી વિવેકયુક્ત સદાચરણ કરતા રહીએ, એમાં જ શ્રેય છે.

કિશોરલાલભાઈ માનવ સદ્‌ગુણો અને માનવતા ઉપર ખૂબ જ ભાર મૂકતા, અને કહેતા, “સુખી થવું હોય તો સદ્‌ગુણી બનો, ચારિત્રશીલ બનો.”

માનવતાને કદી નવ તજીએ,
માનવ સર્વે સ્થિતિમાં રહીએ.
સત્ય પ્રેમ હૃદયમાં રાખીને,
સર્વોદય જીવન આચરીએ.

‘જીવનશોધન’ની પ્રસ્તાવનામાં એ લખે છે:

“હે વાચકો, હું જે કાંઈ કહું તે પરંપરાગત નથી એટલા માટે જ ખોટું માનશો નહીં. તમારી પૂર્વ પરંપરાને ફેરવનારું છે એટલા જ માટે ત્યાજ્ય છે એમ માનશો નહીં. ચિત્ત આકર્ષાય એટલું સુંદર કે સહેલું લાગતું નથી માટે ખોટું માનશો નહીં. તમે લાંબા કાળથી દૃઢપણે પોષેલી શ્રદ્ધાને ઉથલાવી નાખનારું છે એટલા જ માટે અવળે માર્ગે દોરનારું છે એમ માનશો નહીં. હું કોઈ સિદ્ધ, તપસ્વી, યોગી કે શ્રોત્રિય નથી માટે જ મારું કહેવું ખોટું માનશો નહીં. પણ, સાથે જ, તમારી પોતાની વિવેકબુદ્ધિથી મારા વિચારો સત્ય ને ઉન્નતિકારક લાગે, જીવનના વ્યવહારમાં અને પુરુષાર્થમાં ઉત્સાહ પ્રેરનારા, પ્રસન્નતા ઉપજાવનારા, અને તમારું તેમ જ સમાજનું શ્રેય વધારનારા લાગે, તો તેને સ્વીકારતાં ડરશોયે નહીં.”

ધાર્મિક ક્રાંતિની આશ્રમમાં કિશોરલાલભાઈ કહે છે કે, મનુષ્યના કે સમાજના જીવનમાં સમૂળી ક્રાંતિ આણવી હોય તો એમની ધાર્મિક માન્યતાઓમાં પરિવર્તન સૌથી પહેલું થવાની જરૂર રહે છે. બુદ્ધે बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, अने संघं शरणं गच्छामि કહ્યું. હું એમ કહીશ કે, ‘એક પરમેશ્વરનો આશ્રય રાખવો, ધર્મનો આશ્રય કરવો અને અન્ય મનુષ્યોનાં સદાચાર-ધર્મયુક્ત કર્મોનો આશ્રય લેવો.’

ગુજરાતીમાં ‘ગીતાધ્વનિ’ લખી એમણે મારા જેવા સંસ્કૃત ન જાણનાર કેટલાયને ગીતાપ્રેમી બનાવી દીધા છે. સોળમા અધ્યાયમાં શ્લોક છે —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

કરતાં આત્મનો ઘાત, નરકદ્વાર આ ત્રણ,–
કામ, ક્રોધ અને લોભ, તેથી તે તજવાં ત્રણે.
('ગીતાધ્વનિ', અ૦ ૧૬, શ્લો૦ ૧)

આના ઉપર વિચાર કરતાં થયું કે આત્માનો ઉદ્ધાર કેમ થાય?

કરતાં આત્મઉદ્ધાર, શ્રેયનાં દ્વાર આ ત્રણ –
સત્ય, પ્રેમ અને શ્રમ, તેથી આચરવાં ત્રણે.

જીવનને મહાવ્રત ગણી કિશોરલાલભાઈ આપણી વચ્ચે ઘણાં વર્ષો જીવ્યા, અને આપણને ઘણું આપ્યું. તેનું કારણ એમના જીવનમાં નિયમિતતા, વ્યવસ્થા, પરિમિતતા, સ્વચ્છતા, શાંતિ, શિસ્ત, વિજ્ઞાન અને ધર્મદૃષ્ટિ હતાં.

એ સંતને યાદ કરી આપણે એમના જેવા નિર્મળ અને નમ્ર, પ્રેમળ અને પ્રસન્ન, કર્તવ્યનિષ્ઠ અને વિવેકી બનીએ અને શરીર, મન કે આત્માના બીમારની પ્રેમથી સેવા કરી કૃતાર્થ થઈએ, એ જ પ્રાર્થના.

છેવટે, જીવનભર કિશોરલાલભાઈની એકનિષ્ઠાથી સેવા, સુશ્રૂષા અને સંભાળ રાખનાર, તપ, ત્યાગ અને કરુણાની મૂર્તિ પૂજ્ય ગોમતીબહેનને હૃદયથી વંદન કરી, વિરમું છું.

આરોગ્ય આશ્રમ, ઉમરેઠ — **ડૉ. આનંદશંકર વૈદ્ય**
૨૬–૭–'૫૩

શિક્ષકો માટે સ્વાધ્યાય યોજના

જેમ કારીગર વખતોવખત પોતાનાં ઓજારોની ધાર ઘસતો રહે છે, તેમ શિક્ષકો અને ગ્રામસેવકોએ નિરંતર સ્વાધ્યાય ચાલુ રાખવો જોઈએ, પોતાનો અનુભવ અને અભ્યાસ વધાર્યે જ જવું જોઈએ. તેઓએ સાચા શિક્ષક અને સાચા ગ્રામસેવક તરીકે દીપવું હોય તો તેમણે સતત વિદ્યાર્થી રહેવું જોઈએ.

સ્વાધ્યાયની આ વૃત્તિ ઓછી હોવાથી આપણી શાળાઓ અને ગ્રામસેવાનાં કેન્દ્રોનાં કામો નિસ્તેજ જેવામાં આવે છે. તેમાં પ્રગતિશીલતા જોવામાં આવતી નથી. ઘરેડમાં રગશિયું ગાડું ગબડ્યા કરતું હોય તેવો ભાસ થાય છે.

આવી શાળાઓમાં નઈ તાલીમનું વાતાવરણ કેમ બને? અને આવાં ગ્રામસેવાનાં કેન્દ્રોમાં સર્વોદયનું તેજ કેમ ચમકે? વળી કામ નિસ્તેજ થાય છે એટલું જ નથી. શિક્ષકો અને સેવકો ધીમે ધીમે સેવાનો ઉત્સાહ ગુમાવતા બને છે, અને સામાન્ય નોકરિયાત જેવા બની જાય છે. દેશના હિતમાં આ કેટલું મોટું નુકસાન છે?

આવી દયાજનક સ્થિતિ આજે પ્રવર્તે છે. પરંતુ તેમાં શિક્ષકો અને ગ્રામસેવકોનો દોષ નથી. તેઓને અભ્યાસ કરવાની અનિચ્છા કે આળસ નથી; પરંતુ તેઓ ગામડાંઓમાં વસે છે ત્યાં તેમને એવો સહવાસ મળતો નથી, જે તેમને સદા જાગ્રત રાખે, પ્રગતિના પંથ ઉપર રાખે. ત્યાં અભ્યાસ માટેનાં સાધનો પણ તેમની પાસે હોતાં નથી.

ગુજરાત નઈ તાલીમ સંઘને ગામડાંમાં વસતા શિક્ષકો અને ગ્રામસેવકો પ્રત્યે પૂરી સહાનુભૂતિ છે, અને તેમને માટે સ્વાધ્યાય કરવાનું મન થાય એવી પરિસ્થિતિ નિર્માણ કરવી એને તે પોતાનો ધર્મ માને છે.

સંઘે તે અર્થે સ્વાધ્યાય યોજના તૈયાર કરી છે. આ સ્વાધ્યાય યોજના શિક્ષકો અને સેવકો પોતાના આપ પ્રયત્નથી અભ્યાસ કરી શકે તેવા કાર્યક્રમો વર્ષમાં બે વખત પ્રસિદ્ધ કરશે.

આ કાર્યક્રમોના પહેલા અંગ રૂપે જુદા જુદા વિષયોનાં પાંચ પુસ્તકો પસંદ કરીને અભ્યાસ માટે સૂચવવામાં આવશે. પુસ્તકો ગુજરાતી અથવા હિન્દી ભાષાનાં હશે; અને તેમની પસંદગી, શિક્ષકો અને સેવકોની સૂઝ વધે, તેઓને નઈ તાલીમનું હાર્દ સમજવામાં મદદરૂપ થાય – એ રીતની કરવામાં આવશે.

કાર્યક્રમ પ્રસિદ્ધ થયા પછી, છ માસનો ગાળો અભ્યાસ માટે આપ્યા પછી એક પ્રશ્નપત્રની મારફત કરવામાં આવેલા અભ્યાસની કસોટી કરવામાં આવશે.

શિક્ષકો અને સેવકોની જે પ્રકારની પ્રગતિની સંઘની કલ્પના છે, તે એકલાં પુસ્તકોના અભ્યાસથી પૂરી થઈ શકે નહીં. એટલે સ્વાધ્યાય યોજનાના બીજા અંગ તરીકે નિર્દિષ્ટ કરેલી સંસ્થાઓ પૈકી કોઈ પણ એકમાં એક અઠવાડિયાનો અનુભવ લેવા જવાનું અથવા ગ્રામવિસ્તારનો તેટલી મુદતનો પગપાળા પ્રવાસ કરવાનું પણ રહેશે. અનુભવ પૂરો કર્યા પછી તે અંગે નિબંધ લખીને રજૂ કરવાનો રહેશે.

સ્વાધ્યાય યોજનાનું ત્રીજું અંગ રહેશે છ માસના ગાળામાં બને તૂનીને ૬૦ આંટી સૂતર કાંતવાનું તેમ જ ઘરની કે આસપાસની ખેતીવાડીમાં કુલ ૩૦ કલાકનું કામ કરવાનું.

આ પ્રકારની સ્વાધ્યાય યોજનાનો પહેલો કાર્યક્રમ તૈયાર થઈ ચૂક્યો છે. તેના આરંભ માટે તા. ૧ જુલાઈ ઠરાવવામાં આવી છે. છ માસનો સ્વાધ્યાય પૂરો કરી છેવટની કસોટી લેવાની તા. ૩૦ બનેવારી ઠરાવવામાં આવી છે.

સ્વાધ્યાય યોજનાની વધુ વિગતો માટે ગુજરાત નઈ તાલીમ સંઘ, વેડછી (જિ. સુરત) એ સરનામે લખીને બોધપત્ર મંગાવવું.

જુગતરામ દવે

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

કવિશ્રી ખબરદાર

"સૌનો છોડ્યો હું ખટકાને છૂટું,
તારો છોડ્યો કયાં જાઉં ?
લે, લે, ઓ નાથ ! હું સિંધુનો મોજે,
સિંધુમાં જ ઊછળી સમાઉં !"

આ પંક્તિના ગાયક કવિશ્રી ખબરદાર છેવટે અનંત સિંધુમાં સમાઈ ગયા. ગયા જુલાઈ માસની ૩૦મી તારીખે રાતે નવ વાગ્યે મદ્રાસમાં આપણા જાણીતા સાક્ષર અને આપણા સાહિત્યસર્જકોની જૂની પેઢીના છેલ્લા કવિ તેમ જ પ્રતિનિધિસમા શ્રી અરદેશર ફરામજી ખબરદાર ૭૩ વર્ષની ઉંમરે સ્વર્ગવાસી થયા. પારસી લેખકોમાં સ્વ૦ મલબારી પછી ગુજરાતી વાચકોમાં પ્રખ્યાત અને લોકપ્રિય થવાનું બહુમાન શ્રી ખબરદારને ફાળે જાય છે. ગુજરાતી ભાષા તથા ગુજરાત પ્રત્યે તેમને ગાઢ ભક્તિભાવ હતો.

અને એ ઉત્કટભાવ તેમણે માતા ગુર્જરીના ચરણમાં અસંખ્ય કાવ્યકુસુમો ધરીને વ્યક્ત કર્યો છે. તેઓ માનતા કે, 'ગુજરાતના કવિનું જીવન ગુજરાતની વૃદ્ધિનાં ગીત ગાતું વિરમી જાય એમાં જ તેની ધન્યતા છે.' 'ગુજરાતનું ગૌરવ, ગુજરાતનું વીર્ય, ગુજરાતનો સંયમ જગતભરમાં પ્રકાશ' પામે એ જ તેમની અંતિમ ઇચ્છા હતી. તેથી જ તેમણે 'ગુર્જરીની સેવા જન્મ-ભર યથાશક્તિ' કીધી છે. અને 'દર્શનિકા'માં તેમણે એ ભાવ દર્શાવતાં લખ્યું છે: "મારો છેલ્લો શ્વાસ જતાં પણ તેના (ગુર્જરી માતાના) ચરણમાં મારું જીવનભરનું તત્ત્વદર્શન મૂકી જાઉં, એથી વધુ અભિ-લાષસિદ્ધિ મારા આત્માને બીજી શી હોય ?"

આવા ઉચ્ચ અભિલાષસેવી કવિશ્રી ખબરદારે ૧૯૦૧માં એમનું 'કાવ્યરસિકા' પુસ્તક પ્રગટ થયું ત્યારથી તે અરધી સદી ઉપરાંતના સમય સુધી ગુજ-રાતના સાહિત્યને સમૃદ્ધ કરવા, પોતાની નાજુક તબિ-યત હોવા છતાં, કપરી આર્થિક મૂંઝવણ અંતિમ દિવસો સુધી ભોગવ્યા છતાં, વહાલાં સ્વજનોનાં અવ-સાન તથા બીજી કૌટુંબિક ઉપાધિઓ હોવા છતાં, અને માનસિક વ્યથામાંથી જીવનભર પસાર થયા છતાં, એમના અવસાનના થોડા દિવસો પહેલાં 'કીર્તનિકા' સુધી વિસ્તરતા સર્જન-પ્રવાહને અનિરુદ્ધ-પણે વહાવ્યો છે.

એમનાં ઘણાંખરાં પુસ્તકો કાવ્યસંગ્રહો છે. આપણા ગુજરાત અને આપણા રાષ્ટ્ર તથા આપણી સંસ્કૃતિ માટેનો પ્રેમ તેમાં તરબોળ જોવા મળે છે. નર્મદે શરૂ કરેલાં અને હરિ હર્ષદ ધ્રુવ, કવિશ્રી નાનાલાલ ઇત્યાદિ કવિઓએ એ પછી રચેલાં દેશભક્તિનાં કાવ્યોમાં શ્રી ખબરદારે પણ ઉત્કટ ભાવે અસંખ્ય કાવ્યોનું સર્જન કરીને એ પ્રકારને સમૃદ્ધ કર્યો છે. સ્વ. ઝવેરચંદ મેઘાણીની પેઠે તેઓ રાષ્ટ્રના શાયર તરીકે ચિરસ્મર-ણીય રહેશે. જ્યારે આપણો દેશ આઝાદીની અહિંસા-ત્મક લડત લડી રહ્યો હતો, ત્યારે કવિશ્રી ખબરદારે મુક્તકંઠે દેશપ્રેમનાં ગીતો ગાયાં અને ગુજરાતની જીભે ચડાવ્યાં. 'ભારતનો ટંકાર', 'સંદેશિકા' તથા 'રાષ્ટ્રિકા' એ ત્રણ કાવ્યસંગ્રહો એની સાક્ષી પૂરે છે. વળી ગાંધીજી પ્રત્યેનો તેમનો ભક્તિપૂર્ણ સદ્‌ભાવ પણ એમાંનાં કેટલાંક કાવ્યોમાં વ્યક્ત થયો છે.

કવિશ્રી ખબરદારનું ઋણ ગુજરાત પર નાનુંસૂનું નથી. 'જો પેલું બકરીનું બચ્ચું', 'સવારનાં પહેલો હું ઊઠી કૂકડેકૂક કરું છું !', 'પાણીનાં ટીપાં કંઈ નાનાં રહેતાં સાગરઘેર' જેવાં બાળકાવ્યો તેમણે આપ્યાં છે. 'ગુણવંતી ગુજરાત', 'સદાકાળ ગુજરાત' જેવાં "ગુજરાતનાં ગીતો"; 'હલદીઘાટનું યુદ્ધ', 'વીરબાળક બાદલ', 'પુરોહિતની રાજભક્તિ' જેવાં "કથાનક ગીતો"; 'એ ગાંધી સંતસુજાણ', 'મહાત્મા ગાંધીને ચરણે', 'દાંડીમકાનો હાજી', 'કવિશ્રી નાનાલાલનો જન્મસુવર્ણમહોત્સવ' જેવાં "અંજલિ ગીતો"; 'અમારો દેશ', 'હો ભરતભૂમિના પહાડો !' જેવાં "ભારતપુત્રોનાં ગીતો"; 'ભર ભર મારું ખપ્પર ભૈયા !' જેવાં "પ્રોત્સાહનનાં ગીતો" તેમણે રચેલાં છે. 'દર્શનિકા' જેવું કરુણ પ્રશસ્તિરૂપ દીર્ઘ કાવ્ય રચી પુત્રીના અવસાનથી વ્યાકુળ બનેલા પુત્રીવત્સલ પિતાનું હૃદય તેમણે મૂર્તિમંત કર્યું છે. 'રાષ્ટ્રચંદ્રિકા' લખી તેઓ ગુજરાતીઓને કંઠસ્થ થઈ ગયા છે. અને 'ભજનિકા' ઇત્યાદિ કાવ્યો દ્વારા તેમણે આપણી સંસ્કૃતિના ઉદાત્ત

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ભાવોને અને આપણી ધર્મપરાયણ જીવનરીતિસરણીને વ્યક્ત કરી છે. કવિશ્રી ખબરદાર પ્રયોગશીલ સ્વભાવના હતા. તેથી તેમણે નવીન છંદોરચનાના અનેક પ્રયોગો કરેલા છે. તેમણે અંગ્રેજી બ્લેન્ક વર્સને મળતું આવે એવું વૃત્ત રચવા માટે પ્રયત્નો કરેલા છે. 'મુક્તધારા' અને 'મહાછન્દ' આ બે નવાં વૃત્તો એ પ્રયત્નના ફળરૂપ છે.

વળી તેમની 'The Silken Tassel' તામની કૃતિ અંગ્રેજીમાં પણ પ્રસિદ્ધ થયેલી છે. તેમણે 'પ્રભાતનો તપસ્વી અને કુકકુટ દીક્ષા' જેવાં મોટાલાલ એવા તખલ્લુસને નામે વિડમ્બનકાવ્યો (પૅરડીઝ) પણ લખ્યાં છે. 'ગુજરાતી કવિતાની રચનાકળા' એવાં ગદ્ય લખાણો પણ લખ્યાં છે. તદુપરાંત, કવિશ્રી ખબરદાર ધર્મગ્રંથો — ખાસ કરીને અવેસ્તા ગાથાઓના ઊંડા અભ્યાસી પણ હતા. છેલ્લા દિવસો સુધી તેમણે અવેસ્તા ગાથાઓના સંશોધનનું અને ભાષાન્તરનું કામ અવિરતપણે કર્યા કર્યું. અહીં નોંધવા જેવી વાત એ છે કે, કવિશ્રી ખબરદારે આટલું વિપુલ સર્જનકાર્ય પોતાની નાદુરસ્ત તબિયત હોવા છતાં કર્યું છે. સતત માંદગીથી કંટાળી ન જતાં મનની સ્વસ્થતા જાળવી રાખીને તથા દુન્યવી અન્ય અડચણોની સામે એકલે હાથે ઝઝૂમીને પણ તેમણે પોતાની સર્જનશીલ પ્રસાદી જીવનની અંતિમ પળો સુધી ગુજરાતને ચરણે ધર્યા કરી.

'ગુણવંતી ગુજરાત! અમારી ગુણવંતી ગુજરાત!', 'જ્યાં જ્યાં વસે એક ગુજરાતી, ત્યાં ત્યાં સદાકાળ ગુજરાત' જેવાં ગીતો ઉત્સાહભેર ગાનાર શ્રી ખબરદારને ગુજરાત કઈ રીતે વીસરી શકે? ગુજરાતી સાહિત્યક્ષેત્રમાં તેઓ સદા અમર રહેશે. દૂર દક્ષિણમાં રહીને પણ ગુજરાત પ્રત્યે અમીદૃષ્ટિ રાખી ગુજરાતી ભાષાની અમૂલ્ય સેવા બજાવનાર કવિશ્રી ખબરદાર જતાં ગુજરાતને ખરેખર ભારે ખોટ ગઈ છે. પ્રભુ પ્રત્યે સદા અભિમુખ એવું કવિશ્રીનું ભક્તિમય હૃદય સદા રટતું હતું: "ઓ પ્રભુ! આંખડીને, મુજને સદાય પાસ રાખજો." અને છેવટના દિવસોમાં તો તેઓ 'પ્રભુચરણે જવા તૈયાર' જ બેઠા હતા. એટલે કવિશ્રીની દૃષ્ટિએ તેઓ પોતે પરમ શાંતિને પામ્યા છે. કારણ કે તેઓ તો પ્રભુને રટતા હતા કે —

"તું વગડી મને આજુ મૂકે તે કેમ સહું?
તારા સૂરને હું ઉરમાં ઝીલતો ઝીલતો
અની ટુકડા ત્યાં તારા હાથ મહીં જ પડું!"

અને આજે તો તેઓ પ્રભુના હાથમાં જ પડ્યા છે. એમના આત્માને પ્રભુ શાંતિ આપે અને તેમનો અમર આત્મા આપણને સૌને પણ પ્રેરતો રહે એ જ પ્રભુ પ્રત્યે પ્રાર્થના.

મુકુલભાઈ કલાર્થી

ચલ ભૂદાને

તું ચલ રે ચલ ભૂદાને,
અવસર રૂપ ધર્યું, તુજ કારણ
સ્વયં કાળ-ભગવાને –તું૦

કણ તો કણ, એને સહુ ભાવે,
ચૂકીશ ના અવસર, ફરી ના'વે;
લઘુપદથી જગ આવરી લેશે,
ભિક્ષુક વામન વાને –તું૦

વિકૃત ચિત્ર બંધુ! લે જોઈ,
કોકની ધરતી, ભોગવે કોઈ!
ધરતી શેષ સકલમાં વહેંચી
આવ, પલટ નકશાને –તું૦

જનગણને જે કંઈ તવ અર્પણ
તે અરીસે નિજ વદન પ્રસાધન,
જનગણમાં નીરખી લે તું તવ
સુંદરતર પ્રતિમાને –તું૦

સમાજ તો ખુદ આપણી મૂરત,
સકલ વ્યક્તિ રેખામય સૂરત.
તું જ તને અર્પે ત્યાં કયાં રે
ભેદ જ દાનાદાને? –તું૦

ઉશનસ્

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'પંચ ત્યાં પરમેશ્વર'

[શ્રી વિનોબાનું એક વ્યાખ્યાન]

તમારી સામે આજે હું મારા રાજકીય વિચાર મૂકવા માગું છું. જીવનથી એકદમ અલગ થઈને આજકાલ રાજકારણનો વિચાર કરી શકાતો નથી. પહેલાંનો વખત રાજસત્તાનો હતો. પરંતુ તે વખતે સત્તાનો અમલ ઘણો જ મર્યાદિત હતો. જુલમી રાજાઓ જનતાને ત્રાસ આપતા હતા. પરંતુ સમસ્ત જનતા ઉપર તેઓનું પ્રભુત્વ નહોતું. કારણ કે, તેઓની સરકાર જનતાએ ચૂંટેલી નહોતી અને તે વખતે શાસન કરવાનાં સાધનો પણ આજના જેવાં નહોતાં. બાદશાહનો હુકમ માનવો કે ન માનવો એ તેના સરદારોની ઇચ્છા પર અવલંબતું હતું. નિઝામ જેવા બળવાન સરદાર બાદશાહના હુકમને અભરાઈ પર ચડાવી દેતા.

પહેલાંની અને આજની સરકાર

પહેલાંની સરકાર પ્રજાનાં જીવનનું સંપૂર્ણપણે નિયંત્રણ કરી શકતી ન હતી. એવી તેની ઇચ્છા પણ નહોતી. પારકી સત્તા આક્રમણ કરે ત્યારે તેનો પ્રતિકાર કરવા માટે થોડું લશ્કર રાખવું અને લશ્કરના અવરજવર માટે બે-ચાર રસ્તા તૈયાર કરવા, એટલું જ તેનું મર્યાદિત કામ હતું. પરંતુ એ તેનો વૈયક્તિક ઉપકાર મનાતો. માધવરાવ પેશવાના મૃત્યુ સમયે નવ દશ કરોડનું કરજ હતું. એ કરજ શી રીતે ફિટાવવું એની ચિંતા તેને મરણ સુધી થયા કરતી હતી. એ પૈસા તેણે પોતાની પ્રજા માટે જ વાપર્યા હતા. પરંતુ તોયે એ તેનું વ્યક્તિગત દેવું જ મનાતું હતું. આજે જોઈએ તો કેટલાય દેશોને, આપણી ભારત સરકારને પણ દેવું છે. અંગ્રેજોએ યુદ્ધમાં જે કરજ કર્યું હતું તેનો પણ બોજો આજે આપણને સહન કરવો પડે છે.

પરંતુ આજની સરકાર જો લાદવામાં આવી હોય તોય તે આખા દેશની છે. આજની રાજનીતિ ઘણી જ વ્યાપક બની ગઈ છે. સૌનાં જીવન ઉપર તેનું નિયંત્રણ ચાલે છે; જીવનના પ્રત્યેક પગથિયે તે છે. એટલે સુધી કે, શિક્ષણ ઉપર પણ સરકાર બંધન નાખી શકે છે. પૂર્વે એવું નહોતું. જ્ઞાની પુરુષ જ્ઞાનદાનનું કામ કરતા. તે સ્વતંત્ર હતા. આજે એવું નથી. જેવી સરકાર હોય તેવું બાળકોને શિક્ષણ આપવામાં આવે.

બહુમતીની ભ્રામક કસોટી

હું આજે જે કહેવાનો છું તે જીવનનો પાયાભૂત વિચાર છે. આપણે જોઈએ છીએ કે, દુનિયાભરમાં આજે લોકશાહી પદ્ધતિ દૃઢ થયેલી છે. પ્રત્યેકને મતદાનનો હક આપવામાં આવ્યો છે. બહુમતીથી ચૂંટાઈ આવેલો પક્ષ સત્તાધારી બને છે. કાયદા પણ બહુમતીથી થાય છે. પ્રત્યેકને એક મત આપવાનો અધિકાર છે. જવાહરલાલને એક મત અને ૨૧ વર્ષની કોઈ પણ સાધારણ વ્યક્તિને પણ એક મત. પ્રત્યેકની યોગ્યતા, બુદ્ધિ અને ચારિત્ર્ય સમાન ન હોય તોયે મતનો અધિકાર માત્ર સમાન છે. લોકશાહી પદ્ધતિમાં આ તેના પાયારૂપ માનવામાં આવે છે.

પરંતુ સત્યનો નિર્ણય બહુમતીથી જ થાય છે એવું કંઈ નથી. પૃથ્વી સૂર્યની આસપાસ ફરે છે કે સૂર્ય પૃથ્વીની આસપાસ ફરે છે એનો નિર્ણય બહુમતીથી નક્કી થાય ખરો? જીવનના અનેક પ્રશ્નોની બાબતમાં પણ એવું જ છે. તો પછી સંખ્યાબળ ઉપરથી નિર્ણય લેનારી આજની આ પદ્ધતિનો અર્થ શો? આ પદ્ધતિ પશ્ચિમની છે. આ પદ્ધતિ પ્રમાણે પ્રત્યેકને એક મત આપવાનો અધિકાર આપવામાં આવે એનો અર્થ મેં એવો કર્યો હતો કે, તેમાં આત્માની સમાનતા માનવામાં આવે છે. નહીં તો પછી બીજી કોઈ પણ દૃષ્ટિએ જોઈએ તો પ્રત્યેકને મતદાનનો સમાન અધિકાર આપી શકાય એવી કઈ યોગ્યતાની સમાનતા માણસોમાં છે? તેથી જ મેં એવું કહ્યું હતું; તેના ઉપર આત્મવાદ લાદ્યો હતો. પરંતુ વાસ્તવિક રીતે એવું કર્યું નથી.

સદોષ પદ્ધતિ

પાશ્ચાત્યોની લોકશાહીની આ પદ્ધતિ અત્યંત અસ્વાભાવિક, અનુભવ તથા નિસર્ગથી વિરુદ્ધ છે. તથાપિ આજે દૃઢ થઈ ગયેલી છે. તેથી મત મેળવવાની આજે હરીફાઈ ચાલતી જોવા મળે છે. એક પ્રકારની લડાઈ જ ચાલે છે. વળી મત મેળવવાના પ્રકાર પણ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

અનેક હોય છે. વિચાર સમજીને કહેવાની એમાં વાત જ નથી. કારણ કે પુષ્કળ લોકોને વિચાર જ સમજતો હોતો નથી. આવા પ્રકારની એક અત્યંત સ્થૂળ અને યાંત્રિક પદ્ધતિ સમાજમાં આજે રૂઢ થયેલી છે. આ પદ્ધતિએ લેવામાં આવતો નિર્ણય બહુમતીનો હોય છે, તોયે કેટલીક વાર તે બરોબર હોતો નથી. એનાથી જેઓનાં મનની વિરુદ્ધ નિર્ણય થયેલો હોય છે એવા અલ્પસંખ્ય લોકો અસંતુષ્ટ રહે છે. તેઓને લાગે છે કે, આપણો વિચાર યોગ્ય હોવા છતાંયે આપણું કશું ચાલતું નથી. યોગ્ય વિચાર એક વ્યક્તિનો હોવા છતાં તે યોગ્ય જ હોય છે. લાખો લોકો વિરુદ્ધ હોય તોયે એક વ્યક્તિનો, (જેમ કે કોપરનિકસનો) મત પૃથ્વી સૂર્યની આસપાસ ફરે છે એવો હતો, તે સાચો હતો કે નહીં ? તેથી બહુમતીનો નિર્ણય હંમેશાં બરોબર જ હોય છે એવું નથી. તથાપિ, તે આજે લાદવામાં આવે છે. એટલે અલ્પસંખ્યક લોકો પણ પોતાનો નિર્ણય શી રીતે લાદવામાં આવે એનો વિચાર કરવા લાગે છે. એમાંથી જ હિંસાનો વિચાર નિર્માણ થાય છે. આજકાલ પ્રત્યેક ક્ષેત્રમાં બહુમતવાળો અને અલ્પમતવાળો એવા બે પક્ષો હોય છે. આ એક નવીન પ્રકારનો જાતિભેદ જ છે. હિન્દુસ્તાનમાં તો આની સાથે બીજો પણ એક જૂનો જાતિભેદ છે જ. પૂર્વે તલવારથી નિર્ણય કરવામાં આવતો, તો હવે બહુમતીથી. તલવારનો માર્ગ નિર્બુદ્ધપણાનો હોવાથી આપણે તેનો ત્યાગ કર્યો. પરંતુ બહુમતીનો માર્ગ કયાં સુબુદ્ધપણાનો છે? ફક્ત માથાં ગણીને નિર્ણય લેવાની પદ્ધતિ ભૂલભરેલી છે. તેનાથી અસંતોષ નિર્માણ થાય છે, એકમેક વચ્ચે સંઘર્ષ ઉદ્ભવે છે અને એકબીજાને શી રીતે નીચે પાડવામાં આવે તેનો જ પ્રયત્ન ચાલ્યા કરે છે. એના ઉપર જ આ આખી પદ્ધતિ આધાર રાખે છે. માથાં ગણીને આજે બધે રાજકારભાર ચાલે છે. પણ એ માથાંમાં કશું છે કે નહીં, એનો વિચાર કરવામાં આવતો નથી. મહેરબાની એટલી જ કે, દીવાના લોકોને મતદાનનો હક આપવામાં આવ્યો નથી.

પંચ ત્યાં પરમેશ્વર

તો પછી આને માટે ઉપાય શો? આનો વિચાર ન કરતાં, આ સઘળો પક્ષભેદ, સરકારી પક્ષ અને તેનો વિરોધ કરનારો પક્ષ, એ બે વચ્ચે ચાલતો અખંડ પરસ્પર વિરોધ — આ સઘળી પાશ્ચાત્ય પદ્ધતિ આપણા દેશમાં ચાલુ રાખવામાં આવે, તો તેનાથી અહીં કોઈ પણ સારું કામ થનાર નથી. કારણ કે એક પક્ષ બીજા પક્ષનું કામ તોડી પાડવા માટે પ્રયત્ન કર્યા કરશે.

આના ઉપર એક ઉપાય છે. 'પંચ ત્યાં પરમેશ્વર' એવી આપણે ત્યાં કહેવત જાણીતી છે. આપણા ધર્મનો તથા સંસ્કૃતિનો તે એક ધાર્મિક રિવાજ છે. પરંતુ તેનો વાસ્તવિક અર્થ લોકો ધ્યાનમાં લેતા નથી. ગામમાં પંચાયતે નિર્ણય કરવો એટલો જ તેનો અર્થ નથી. પંચે એકમતે નિર્ણય કરવો એવો તેનો અર્થ છે. કારણ કે તે જ ખરો નિર્ણય હોઈ શકે. પરંતુ આજે ૪ વિરુદ્ધ ૧, ૩ વિરુદ્ધ ૨ એ પ્રમાણે નિર્ણય લેવામાં આવે છે. એમાં ધોકો છે. પંચે એકમુખે નિર્ણય કર્યો હોય તો જ તે હિતાવહ થશે. 'ક્વેકર્સ' લોકોમાં આજે આ જ પદ્ધતિ છે. તેઓ એકમતે નિર્ણય કરે છે. આ પદ્ધતિમાં કેટલીક મુશ્કેલીઓ પણ રહેલી છે. એકાદ માણસ અડી બેસે તો આ પદ્ધતિએ નિર્ણય જ ન થાય. તેથી બહુમતીએ નિર્ણય લેવાની પદ્ધતિ જ યોગ્ય છે, એમ માનવામાં આવે છે. પરંતુ આજે એકાદ માણસને ચૂંટી કાઢવા માટે લાખો લોકોના મતો લેવામાં આવે છે. આવા મોટા સામુદાયિક પ્રયોગમાં પણ અનેક અનિષ્ટ વાતો બને છે. તેથી મેં સૂચવેલો રાજ્યસત્તાના વિકેન્દ્રીકરણનો માર્ગ જ યોગ્ય છે. ઘણીખરી સત્તા ગામડાંમાં જ રહેશે. ગામ ગામ વચ્ચેના સંબંધનું નિયંત્રણ જિલ્લો કરશે, જિલ્લા જિલ્લા વચ્ચેના સંબંધ પર પ્રાંત દેખરેખ રાખશે, અને પ્રાંતો ઉપર કેન્દ્રનું નિયંત્રણ રહેશે. આજે પ્રત્યેક ગામના બધા વ્યવહારોનું નિયંત્રણ કરવાની સત્તા કેન્દ્ર કે પ્રાંતના હાથમાં છે. ગામવાસીઓને કોઈ પણ નિર્ણય કરવાનો અધિકાર નથી. બહારથી પોતાના ગામમાં ખાંડની આયાત કરવી કે નહીં, એ આજે ગામજનો નક્કી કરી શકતા નથી. સ્વરાજ્યના બધા અધિકાર આને લઈને કેન્દ્રસત્તામાં જ સમાવિષ્ટ થયેલા છે; ગામોને કશો જ અધિકાર ન મળે. ગામડાંઓને ફક્ત ઝાડુ મારવાનો જ અધિકાર છે.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

કેન્દ્રીકરણનો દોષ

એક જ કેન્દ્રમાં જ્યાં સત્તા કેન્દ્રિત થયેલી હોય ત્યાં મહત્ત્વાકાંક્ષી લોકોને પોતાના હાથમાં સત્તા લેવાની ઇચ્છા થાય છે. બહુ થોડા લોકો જ કામ કરી શકે, બાકીના લોકોની અક્કલ કામ કરી શકતી નથી એવું થોડું જ છે? આજે ગામોને રસ્તા તૈયાર કરવાનો તથા ઝાડુ મારવાનો જ અધિકાર માત્ર છે. એનો અર્થ એ કે, તેઓના હાથ કામ કરી શકે છે, તેઓને માથું છે જ નહીં, એમ માનવામાં આવે છે. આવી પરિસ્થિતિમાં ગામડાંઓને કામ કરવાનો ક્યાંથી ઉત્સાહ થાય?

અન્નવસ્ત્રાદિ મુખ્ય વસ્તુઓનું નિયંત્રણ કરવાનો અધિકાર ગામડાંઓને મળવો જોઈએ અને એવાં પ લાખ ગામડાંઓનું એક સંઘરાજ્ય — એક સંમીલિત સરકાર નિર્માણ થવી જોઈએ. પ્રત્યેક ગામ એ સંઘરાજ્યમાં પોતપોતાની બુદ્ધિ અનુસાર કામ કરશે. કેન્દ્ર સરકાર ફક્ત સલાહ આપશે. એ સલાહ માનવી કે ન માનવી તે ગામવાસીઓની ઇચ્છા ઉપર અવલંબે છે. આ રીતે ધારો કે બે–ચાર ગામડાંઓનું કામ બગડશે. પરંતુ આજે કામ બગડ્યું એટલે તે સારાય રાજ્યનું બગડે છે. પૂર્વે રાજાઓના હાથમાં સત્તા હોવાથી જે નુકસાન થતું ન હતું તે આજે થાય છે. કારણ કે તેઓના હાથમાં સર્વનું સઘળું બગાડવાની કે સારું કરવાની કશીય સત્તા નહોતી. આજની સરકાર બધું સારું કરી શકે અથવા બગાડી શકે. પાંચ વર્ષે ચૂંટાઈને નવી સરકાર આવી શકે છે, પણ જૂની સરકારનું ધોરણ નવી સરકારને આગળ ચલાવવું પડે અથવા તેમાંથી છૂટવા માટે લોહિયાળ ક્રાંતિ કરવી પડે. પરંતુ આવી ક્રાંતિ કંઈ વારે વારે કરી શકાય નહીં.

ગ્રામપંચાયતની કલ્પના

પ્રત્યેક ગામમાં એક ગ્રામપંચાયત હશે અને પ્રાંત માટે પ્રતિનિધિ ચૂંટવાનો હક તેમને મળશે. ગ્રામપંચાયતના જ હાથમાં બધી સત્તા હશે અને કેન્દ્ર–સરકારના હાથમાં નામમાત્ર સત્તા રાખવામાં આવશે. કેન્દ્રસત્તા સલાહ આપવાનું કામ કરશે અને રેલવે-કારભાર, પરદેશ સંબંધ વગેરે પર તેનું નિયંત્રણ હશે. મહત્ત્વાકાંક્ષી લોકોમાં સત્તા સંપાદન કરવાની બાબતમાં આજે જે ઉત્સાહ દેખાય છે એ તે વખતે દેખાશે નહીં. કારણ કે પ્રાંત અથવા કેન્દ્ર–સરકારના હાથમાં વિશેષ અધિકાર રહેશે જ નહીં. બધી સત્તા ગામડાંમાં રહેશે અને 'પંચ ત્યાં પરમેશ્વર' એ નિયમ પ્રમાણે ગ્રામપંચાયતનું કામ ચાલશે. આ બધી રાજ્યવ્યવસ્થા અહિંસાની છે. આ જ ખરું અહિંસક સ્વરાજ્ય છે.

(નેતરહાટ (બિહાર)માં આપેલા પ્રવચનમાંથી)

ભાવના બળની રાષ્ટ્રીય શક્તિ

[તા. ૨–૬–'૫૩ના રોજ અંગ્રેજોની રાણી એલિઝાબેથ – ૨ નો રાજ્યાભિષેક થયો. અંગ્રેજ પ્રજાએ ભાન તો નહીં પણ કોથળી ભૂલીને — અબજો રૂપિયાને ખર્ચે — એ મહોત્સવ ઊજવ્યો. બહારના માણસને — અંગ્રેજોમાંના જ ઘણાને — એ બધું વધારેપડતું લાગે એવું હતું અને લાગ્યું છે. છતાં એ બધા ઠાઠમાઠથી ભિન્ન કોઈને આંજવાની વાત તો તેમાં હતી નહીં; કારણ કે, એથી અંજાય એવું કોઈ રહ્યું નથી. એટલે એ બધા પાછળ શી ભાવના કામ કરી રહી છે, તે તો અંગ્રેજોમાંના જ કોઈ વિચારક લોક કહે તો જ ખબર પડે. 'ટાઇમ્સ' ની કેળવણી વિષયક પૂર્તિના (તા. ૨૯ મે, ૧૯૫૩) અગ્રલેખમાં એની ઝાંખી થાય છે. તેમાંથી થોડા ઉતારા નીચે આપ્યા છે.

સમગ્ર પ્રજાના હૃદયમાં કોઈ પણ એક સમાન રાજકીય ભાવના વ્યાપક હોય, એ કેવી મોટી કીમતી વસ્તુ છે, એ અંગ્રેજ સમાજશાસ્ત્રીઓ અને રાજનીતિજ્ઞો બરાબર જાણે છે. આપણી પ્રજામાં સ્વરાજ્ય પછી આખી પ્રજાને એકત્રિત કરનાર — એક સમાન ધબકારે ઉછાળનાર — કોઈ વ્યાપક ભાવના છે કે કેમ, એ આપણા સમાજશાસ્ત્રીઓ અને રાજનીતિજ્ઞોએ શોધવાનો અગત્યનો વિષય ગણાય.]

"જે યુવાન સ્ત્રીનો મંગળવારને રોજ રાજ્યાભિષેક થવાનો છે, તે એક રહસ્યના હાર્દમાં સ્થિત થયેલી છે. . . . રાજભાવના અંગ્રેજ પ્રજાની અંદર એક મોટી અને હિતકર શક્તિ ધરાવે છે. એ શક્તિનો વિકાસ હમણાં હમણાં થયો છે. આપણી કેટલીક

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

સંસ્થાઓ આધુનિક જમાનાની જટિલતાઓ હેઠળ નબળી પડતી ગઈ છે. આપણી પાર્લમેન્ટ વિષે કાંઈક અંશે એવું વિધાન કરી શકાય. પરંતુ રાજભાવના તો વિક્ટોરિયા રાણીના દિવસોથી માંડીને નવાઈ પમાડે તે રીતે આગળ આગળ ટકવાતી ગઈ છે. પ્રજાને એકત્રિત કરનાર અંગ તરીકે, તથા સુજ્ઞજનના સ્વીકૃત દૃષ્ટાંત તરીકે તેની અસર વધતી જ ચાલી છે; ત્યારે બીજું ઘણું શંકામાં પડી ગયું છે. પ્રતિષ્ઠા અને સંમાનને પાત્ર એવાં દેવળ, ઉમરાવવર્ગ, વગેરે ઘણાં જૂનાં અને શક્તિશાળી બળોએ આ પ્રક્ષુબ્ધ જમાનામાં પોતાના પાયા ડગમગી ગયેલા જોયા છે; પરંતુ રાજભાવના તો વૈજ્ઞાનિક કે સામાજિક ચકાસણી માટે તે બધા જેટલી જ ખુલ્લી હોવા છતાં, લોકોનાં હૃદયમાં કદી ન હતું તેટલું વધુ મોટું સ્થાન પ્રાપ્ત કરતી જાય છે. . . .

"એટલે મંગળવારના બાહ્ય ભપકા અને ઉજવણી પાછળ એક ઊંડી ધાર્મિક ભાવના રહેલી હશે. રાણી, સહકુટુંબ, પોતાનાં પ્રજાજનો માટે જીવનનો એવો નમૂનો રજૂ કરતી હોય છે કે જેને તેઓ રાજીખુશીથી ઉત્તમ તરીકે સ્વીકારી લે છે. આ બીના વિદ્યાર્થીઓના દરેક શિક્ષકે સમજવી જોઈએ. યુવાન રાણી માટેની લોકોની ભાવનામાં રહેલી આ ધાર્મિક વૃત્તિને ઉત્તેજન આપવું જોઈએ; કારણ કે, આ નિત્ય સરકતા વિશ્વમાં એ કાંઈક એવી વસ્તુ છે કે જેના ઉપર કશું રચી શકાય. પ્રજાકીય તાકાતનો એ એક અનામત ભંડાર છે કે જે કોઈ ભવિષ્યના ગંભીર ભયને પ્રસંગે તારક બળ બની શકે. ખ્રિસ્તી ધર્મની ભાવનાને એ ભાવના અજાણી નથી; ઊલટી તે તેના જ અંશ રૂપ છે. તેમ જ તેની પાછળ બીજી કોઈ ગણતરીની હિસાબી વૃત્તિ નથી. રાણી માટેની આ લોકભાવના આપણા જમાનામાં સ્વીકારાયેલા અને જિવાયેલા રાજધર્મનું સુફળ છે."

ગો૦

કેનોપનિષદનો સ્વાધ્યાય—૯

દેવો એમ જ માનતા હતા કે, આ સચરાચર સૃષ્ટિ એ આપણો જ મહિમા છે, આપણો જ જય છે. પરંતુ તેઓને અંતરમાં કાંઈક એવું લાગતું કે જે તેમને જ સમજાતું નહીં : પોતાનો જ જય છે માનતાં છતાં, તેમાં સવાલ થયા કરતો. મતલબ કે, ઇંદ્રિયોનો અનુભવ માણસને સત્ય વિષેની જિજ્ઞાસા આગે પૂરો સમાધાનકારક નથી બની શકતો. એટલે સત્યની ખોજ આગળ ચાલે જ. 'કિમિદં યક્ષમ્'ની વાતમાં આગળ દેવો આ ખોજમાં પડતા વર્ણવ્યા છે.

૨

અગ્નિ તપાસ કરે છે

પહેલો અગ્નિદેવ તપાસ કરવા જાય છે; દેવો તેને એ કામ સોંપે છે :

तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति । तथेति ॥३॥

પદાર્થ

તે = તેઓ, તે દેવો અગ્નિમ્ = અગ્નિને; અગ્નિ પ્રત્યે અબ્રુવન્ = બોલ્યા; કહ્યું જાતવેદઃ = હે જાતવેદ, હે અગ્નિ, એતદ્ = એ; પેલું વિજાનીહિ = વિશેષ કરીને જાણો, તપાસી કાઢો કિમ્ = શું, કયું, કેવું એતદ્ = એ પેલું યક્ષમ્ = અજાણ વસ્તુ, દૈવત કે બલા ઇતિ = કે. તથા = તેમ, તે પ્રમાણે; વારુ ઇતિ = કે.

અન્વય

તે અગ્નિમ્ અબ્રુવન્, હે જાતવેદઃ, એતદ્ કિમ્ યક્ષમ્ ઇતિ એતદ્ વિજાનીહિ। (અગ્નિઃ ઉવાચ) તથા ઇતિ ।

અર્થ

તેઓએ (દેવોએ) અગ્નિને કહ્યું, હે જાતવેદ, એ યક્ષ કોણ છે, (આ વળી શું છે), તે તમે જાણી આવો — તપાસ કરો.

(અગ્નિએ જવાબ આપ્યો,) ભલે, તેમ (કરું છું).

[અગ્નિ 'જાતવેદ' છે; એટલે કે તે જન્મથી જ જ્ઞાનમય છે. તે અગ્નિનાં અનેક નામોમાંનું એક મહાનામ છે. તેમાં અગ્નિની એક સ્તુતિ રહેલી છે; દેવો તેને પહેલું તપાસવા જવાનું કેમ કહે છે તેનું સૂચન છે. અગ્નિ દેવોના મુખ કહેવાય છે. બધા દેવોને આહુતિ કે બલિ મળે તે અગ્નિ વાટે મળે છે.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

અગ્નિ તૈયાર થઈને તપાસ કરવા નીકળે છે:]

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥ ४ ॥

પદાર્થ

तद् = તે (યક્ષ) ભણી अभ्यद्रवत् = દોડી ગયો; ઝટ પહોંચ્યો; तम् = તેને (અગ્નિને) अभ्यवदत् = (તે યક્ષે) કહ્યું – कः = કોણ असि = છે, छुं इति = કે, એમ; अग्निः = અગ્નિ वा = અથવા अहम् = હું अस्मि = છું इति = કે, એમ अब्रवीत् = બોલ્યો; કહ્યું जातवेदाः = જાતવેદ વા = અથવા अहम् = હું अस्मि = છું इति = કે; એમ.

અન્વય

(सः) तद् अभ्यद्रवत् । (तद्) तम् अभ्यवदत् – (त्वम्) कः असि इति । (सः) अब्रवीत् – अहम् अग्निः अस्मि इति वा अहम् जातवेदाः अस्मि इति वा ॥

અર્થ

તે (યક્ષ) તરફ (અગ્નિ) દોડી ગયો. તેને (તે યક્ષે) કહ્યું — પૂછ્યું, 'તું કોણ છે?' અગ્નિએ કહ્યું — જવાબ આપ્યો, 'હું અગ્નિ છું અથવા તો હું જાતવેદ છું.'

[બે વચ્ચે સંવાદ આગળ ચાલે છે:—]

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ ५ ॥

પદાર્થ

तस्मिन् = તેમાં; તેવી જાતનામાં त्वयि = તુંમાં, તારામાં किम् = શું वीर्यम् = વીરતા; બહાદુરી; શક્તિ इति = કે, એમ अपि = પણ इदम् = આ सर्वम् = બધું दहेयम् = બાળું; (બાળી શકું; બાળીને ભસ્મ કરી દઉં) यद् = જે इदम् = આ पृथिव्याम् = પૃથ્વીમાં इति = કે, એમ.

અન્વય

तस्मिन् त्वयि किं वीर्यम् इति (तम् अभ्यवदत्)। (सः अब्रवीत्) – यद् इदम् पृथिव्याम् (अस्ति, तद्) इदम् सर्वम् अपि दहेयम् इति ॥

અર્થ

એવા — એ પ્રકારના (જબરા) તારામાં કઈ શક્તિ રહેલી છે? (–એમ યક્ષે તેને પૂછ્યું.)

(તેણે જવાબ આપ્યો:) 'આ જે પૃથ્વીમાં છે તે આ બધાને હું બાળીને ભસ્મ કરી દઉં, એ (એ વીર્ય મારામાં છે).'

[એવા અભિમાનના જવાબ પરથી યક્ષ કસોટી કરવા માટે આગળ જાય છે —]

तस्मै तृणं निदधावेतद् दहेति । तदुपप्रेयाय सर्वजवेन । तन्न शशाक दग्धुम् । स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति ॥ ६ ॥

પદાર્થ

तस्मै = તેને; તેની આગળ तृणम् = તરણું; ઘાસનું તખણુલું निदधौ = મૂક્યું एतद् = એને दह = બાળી મૂક इति = કે, એમ. तद् = તેની પાસે उपप्रेयाय = ગયો, પ્રયાણ કર્યું सर्वजवेन = પૂરા વેગથી; પૂરા જોરભેર; ઝપાટાબંધ. तद् = તેને न = ના, નહીં शशाक = શક્તિમાન થયો, શક્યો दग्धुम् = બાળવા માટે, બાળી મૂકવામાં. सः = તે (અગ્નિ). ततः = ત્યાંથી; તે (તરણા કે યક્ષ) આગળથી एव = જ निववृते = નિવૃત્ત થયો; ખસી ગયો; પાછો ગયો न = ના; નહીં एतद् = એને अशकम् = હું શક્તિમાન થયો विज्ञातुम् = જાણવાને — પામવાને માટે यद् = જે एतद् = એ, પેલું यक्षम् = યક્ષ, દૈવત કે બલા इति = કે, એમ.

અન્વય

(तद् यक्षम्) तस्मै तृणं निदधौ, एतद् दह इति (तम् अभ्यवदत्)। (सः) तद् सर्वजवेन उपप्रेयाय। (सः) तद् दग्धुं न शशाक । सः ततः निववृते एव । यद् एतद् यक्षम् इति एतद् विज्ञातुम् न अशकम् ॥

અર્થ

(તે યક્ષે) એની સામે એક તણુખલું મૂક્યું (અને તેને કહ્યું કે,) તું એને બાળી નાંખ જોઈએ.

(અગ્નિ) તે (તણુખલા) તરફ પુરજોશથી પહોંચ્યો. (પરંતુ) તે તેને બાળી

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ના શકયો. (એમ એ ભોંઠો પડયો:) એ યક્ષ જે કાંઈ હોય તે હું જાણી ન શકયો, એમ (સમજીને) તે ત્યાંથી (તે યક્ષ આગળથી કે તેને જાણવાના કામમાંથી) નિવૃત્ત થઈ ગયો, (અને ત્યાંથી પાછો ફર્યો.)

[પહેલવહેલો અગ્નિને એક નવો જ અનુભવ થયો કે, પોતે માને છે તેવી શક્તિ પોતામાં નથી. એટલે હતવીર્ય બની તે પાછો ચાલ્યો ગયો. એની શક્તિ બ્રહ્મની શક્તિ છે; બ્રહ્મ છે તો બધું છે. અગ્નિનું અગ્નિપણું બ્રહ્મને લઈને છે. એ બ્રહ્મ જ્યારે તેમાંથી હઠીને અલગ ઊભું હોય, તો અગ્નિ જુદો કાંઈ ન કરી શકે. પણ અગ્નિને તો આ શું છે, આનો ભેદ શો, એ કાંઈ સમજાયું નહીં. તે તો બની જઈને પાછો જ ચાલ્યો ગયો.

એટલે દેવોએ દેવોમાં એથી મહાન ગણાય તેવા વાયુદેવને કહ્યું કે, તમે તપાસ કરો કે આ શું યક્ષ છે. એટલે અગ્નિ પેઠે વાયુ તેની પાસે જાય છે, અને એમ જ બનીને પાછા પડે છે. પછીના ચાર મંત્રમાં એ કહે છે, તે હવે પછી.]

૧૭-૮-'૫૭ **મગનભાઈ દેસાઈ**

સાભાર સ્વીકાર

સસ્તું સાહિત્યવર્ધક કાર્યાલય, અમદાવાદ તરફથી:

શ્રી ભજનસાગર ભા. ૧-૨ [લેગા]: અખાથી હોથી સુધીના ભક્ત-કવિઓનાં ભજનોમાંથી ચૂંટેલાં ભજનોનો સંગ્રહ, કિં. રૂ. ૩-૮-૦; **વડીલોની વાતો:** લે૦ પ્રો૦ હીરાલાલ લલ્લુભાઈ કાળ, કિં. રૂ. ૦-૧૨-૦; **પાકશાસ્ત્ર:** લે૦ કાશીબહેન ઉર્ફે ગજરાબહેન મણિભાઈ દેસાઈ, કિં. રૂ. ૧-૧૨-૦; **બરાસ-કસ્તૂરીની વાર્તા:** પ્રયો૦ શિવમ્ સુંદરમ્, કિં. રૂ. ૦-૮-૦; **નરસિંહ મહેતાનાં ભજનો:** સંપા૦ હરસિદ્ધભાઈ દ્વિવેદિયા, કિં. રૂ. ૯-૧૨-૦.

ભારતી સાહિત્ય સંઘ લિ૦, અમદાવાદ તરફથી:

માનવતાનાં ઝરણાં: લે૦ ગણેશ વાસુદેવ માવળંકર, કિં. રૂ. ૨-૮-૦; **મંગળસૂત્ર:** લે૦ ગુણવંતરાય આચાર્ય, કિં. રૂ. ૫-૮-૦; **ઇન્દિરાની આપવીતી:** લે૦ શિવશંકર પ્રાણશંકર શુક્લ, કિં. રૂ. ૨-૮-૦; **રોજની રામાયણ:** લે૦ રંભાબહેન ગાંધી, કિં. રૂ. ૨-૮-૦.

અન્ય પ્રકાશકો તરફથી:

ષષ્ટિશતક પ્રકરણ: લે૦ નેમિચન્દ્ર ભંડારી, સંપા૦ ભોગીલાલ જ. સાંડેસરા, મહારાજા સયાજીરાવ વિશ્વવિદ્યાલય, વડોદરા, કિં. રૂ. ૫-૦-૦; **મહાભારત અને ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર:** લે૦ ઉપેન્દ્રરાય જયચંદભાઈ સાંડેસરા, પ્રકા૦ ડો. ભોગીલાલ જયચંદભાઈ સાંડેસરા, - વડોદરા કિં. ૧-૨-૦; **The Fountains:** લે૦ લક્ષ્મીનારાયણ શાહુ, પ્રકા૦ સર્વન્ટ્સ ઓફ ઇન્ડિયા સોસાયટી, કટક, કિં. રૂ. ૧-૮-૦; **પ્રાથમિક કેળવણીની પગદંડી:** પ્રકા૦ પ્રિયદત્ત મોતીરામ જોષી, સુરત જિલ્લા સ્કૂલબોર્ડ, સુરત, કિં. રૂ. ૩-૦-૦; **ગીતા, કર્મયોગ और सत्याग्रह:** અનુ૦ શ્રીપાદ જોષી, પ્રકા૦ 'નવભારત' પ્રકાશન, પૂના-૨, કિં. રૂ. ૧-૦-૦; **ભારતની પ્રાયોગિક ભૂગોળ - ભાગ ૩ જો:** તૈયાર કરનાર: એક અનુભવી સ્નાતક, પ્રકા૦ ધનસુખ બી. ભટ્ટ, દક્ષિણામૂર્તિ ભવન, ભાવનગર, કિં. રૂ. ૦-૧૧-૦. **વ્રત અને કથાઓ:** લે૦ પ્રકા૦ કૃષ્ણપ્રસાદ ભટ્ટ, પ્રાપ્તિસ્થાન: મહાદેવ રામચંદ્ર બનગુપ્તે, અમદાવાદ, કિં. રૂ. ૨-૦-૦; **શ્રી રામદેવ પીર ચરિત્ર:** લે૦ ઉપર મુજબ, પ્રકા૦ મહાદેવ રામચંદ્ર બનગુપ્તે, અમદાવાદ, કિં. રૂ. ૧-૮-૦; **નવી દૃષ્ટિ:** લે૦ પ્રકા૦ મંગળદાસ જ૦ ગોરધનદાસ, પ્રાપ્તિસ્થાન: એન. એમ. ઠક્કરની કં૦, મુંબઈ, કિં. રૂ. ૧-૮-૦; **જૈનદર્શન [ષડ્‌ખંડાત્મક સંપૂર્ણ]:** લે૦ મુનિ ન્યાયવિજયજી, પ્રકા૦ શ્રી હેમચન્દ્રાચાર્ય, જૈન સભા, પાટણ, કિં. રૂ. ૩-૦-૦; **મગદળ:** લે૦ ચિનુભાઈ પુ. શાહ, પ્રકા૦ ગુજરાત વ્યાયામ પ્રચારક મંડળ, રાજપીપળા, કિં. રૂ. ૦-૧૦-૦; **સામ્યયોગી વિનોબા:** પ્રયોજક: પ્રબોધ ચોકસી, નારાયણ દેસાઈ, પ્રકા૦ પુસ્તકાલય સહાયક સહકારી મંડળ લિ૦, વડોદરા, કિં. રૂ. ૧-૮-૦; **ભૂમિદાન - ગીતા:** લે૦ રમણલાલ ચૂનીલાલ પંડ્યા, પ્રકા૦ વડોદરા જિલ્લા સર્વોદય યોજના, સર્વોદય આશ્રમ, સાંઢાસાલ, કિં. આપી નથી; **કેળવણી:** લે૦ શ્રી માતાજી, અનુ૦ સુન્દરમ્, પ્રકા૦ શ્રી અરવિંદ કાર્યાલય, આણંદ, કિં. રૂ. ૧-૮-૦; **ખૂની ખવીસ:** લે૦ બાબુરાવ જોષી, પ્રકા૦ જીવનલાલ અમરશી મહેતા, અમદાવાદ, કિં. હિંદ માટે રૂ. ૦-૧૨-૦, પરદેશ માટે રૂ. ૧-૨-૦.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

પેનિસિલિન વગેરે 'રામબાણ' દવાઓ વિષે ચેતવણી

તમારું બાળક તાવલું દેખાય કે તરત તમે ડૉક્ટર પાસે પેનિસિલિનનું ઇંજેક્શન અપાવી દેવા ધરછો છો; તમારા ગળામાં છોલાયા જેવું લાગે કે તરત તમે પેનિસિલિનની ટીકડી મોંમાં ચૂસવા લાગો છો; અને કોઈ પડોશી રિબાતો હોય તો તમારી પાસે વધેલી ઑરિયોમાઇસિનની ટીકડીઓ તરત તમે તેને ધરી દો છો.

પણ આ બધું કરીને તમે પીડાને નોતરી રહ્યા છો ! યોગ્ય રીતે, યોગ્ય કારણસર વપરાય તો જ આ દવાઓ જીવનરક્ષક છે. પરંતુ અયોગ્ય રીતે વાપરો તો તે ખરેખર જોખમકારક છે.

પાંચ 'અદ્‌ભુત દવાઓ' ('વંડર ડ્રગ્ઝ') અત્યારે વપરાશમાં આવી છે—પેનિસિલિન, સ્ટ્રેપ્ટોમાઇસિન, ઑરિયોમાઇસિન, ટેરામાઇસિન, અને ક્લોરોમાઇસિન. આ દવાઓ જાત જાતના રોગો ઉપર કામમાં આવે છે. પરંતુ તે દવાઓ બધા રોગો ઉપર કામની નથી. તેમાંની એકેથી શરદીના, કે ઇન્ફ્લુએન્ઝાના, કે બીજા રોગોના ચેપી અણુઓ નાશ પામતા નથી. છતાં ઘણા લોકો તાવવાળી શરદી વગેરે સામાન્ય કે નિદાન થયા વિનાની બીમારીઓ માટે તરત એ દવાઓ વાપરવા લાગે છે. પરંતુ હવે પછી તમને આ દવાઓ વાપરવાનું મન થાય ત્યારે એ વાત યાદ રાખજો કે—

(૧) આવી દવાઓ ફાવે તેમ વાપરવાથી રોગોની સામે થવાની શરીરની પોતાની તાકાત બંધાતી અટકે છે. અને એ રીતે તમારા શરીરમાં રોગો સામે સુરક્ષિત બનવાની સ્વાભાવિક શક્તિ ઓછી થઈ જાય છે.

અલબત્ત, આપણે ગળું છોલાવા સામે, કાકડા સૂજવા સામે, કે કાનના સડા સામે જીવનભર કામ દે એવી સુરક્ષિતતા હરગિજ નથી ઊભી કરી શકતા; છતાં આપણું શરીર કુદરતી ક્રમમાં આ બધી બીમારીઓ સામે કંઈક સુરક્ષિતતા ઊભી કરતું રહે છે જ. જેમ જેમ આપણે ઉંમરે મોટા થતા જઈએ છીએ, તેમ તેમ એ બધા રોગોના હુમલા ઓછા થતા જાય છે, એ તેનો પુરાવો છે. પરંતુ આજનાં બાળકોની બાબતમાં તો સામાન્ય બીમારીનો પણ શરીરની પોતાની સંરક્ષક તાકાતથી સામનો થાય તે પહેલાં દવાઓથી તે બીમારીઓનો સામનો કરવામાં આવ્યો હોય છે. એટલે મોટપણે એ બાળકોને શું થશે, એની માત્ર કલ્પના જ થઈ શકે.

(૨) આ 'રામબાણ' ગણાતી દવાઓની તાકાત તદ્દન મોળી પડી જાય એ દિવસ તમે નજીક લાવી રહ્યા છો. આજે જ કેટલાક જંતુઓ સામે આ દવાઓ બિનઅસરકારક બનતી જાય છે. એની કહાણી આ પ્રમાણે છે: પ્રયોગશાળાઓમાં ખીલવવામાં આવતા જંતુઓના દરેક જથામાં જુદી જુદી તાકાતવાળાં કરોડો જંતુઓ હોય છે. તેમના ઉપર યોગ્ય દવા નાખવામાં આવે, તો તેમાંનાં ઘણાંખરાં નાશ પામી જાય છે. પરંતુ તેમાંનાં થોડાંક પણ જો એ દવાની અસરનો સામનો કરી શકે, તો તેઓ પછી વધવા માંડે અને એ દવાની અસરથી મુક્ત એવી એક નવી પેઢી ઊભી થાય અને એ રોગને ફેલાવે. ગૂમડાં, કોહવાટ અને પાકું ઊભું કરનાર જંતુ ('ગોલ્ડન સ્ટેફિલોકોકસ') હવે ઝડપથી પેનિસિલિન તથા નવાં '–માઇસિનો'ની અસરનો સામનો કરી શકે એવો બનતો જાય છે. શરૂઆતમાં જોકે પેનિસિલિન એ દશ જંતુમાંથી નવ સામે અસરકારક હતું, તે હવે આજે પાંચમાંથી ત્રણ સામે નિષ્ફળ નીવડે છે.

કેટલાંય સૂક્ષ્મ જંતુઓ હવે સ્ટ્રેપ્ટોમાઇસિનની સાથે જીવતાં શીખવા લાગ્યાં છે ! કેટલાક કિસ્સાઓમાં તો એ દવાનો ભાગ આપ્યા પછી એ દવાનો સામનો કરતા જંતુઓ શરીરમાં ૭૨ કલાકમાં જ જડી આવે છે.

(૩) તમારી મેળે આ દવાઓ વાપરવા જતાં એવું બનવાનો સંભવ છે કે, તમે ફાયદા કરતાં નુકસાન જ વધારે કરો. રોગના જંતુઓ, કે જે આ દવાઓનો મોટો ભાગ આપવાથી નાશ પામી જાય, તે જંતુઓ એ દવા ઓછા પ્રમાણમાં આવે તો તેનો સામનો કરે એટલું જ નહીં, પણ તેના વડે જ વધી જાય ! ખાસ કરીને આ દવાઓની ટીકડીઓથી એમ જ બને છે. પેનિસિલિન ટીકડીમાં ૨૫,૦૦૦ યુનિટ પેનિસિલિન હોય, જ્યારે પેનિસિલિનના એક ઇંજેક્શનમાં ૩ લાખથી ૫ લાખ યુનિટ પેનિસિલિન હોય. હવે જે જંતુઓ પેનિસિલિનના ઇંજેક્શનથી ખરેખર નાશ પામી જાય, તે ટીકડીના અલ્પ પેનિસિલિન વડે ઊલટા રીઢા બની જાય !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

વૈજ્ઞાનિકોને એવું જાણવા મળ્યું છે કે, જંતુઓના કેટલાક બદલાયેલા વર્ગો આવી દવાઓની હાજરીમાં જ વધી શકે છે. મૂત્રમાર્ગના અમુક જંતુઓ પેનિસિલિન વડે જ માતે છે. મેનિન્જાઇટીસ રોગનાં જંતુઓના કેટલાક ભિન્ન પ્રકારો સ્ટ્રેપ્ટોમાઇસિન ખાઈને જ વધી શકે છે!

(૪) આ દવાઓની આડ-અસરોનું પ્રમાણ વધતું જાય છે. આજે બિનજરૂરીપણે એ દવાઓ લેવાથી કોઈ ગંભીર બીમારી વખતે એ દવા પચાવવાની – સહન કરવાની શક્તિ તમે ગુમાવતા જાઓ, એમ પણ બને છે. દર પચીસમાંથી એક માણસ એવો હોય છે કે જેનું શરીર પેનિસિલિન પહેલપ્રથમ લેવામાં આવે ત્યારે તેને સહન નથી કરી શકતું; અર્થાત્ તેને પગને તળિયે ચેળ ઊપડે છે, અથવા તો આખે શરીરે દીમણાં થઈ આવે છે, અથવા ગળું બંધ થઈ જઈ તે મરણ-તોલ થઈ જાય છે. પરંતુ પેનિસિલિન વારંવાર લેવામાં આવે, તો દર દશ માણસમાંથી એક માણસ એવી આડ-અસરને પાત્ર બની રહે છે. એક સેલ્સમેનને શરદી થઈ. બીજે દિવસે એક સભામાં તેને હાજરી આપવાની હતી. તેણે ડૉક્ટર પાસે પેનિસિલિનનું ઇંજેક્શન માગીને લીધું. દશ દિવસ બાદ તેને ૧૦૪ ડિગ્રી જેટલો તાવ આવ્યો અને આખે શરીરે એવી ચૂંટ ઊપડી કે તે વેદનાથી ચીસો પાડવા લાગ્યો. બે અઠવાડિયાં તેને પથારીમાં રહેવું પડ્યું – અને તેની શરદી તો પેનિસિલિનથી મટી જ નહીં.

મલમરૂપે ચામડી ઉપર પેનિસિલિન લગાડવાથી કે ગળા માટે તેની ટીકડીઓ ચૂસવાથી આવી અવળી અસર ઊભી થતી જાય છે, એમ જણાયું છે. કેટલાક લોકો કાપો પડે કે ડંખ લાગે ત્યારે તરત એ મલમ ચોપડી દે છે. તમારી પાસે એ મલમ હોય તોપણ ડાક્ટર ખાસ પરવાનગી ન આપે ત્યાં સુધી હરગિજ ન વાપરતા.

(૫) જે રોગો ઉપર આ દવાઓ અસર નથી કરતી, એ રોગો માટે પણ એ દવાઓ વાપરીને એ દવાઓનો પણ આપણે મોટો બગાડ કરીએ છીએ. ૧૫૦ કિસ્સાઓના એક તાજેતરમાં કરવામાં આવેલા અભ્યાસ ઉપરથી જાણવામાં આવ્યું છે કે, ઇન્ફ્લુએન્ઝાના હુમલા વખતે ઓરિયોમાઇસિન કે પેનિસિલિન લેનારા દરદીઓ પણ તે દવાઓ ન લેનારા દરદીઓ જેટલા સમય સુધી જ બીમાર રહ્યા હતા.

તમારી બીમારી કયા જંતુથી થઈ છે એ નક્કી થાય, તો જ તેની દવા પણ નક્કી થાય. માત્ર અમુક સમાન બાહ્ય ચિહ્નો ઉપરથી તમે રોગનું મૂળ નક્કી ન કરી શકો. અમુક ભાઈને ગળું સૂજી આવ્યું ત્યારે પેનિસિલિનથી તરત બેસી ગયું. પણ તેથી બીજા કારણે ગળું સૂજી આવે ત્યારે બીજા ભાઈને પેનિસિલિનથી તે ન પણ મટે. એટલે ડૉક્ટરની પાસે પણ ટેલિફોનથી તમે પ્રિસ્ક્રિપ્શન માગવાનું છોડી દેજો. ડૉક્ટરો તો હવે જુદી જુદી પરિપદો દ્વારા આપવામાં આવતી ચેતવણીઓ ઉપરથી આ દવાઓ ફાવે તેમ વાપરતાં રોકાતા જાય છે; પણ તમે તમારી મેળે અમુક લક્ષણ ઉપરથી અમુક રોગ માની લઈ, ડૉક્ટરની પાસે એ દવાઓનો ડોઝ ન માગી લેતા!

('રીડર્સ ડાઇજેસ્ટ' જુલાઈ, ૧૯૫૩)

ગો૦

તા. ૬.

કાર્ડિફ; વેલ્સ, ૧૫ જુલાઈ ૧૯૫૩

બ્રિટિશ મેડિકલ એસોસિયેશનની અહીં મળેલી વાર્ષિક બેઠકમાં જે અનેક નિબંધો વંચાયા, તેમનો પ્રધાન સૂર હતો કે, ભવિષ્યના ઇતિહાસકારો રોગો સામેની માણસની યુગ-જૂની લડાઈમાં પેનિસિલિન, સ્ટ્રેપ્ટોમાઇસિન, ક્લોરોમાઇસિન, ઓરિયોમાઇસિન અને ટેરામાઇસિન એ દવાઓના યુગને એક ઝળહળ પરંતુ ટૂંકો ચરણગાળો જ ગણશે.

કેટલાય વિખ્યાત દાક્તરોએ જણાવ્યું કે, તેમના કેટલાક દરદીઓ હવે એવાં જંતુઓ ધરાવતા થયા છે કે જે અત્યાર સુધીની ઉપર જણાવેલી બધી 'એન્ટી-બાયોટિક' દવાઓનો સામનો કરી શકે છે. ડૉ. ફેરબ્રધરે (માંચેસ્ટર) જણાવ્યું કે, ગૂમડાં અને સોજા ઊભા કરનારાં સ્ટેફિલોકોક્સ જંતુઓમાંનાં ૬૦ ટકા હવે પેનિસિલિનનો સામનો કરતાં થઈ ગયાં છે. પેનિસિલિનની ક્રીમ કે જે ચામડીનાં દરદો ઉપર લગાડવામાં આવે છે, તે હરગિજ ન વાપરવી એવું કોર્નવૉલના ડૉ. ફ્રેડરીક એ. વિટલોકે જણાવ્યું હતું.

('ન્યૂયૉર્ક ટાઇમ્સ' જુલાઈ ૧૬, ૧૯૫૩)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

કૅન્સર

કૅન્સર એ શું છે? ડાક્તરો શરીરના કોઈ ભાગમાં બહુ જ ઝડપથી વધતી જતી વિનાશકારક ગાંઠને લીધે થતા રોગને કૅન્સર તરીકે ઓળખે છે. સામાન્ય અર્થમાં કહીએ તો આવી 'નુકસાનકારક વૃદ્ધિ' એટલે જ કૅન્સર. કૅન્સર એ કોષપેશીઓ ('ટિશ્યુ')માં થતી નુકસાન-જનક વૃદ્ધિને લીધે થાય છે. શરીરની કોષપેશીઓ અત્યંત સૂક્ષ્મ કોષો ('સેલ')ના સમૂહની બનેલી હોય છે. લીવર, હૃદય, ફેફસાં, ઉદર અને બીજા બધા અવયવો જુદા જુદા આકારના કોષોને જુદી જુદી રીતે ગોઠવીને બનાવેલા હોય છે. તોયે આ બધા કોષોમાં અમુક મૂળભૂત સરખાપણું હોય જ છે. સૌથી મહત્ત્વની વાત એ છે કે, બધા જ કોષો પોતાનામાં અભિવૃદ્ધિ કરવાની શક્તિ ધરાવે છે. આ કાર્ય તેઓ જાતે વિભક્ત થઈ ને કરે છે. એક કોષ બેમાં વિભક્ત થાય, પછી બેના ચાર થાય, આમ એની સંખ્યામાં વધારો થતો જાય. સામાન્ય રીતે શરીરના અવયવોની પોતપોતાની જરૂરિયાત પ્રમાણે આ કોષોમાં થતી વૃદ્ધિની અમુક નિશ્ચિત મર્યાદા હોય છે. શરીરની નવી વૃદ્ધિ માટે અથવા ઘસાઈ ગયેલા અથવા નુકસાન પામેલા કોષોની ખાલી જગ્યા પૂરવા માટે શરીરના કોષો સતત વિભક્ત થતા જાય છે અને નવા કોષો બનતા જાય છે. દા૦ ત૦ જો તમે તમારી આંગળી પર કાપ મૂકો તો માંસમાં થયેલા જખમને રૂઝવવા અને ચામડીની મરામત કરવા કોષો ઝડપભેર વિભક્ત થવા માંડે છે; પછી એ કામ પૂરું થતાં તેઓ પાછા પોતાની સ્વાભાવિક ગતિએ વિભક્ત થવાનું ચાલુ કરે છે.

કેટલાક માણસોમાં આ જીવનક્રમ નિરંકુશ બની જાય છે. કોષોના વિભાગીકરણનું નિયંત્રણ કરતી જે ગૂઢ યંત્ર-ક્રિયા હોય છે, તે એકાએક ખોટકાઈ જાય છે. કોષોમાં ઝડપથી વૃદ્ધિ થવા માંડે છે, જે શરીરને સામાન્ય રીતે જરૂરી એવાં માંસ કે હાડકાંના કોષો બનાવવા માટે આવશ્યક નથી. તે શરીરને કશા ઉપયોગના જ હોતા નથી. તે સામાન્ય કોષો કરતાં બહુ જ ઝડપથી વિભક્ત થતા જતા હોય છે અને તેનો કશો ઢંગધડો જ હોતો નથી. આનું પરિણામ એ આવે છે કે, તેઓ નિરર્થક જથ્થા કે ગાંઠ રૂપે શરીરમાં અમુક ભાગમાં ખડકાય છે.

કેટલીક વાર આવી ગાંઠો જ્યાં એ થઈ હોય તે શરીરના ભાગમાં કાયમ રહે છે, ઘણી વાર તે ખૂબ વધી જાય છે અને બાજુના ભાગ પર દબાણ લાવે છે, પરંતુ તેને કશી ઈજા પહોંચાડતી નથી. આને 'ઉદાર કોષસમૂહ' કહેવામાં આવે છે. પણ કેટલીક વાર ગાંઠો કશી ઈજા કર્યા વિના એક જ સ્થળે પડી રહેતી નથી. તે જે ભાગમાં શરૂ થઈ હોય એ ભાગનો નાશ કરે છે અને પછી તે બીજા ભાગો પર ફેલાય છે; ત્યાં તે વધવા માંડે છે અને નવું નુકસાન પહોંચાડવા લાગે છે. આવી ગાંઠોને 'વિનાશકારક ગાંઠો' અથવા કૅન્સર કહેવામાં આવે છે. તે નાશ કરવામાં ખૂબ જ નિષ્ઠુર હોય છે.

કૅન્સર કોને થાય?

વૈજ્ઞાનિકોએ ખૂબ તનતોડ તપાસ કરી છે, પરંતુ તેઓ હજી પામી શક્યા નથી કે, શા માટે અમુક માણસોને કૅન્સર થાય છે અને બીજા માણસો શા માટે એ રોગના ભોગ બનતા નથી. ઘણાં વર્ષોના અભ્યાસ અને તપાસને અંતે એટલું તો અવશ્ય થઈ શકયું છે કે, કૅન્સર વિષેના ભ્રામક મતોનું નિવારણ થયું છે; તોયે હજી આ રોગનું મૂળ કારણ શોધી કાઢવું બાકી જ રહ્યું છે. આપણે જાણીએ છીએ કે, કોઈ જંતુ કે ચેપને લીધે આ રોગ થતો નથી. કૅન્સર એ ચેપી કે ઉપદ્રવકારક રોગ નથી. વળી હજી એવા પ્રમાણભૂત પુરાવા પણ મળ્યા નથી કે કૅન્સર એ વારસાગત મળતો રોગ છે. પરંતુ આપણે એટલું તો બરોબર જાણીએ છીએ કે, માણસના શરીરને મૃતપ્રાય કરી દેવામાં આ રોગ ઘણો જ આક્રમક છે. આ રોગની બાબતમાં મહત્ત્વની હકીકત એ છે કે, આ રોગનો અમુક હદ સુધી ફેલાવો થઈ ગયો હોય ત્યાર પછી પણ જો આધુનિક સારવાર-પદ્ધતિથી એની સામે ચાંપતાં પગલાં લેવામાં આવે તો જરૂર તેને મટાડી શકાય. એ રોગ હદ વટાવી જાય તો પછી હજી સુધી આપણી પાસે એવો કશો ઉપાય નથી જે એના દુર્ધર્ષ અને નુકસાનકારક ફેલાવાને અટકાવી શકે.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

તેથી કૅન્સરની સામે લડવા માટે આપણી પાસે એક જ માર્ગ છે કે, એને મટાડવા માટે નવાં નવાં આધુનિક સાધનો શોધતા રહેવું જોઈએ તથા આ રોગની શરૂઆત કેમ થાય છે અને એ રોગ પારખવાનાં ચિહ્નો કયાં છે એનો સ્પષ્ટ ખ્યાલ લોકોને આપવો જોઈએ.

વય, જાતિ, આર્થિક દશા કે સામાજિક પરિસ્થિતિ આ રોગની સામાન્યપણે થતી વૃદ્ધિમાં કશો ફેર કરી શકતાં નથી. આજ સુધી એવી માન્યતા પ્રચલિત હતી કે, પશ્ચિમના દેશોના જેટલો હિંદમાં આ રોગનો ફેલાવો નથી. પરંતુ હવે એ વાત પણ આધારભૂત મનાતી નથી. આજે આપણી આરોગ્યવિષયક સેવાપ્રવૃત્તિઓ દ્વારા એટલું તો નક્કી થયું છે કે, બીજા દેશોની માફક આપણા દેશમાં પણ આ રોગનો એટલો જ ફેલાવો છે.

કૅન્સર સામે ઝુંબેશ

કૅન્સર જેવા ભયાનક રોગ સામેની આપણી ઝુંબેશ ત્રણ નિશ્ચિત ધોરણે ચાલવી જોઈએ:

(૧) રોગોની પ્રારંભમાં જ જાણકારી કરવી અને એની તાત્કાલિક તથા અસરકારક સારવાર શરૂ કરવી.

(૨) કૅન્સર વિષેની શોધખોળ જારી રાખવી. કૅન્સર પારખવાની અને તેની સારવાર કરવાની આધુનિક પદ્ધતિઓમાં સુધારો દાખલ કરતા જવું અને આ રોગને ફેલાતો અટકાવી શકવા સમર્થ થઈએ એ સારુ, બની શકે તો, એ રોગનું મૂળ કયાં તત્ત્વોને આભારી છે તથા એ રોગ શી રીતે વૃદ્ધિ પામતો જાય છે, એનાં કારણો શોધી કાઢવાં.

(૩) કૅન્સરને લીધે સામાજિક કોયડાઓ ઊભા થાય એનો નિકાલ લાવવો જોઈએ. આ કોયડાઓ જુદી જુદી વસ્તીઓમાં અને પરિસ્થિતિઓમાં ભિન્ન ભિન્ન જ હશે; પણ એ બધા કોયડાઓ સામાન્યપણે નીચે પ્રમાણે હશે:—

(ક) રોગી માણસને વખતસરની મદદ અને તેની યોગ્ય સરવાર. (ખ) રોગને લીધે પીડા થતી હોય તેને ઓછી કરવાના ઉપાયો, અને (ગ) જે દર્દીઓનો રોગ મટાડી શકાય એવો હોય અને જે દર્દીઓનો રોગ મટાડી શકાય એમ નથી એવા સૌ દર્દીઓને રાખી શકાય એવી હૉસ્પિટલની જોગવાઈ.

(તા. ૧૨-૪-૧૯૫૬ ની રાતે ૯ વાગ્યે રાજકુમારી અમૃતકુંવરે આપેલા રેડિયો-વ્યાખ્યાનમાંથી ઉદ્ધૃત)

માસિક વિવેચન

સ્વ૦ કિશોરલાલભાઈ

આવતી ૬ઠ્ઠી તારીખે મુ૦ કિશોરલાલભાઈને ગયે એક વરસ થશે. સૌ એમને ભક્તિભાવથી યાદ કરીએ તે આપણી શ્રદ્ધાંજલિ આપીએ. તે વખતે તેમનું જીવનચરિત તૈયાર થઈને બહાર પડે છે, એની નોંધ લેતાં ખુશી થાય છે. વાચક તેની પ્રસ્તાવના સ્વામી આનંદે લખી છે તે આ અંકમાં ઉતારેલી જોશે.

આ જીવનકથા સૌને વાંચવા ભલામણ કરું છું. વિચારમાં શુદ્ધતા સાથે સ્વતંત્રતા અને નમ્રતા સાથે મક્કમતા, અને એ બધી વિભૂતિઓ સત્યની શોધને સમર્પાય, એ એમના સાધક જીવનની વિરલ ખાસિયત છે. એ જોવા અને સમજવામાં જ એક કીમતી કેળવણી રહેલી છે. તેથી કિશોરલાલભાઈની જીવનકથા યુવકોએ પણ ખાસ મનન કરવા યોગ્ય છે.

મ૦

બહુમતી અને સર્વસંમતિ

આ અંકમાં શ્રી વિનોબાનો એક રાજકીય વિચાર સમજવતા પ્રવચનનો લેખ છે—'પંચ ત્યાં પરમેશ્વર'. તેમાં જે મુદ્દો છે તે ટૂંકમાં ઉપરના મથાળામાં વર્ણવેલો છે તે છે. એ વિષે થોડીક ચર્ચા કરવી જરૂરી સમજું છું.

સૌની એકમતીથી કામ કરવાનું લોકશાહી પદ્ધતિને પસંદ નથી એમ નથી; તેને એ ઉત્તમ માને છે જ. બહુ કેટલીય બાબતમાં તે ન હોય તો લોકશાહી કામ કરતી થોભે છે. કેટલીક બાબતોમાં ઓછામાં ઓછી ૨/૩ કે ૩/૪ કે એવી વધુ પ્રમાણમાં બહુમતી જોઈએ તો જ કામ ચાલી શકે, એમેય કહેવાય છે. એમાં પણ એ તત્ત્વ કબૂલ કરાયું છે કે, બધા કે વધારેમાં વધારે સંમત હોય તે રીતે કામ કરવું, એ લોકશાહીની રીતનું હાર્દ છે.

પરંતુ સમાજ એ પણ જાણે છે કે, આવું બધી વખત અને કે બની શકે નહીં. એક જ માણસના નન્નૈયાની કેટલી બધી કિંમત થઈ જાય? અને એવી

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

કિંમત કે ભાવ આંકનારા સમાજમાં ન નીકળે, એમ કહી શકાય? મતલબ કે, સર્વસંમતિ ન જ બની શકે અને સમાજનું કામ તો ચાલુ રહેવું જોઈએ અને તે માટે નિર્ણય લેવો ઘટે, ત્યારે શું કરવું? તેમાંથી બહુમતીની યુક્તિ સૂઝી છે. એ ખરું કે, તેમાં એ પક્ષ વચ્ચે રસાકસીની લાગણીની લડાઈનો ડર રહે છે. પરંતુ કાચી અને અનઘડ લોકશાહીમાં તે જોવા મળે છે. લોકોએ આની પણ તાલીમ લેતાં લેતાં તે વિષે સંયમ, મર્યાદા, અને વિવેકપૂત આચાર શીખવાનો રહે છે. અને તેવું અંગ્રેજ લોકશાહીમાં જોવા મળે છે.

તથા બધા એકમત થાય તેથી તેમાં સત્ય સમાય જ છે, એમ પણ કેમ માની શકાય? એકને પણ સત્ય સૂઝે કે કોઈ ને નયે સૂઝે અને બધો જ સમુદાય કોઈ ભૂલભરેલે રસ્તે ચડે. આમ બનતું ઇતિહાસમાં મળે જ. દુનિયાના આકાર વિષે એકને બીજી બુદ્ધિ ન સૂઝી ત્યાં સુધી સૌ સરખા જ બોટા હતા ને? જ્ઞાન પેઠે અજ્ઞાન પણ સંસારના વહેવારમાં સભર ભરેલું છે. બરી વાત એ છે કે, લોકોના સમૂહે પણ, વ્યક્તિની પેઠે, સત્ય અને સારું શું છે તે સમુદાય તરીકે પણ જોવા તપાસવાની જરૂર છે. એક સમુદાય આ કામ કઈ રીતે કરી શકે? એક વ્યક્તિ પણ સત્યની શોધમાં અનેક કારણોથી મોહમાં પડે છે; તેની ઉપર પણ સમાજની રૂઢિની કે વ્યક્તિઓના વિચારોની અસર હોય જ છે; અને તેમનું તોલન કરીને તે અમુક ઠરાવ પર પહોંચે છે. તેમ જ સમુદાય પણ કરી શકે. લોકશાહી કાર્યપદ્ધતિનો વિચાર તેને માટે જગતમાં જન્મ્યો છે. એ પણ સામાજિક સત્ય પર પહોંચવા માટે જ છે. આ રીતે લોકશાહી પદ્ધતિ સત્ય-પરાયણ વસ્તુ છે; કજિયાબોરી એ નથી. દેખાતી કજિયાબોરી વિચાર-સંઘર્ષ હોય છે. અને આચાર પર પહોંચ્યા વગર વિચાર શા કામનો? એટલે તે સંઘર્ષમાંથી કશાક કાર્યાન્ત પર પહોંચવું જોઈએ; તેમ કરીને પણ કાંઈ કાર્યાન્ત આખરી કે છેવટના સત્ય તરીકે નથી મનાતો; તે પણ એક પ્રયોગ જ છે. તેનો અનુભવ થતાં જો ભૂલ દેખાય તો પ્રયોગસિદ્ધ સુધારો પણ લોકશાહી કરી શકે છે. આમ લોકશાહી કાર્યપદ્ધતિ પણ સત્યના પ્રયોગ દ્વારા આગળ જવાની નેમ રાખનારો સિદ્ધાન્ત છે. તેનો તે ઢબે ઉપયોગ કરતાં આવડવું–શીખવું જોઈએ છે. તેથી જ તેની શરતો રૂપે જરૂરી એવી વિચાર-વાણી-સંગઠન-વ્યવ ની સ્વતંત્રતા હોવી જોઈએ; અને લોકોમાં પોતાના સમાજહિતના કલ્યાણની એકનિષ્ઠા હોવી ઘટે. આ બધું જેટલા પ્રમાણમાં ખૂટે કે તૂટે, અથવા એથી ઊલટા ભાવો તેમાં વિક્ષેપ કરે, તેટલા પ્રમાણમાં એ પદ્ધતિ કામ ઓછું દે, એ ખરું. પરંતુ તેનો દોષ મૂળે એ પદ્ધતિનો નથી; માનવમાં રહેલી દૈવી ને આસુરી એ બે સાવ નોખી સંપદનો જ એ દોષ છે. આ બે સંપદમાંથી દૈવી સંપદનો આશરો લઈને ચાલવું, એ લોકશાહીની નેમ છે. તો એ કૃતકૃત્ય થાય. તેને માટે સતત મથતા રહેવાનું હોય છે. એવી પ્રગતિશીલ સક્રિયતા એનું હાર્દ છે. એથી બીજી રીતે વર્તવામાં સમાજે કોઈ ને કોઈ પ્રકારની અધિકારશાહી પર જવાનું થાય છે, જે વસ્તુ સારી નથી. આવી લોકશાહી સ્થાપવામાં વિકેન્દ્રિતતા અને નાનો મુલાયમ પ્રદેશ ઘટક હોય, એ સારું છે. છતાં છેવટે ઘાતક કેન્દ્રિતતા સામે લોકશાહીનું પ્રબળતમ શસ્ત્ર સત્યાગ્રહ અને અસહકાર તો નાનામાં નાના સમૂહ કે વ્યક્તિ પાસે રહેલાં છે. એ શસ્ત્ર જો સાબૂત કરી શકાય તો તેનાથી લોકશાહીની શક્તિ સોળે કળાએ પ્રગટે છે.

૧૮–૮–'૫૩ ૨૦

કાશ્મીરમાં દગાબાજી

છ વરસ ઉપર પાકિસ્તાન જુદું થયું કે તરત તેણે કાશ્મીર પર ચડાઈ કરી; જોકે દેખાવ એવો કર્યો કે, સરહદ પ્રાંતના આફ્રિદીઓએ હલ્લો કર્યો. પણ એ જૂઠ પાકા પુરાવા સાથે પકડાઈ ગયું. એટલે હિંદે 'યુનો' સંસ્થાને એની ફરિયાદ કરી. પણ તેણે આજ સુધી એ વિષે આંખ આડા કાન કર્યા કર્યા છે.

છતાં શરમને ખાતર જુદી જુદી તપાસો અને કમિશનો મોકલવાનો ઢીલનો ધંધો કાઢી, ઉપરના મુદ્દાના સવાલને ઢાંકવા, આડો ઉતારી દેવા, કે આખો પાછો કરી દેવા એ સંસ્થાએ ખૂબ ધન, અક્કલ અને હોશિયારી તથા સમય ખર્ચ કર્યાં છે.

હિંદે એક જ વાત કરી — કાશ્મીરની પ્રજાને જેમ ઇચ્છે તેમ કરવાની છૂટ રહેવી જોઈએ. પરંતુ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

કાશ્મીર આજે હિંદમાં પોતાની ઇચ્છાએ ભળ્યું છે; તેથી હકીકતે અને કાનૂનથી તે હિંદનું છે; તેથી તેની ભૂમિ પરથી પરદેશનું પાકિસ્તાની લશ્કર પહેલું ને તરત હઠવું જોઈએ; તથા આઝાદ કાશ્મીરનું કહેવાતું લશ્કર મટવું જોઈએ; તે પછી અને તો જ કાશ્મીરની પ્રજા શાંતિથી પોતાનો આત્મ-નિર્ણય કરી શકે છે.

આ મુખ્ય વાતમાંથી હિંદને ચળાવી ન શકાયું ને 'યુનો'ના અમેરિકન તથા અંગ્રેજ મુત્સદ્દીઓ પાછા પડ્યા, થાકયા. સત્યના આ વિજય માટે ઈશ્વરની દુવા માનવી જોઈએ.

આ ઉઘાડી ચાલતી વાતની પાછળ બાનગી બાજીઓ ચાલ્યા જ કરતી હતી, એમ હવે કહી શકાય. લોકોમાં એવી વાતો આવ્યા કરતી. છેવટે જવાહરલાલજી લંડન ગયા ત્યારે તો એવી પાકી લાગતી વાત આવી કે, કાશ્મીરના ભાગલા પડશે—એક હિંદને જશે, એક પાકિસ્તાનને, અને એક સ્વતંત્ર દેશ બનશે.

શેખ અબદુલ્લા શરૂમાં એક વાર બોલી ગયેલા, પછી કેટલોક વખત ગયા બાદ હમણાં થોડા માસથી વચ્ચે વચ્ચે એવું બોલતા, કે જેમાંથી સ્વતંત્ર કાશ્મીરનાં સ્વપ્નાં તે સેવે છે, એમ જણાતું. આમ તેમના બોલવામાં એકનીતિનો દાળો ન લાગવાથી, હિંદમાં અનેક લોકોને તેમના વલણ વિષે શંકા રહેતી કે, કોણ જાણે કચારે આ માણસ શું કરી બેસશે તે કહેવાય નહીં. આ બધાથી છંછેડાઈને કે ગભરાઈને જમ્મુના લોકોએ તો હિંદનાં હિંદુવાદી બળો સાથે મળીને, આ ભીતિ સામે સત્યાગ્રહ બેલવા સુધીનું બીજું ઝડપેલું.

નાનકડું કાશ્મીર આજની બાઉં બાઉં કરતી દુનિયામાં સ્વતંત્ર શી રીતે રહી શકે? સિવાય કે તેનાં પડોશ રાજ્યો સલામતીની તેને તેવી બાતરી આપે અથવા છૂપી મદદની કોઈ દેશ જોડે તેની સંતલસ હોય.

અને તેણે છૂટા રહેવાની જરૂર શી? તેને અધિકાર શો? તેનું ગજું શું? તેણે પાકિસ્તાનમાં જવું કે હિંદમાં, એ જ પ્રશ્ન હતો. તે કચારેય કોઈ સ્વતંત્ર રાજ્ય નહોતું. પરંતુ કોણ જાણે શાથી, શેખ અબદુલ્લા પોતાના સ્વતંત્ર રાજ્યના નાદે ચડેલા, તે હવે ઉઘાડું પડ્યું છે. હિંદ ઉપર પ્રભુની કૃપા છે કે, વેળાસર આ બહાર આવ્યું અને શેખ અબદુલ્લાએ જેવું કર્યું તેવું ભર્યું. આજે તે કાશ્મીરના મુખ્ય પ્રધાન નથી, પણ તેના નજરકેદી છે અને તેમની પર જાત જાતના ગંભીર અને બતરનાક આરોપો મુકાયા છે. તેમની જગ્યાએ નાયબ વડા પ્રધાન બક્ષી આવ્યા છે.

આ બધા પ્રકરણમાં પરદેશી દોરીસંચાર અને સળીસંચા હતા, એમ બહાર આવતી વાતો જોતાં લાગે છે. કોના, તે બબર નથી પડતી. પરંતુ એ વાત 'યુનો'એ વિચારવા જેવી છે. જ્યાં તે સંસ્થા શાંતિ માટે કામ કરતી હોય, ત્યાં આ મેલી રમતો કોણ રમે છે તે એણે પણ જોવું જોઈએ. તેના જ કેટલાક માણસો તથા બીજા પણ કેટલાક ગોરાઓ કાશ્મીરમાં શંકાભરી રીતે વર્તતા પકડાયા છે. કોરિયામાં લાલ ચીને આક્રમણ કર્યું કહીને 'યુનો'ને નામે તરત કૂદી પડનારા અમેરિકનો કાશ્મીરમાં એ ન્યાયે ન ચાલ્યા અને બીજી વાતો કરવા લાગ્યા, એ કેવું કહેવાય? પાકિસ્તાનને 'યુનો'એ એમેય ન કહ્યું કે, તારો વાંક છે. બલ્કે, તેને પંપાળવાની પેરવી જ જાણે કર્યે રાખી.

મ૦

પાકિસ્તાન પર અસર

શેખ અબદુલ્લાના પતનથી પાકિસ્તાનમાં જુદો જ રંગ જામ્યો દેખાય છે. એને જાણે એમ લાગ્યું કે, અમારા લાભમાં કાંઈક ઊતરત એવો માણસ ગયો અને હવે હિંદ કોણ જાણે શું કરશે! એટલે ત્યાંની સરકાર કાશ્મીરના લોકમત ઉપર અજબ ભાર દઈને વાતો કરે છે. જાણે કે, હિંદને એ નીતિ નવી પોતે શીખવવા કે પકડાવવા ના માગતી હોય! હિંદે તો પહેલેથી એ વાત કરેલી છે.

તો પછી પાકિસ્તાન અત્યારે તેને શું કામ યાદ કરાવે છે? એને કદાચ એમ બીક હોય કે, કાશ્મીરની લોકસભા જ આ પ્રશ્ન પતવી દે અને લોકોને પૂછે નહીં તો? એવી બીકને કારણ નથી. છતાં તેને માટે કારણ હોય તો તે પાકિસ્તાન પોતે આપે છે. તે કાશ્મીરની ભૂમિ બાલી કરીને જાય નહીં, અને જે ઉપદ્રવાત તેણે મચાવેલો તેને શમાવે નહીં, તો લોકમત કેવી રીતે લેવાય? પોતે કાશ્મીરમાં લશ્કર સાથે પોતાનો કબજો રાખે અને યા તો પ્રજામત લેવાય અથવા

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

પ્રજામત લીધા વગર કાંઈક ભાગલા પાડી આપો તો વાંધો નથી, એવી હજનો કાંઈક ઉકેલ તે ચાહે છે કે શું ? એમ હિંદ ના કરી શકે, એ સાફ છે. પ્રજામત જાણીને જે કાંઈ કરવું તે કરવું, એમ નિર્લોભ બનીને બંને પક્ષે સ્વીકારીને ચાલવું ઘટે છે.

અને જો પાકિસ્તાની લશ્કર કાશ્મીરમાંથી જાય નહીં, અને એ રીતે પ્રજામત લેવામાં વાંકું પડ્યે રાખે, તો કાશ્મીરની પ્રજા અને તેની કાયદેસર સરકાર હાથ જોડીને ઓછી જ બેસી રહે ? તેની લોકસભાએ પોતાનું રાજ્ય તો યોગ્ય લાગે તે રીતે સંભાળવું જોઈએ. અને તે કાશ્મીરની પ્રજાની પ્રતિનિધિ સભા છે, એ પણ ભૂલી ન શકાય.

વળી કાશ્મીરમાં લોકમત લેવાનું કામ 'યુનો'નું છે; તેણે તે માથે લીધું છે. એટલે તેની પણ એમાં કસોટી છે. તે પાકિસ્તાન પાસે કાશ્મીરની ભૂમિ ખાલી કરાવશે ? તે વગર તે લોકમત ન લઈ શકે. તેની જો દાનત સાફ હોય તો તેણે પોતે થઈને આ બાબતમાં તીવ્રતા બતાવવી જોઈએ. આશા રાખીએ કે, શેખ અબદુલ્લાનો પરપોટો ફૂટ્યા પછી 'યુનો'ના મુત્સદ્દીઓ કાંઈક વધુ જવાબદારીથી વર્તશે.

૧૭-૮-'૫૩ મ૦

કાશ્મીરનો લોકમત

ઉપરની લીટીઓ લખાયા બાદ, પાકિસ્તાન અને હિંદના વડા પ્રધાનોએ દિલ્હીમાં ૧૭ મીથી ૨૦ મી સુધી ચાર દિવસ મળીને શી વાતો કરી તેનો આછો-પાતળો અંદાજ જાણવા મળે છે. એની એક સત્તાવાર યાદી પણ બંને તરફથી ભેગી બહાર પડી છે. એ યાદીએ એવી એક બીક ઘણાને હતી તે તો ખોટી પાડી જ કે, બે પ્રધાનોની મુલાકાત નિષ્ફળ જશે. સારી વાત છે કે,—તેના ટકા ભલે ઓછાવત્તા આંકો —તે સફળ તો થઈ, કેમ કે કાશ્મીરમાં લોકમત લેવા અંગે આગળ વાત ચાલી શકી છે, એમ યાદી પરથી સાફ જોઈ શકાય છે.

તે અંગે જે મુખ્ય બાબતો નક્કી થઈ શકી છે તે એ યાદીમાં આમ છે —

૧. કાશ્મીરનું કોકડું ઉકેલવાને માટે તે રાજ્યની પ્રજાને આત્મનિર્ણય કરવા દેવો જોઈએ.

૨. તેની સારામાં સારી ફાવે એવી રીત એ છે કે, તે પ્રજાનો કુલ મત મેળવવો, કે જે રીત અખત્યાર કરવાનું થોડાં વરસથી નક્કી થયેલું છે.

૩. પરંતુ તે લેવા જતાં શરૂમાં જ કેટલાક વાંધા પડેલા છે, તે સમજી લઈને દૂર કરવા જોઈએ. તેને માટે બંને પક્ષના લશ્કરી તથા બીજા તટસ્થ લોકોની સલાહકાર સમિતિઓ નિમાશે, જે બે વડા પ્રધાનોને સલાહ આપશે.

૪. આ શરૂના વાંધા દૂર કરવા માટે હવે બે દેશો જ સીધા મથશે અને પોતે જ સમાધાન પર આવશે.

૫. એ સમાધાનનો અમલ થયા પછી આગળના પગલા તરીકે લોકમત લેવાની વ્યવસ્થા કરવી, કે જેથી કરીને તે કામને માટે કામચલાઉ સમયપત્રક જેવું નક્કી કરી શકાય.

૬. સમયપત્રક બાબતમાં એવું થયું છે કે, ૧૯૫૪ના એપ્રિલના અંત સુધીમાં જમ્મુ કાશ્મીરની સરકારે પોતાનો લોકમત વ્યવસ્થાપક નીમવો અને તેને લોક-મતનું બધું કામ સોંપી દેવું.

૭. આ નિમણૂક થાય તે પહેલાં, ઉપર જણાવેલા શરૂના વાંધા વિષે નક્કી કરી લઈ તે મુજબ અમલ કરવો; આ સારુ ઘટતી સલાહકાર સમિતિઓ નિમાય.

બે વડા પ્રધાનો વચ્ચે જે વાતો થઈ તેની યાદીમાંથી ઉપરના મુખ્ય મુદ્દા જાણવા મળે છે.

આમાંથી કાશ્મીરના પ્રશ્ન અંગે ચોખ્ખી પ્રગતિ થયેલી જોવા મળે છે. હવે સવાલ એ છે કે,

૧. જે શરૂના વાંધા છે તે કેમના અને કયા છે ? તે જાણીતા છે : આઝાદ કાશ્મીર કહેવાતી સત્તા કાશ્મીરનો અમુક કબજો લઈ બેઠી છે તેનું શું ? પાકિસ્તાને ચડાઈ કરી તેનું શું ? તે બધું સમું સરખું થશે ? અને હિંદના કાશ્મીર રાજ્યની સત્તા આખા પ્રદેશ ઉપર બરોબર ચાલુ કરીને પછી લોકમત લેવાશે ?

૨. લોકમત શા સવાલ ઉપર લેવાશે ? તેની સ્પષ્ટ વ્યાખ્યા શી છે ?

૩. કાશ્મીરનો અમુક ભાગ જો હિંદ કે પાકિ-સ્તાન જોડે જવા માગે, પણ આખા રાજ્યનો એકંદર લોકમત તેની સામે નીવડ્યો હોય તો શું ? તે તે ભાગને માટે શું કરશે ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

૪. લોકમત વ્યવસ્થાપક કોણ હશે? યુનો કહે તેને કે એ દેશો મળીને જેને નક્કી કરે તેને કાશ્મીર રાજ્ય નીમે? મતલબ કે, નીમવાના આ કામમાં યુનોને હવે પણ ઊભા રહેવા દેવામાં આવશે?

જેમ આટલે સુધી સફળતા મળી છે, તેવી આગળ મળે, એ જોવાનું કામ બંને દેશની પ્રજાઓનું છે. તે વિષે બેઉ દેશોનો પ્રજામત પાકો થવો જોઈએ. તે વિષે એક ડર છે તે પાકિસ્તાનમાં જે જેહાદ-પક્ષ છે તેનો. આ પક્ષમાં ત્યાંની સરકારના કેટલાક પ્રધાનો પણ હોય એમ જણાય છે. આ પક્ષ એમ માને છે કે, આખું કાશ્મીર પાકિસ્તાનને જ મળે ને તેને માટે જેહાદ કરવા તૈયાર રહેવું. આવા કેવળ કોમવાદી પક્ષને સાવ મળતો નહીં, છતાં તેના કાંઈક ધોરણવાળો હિંદુ પક્ષ આપણે ત્યાં પણ નથી એમ ન કહી શકાય. જોકે, તે પક્ષે પણ વડા પ્રધાનોની યાદીને તો અમુક આવકાર આપ્યો છે. પરંતુ તેણે હવે પછીના મુદ્દાઓ માટે પણ શાંતિ અને સુલેહના ભાવથી ઉકેલ લાવવા તત્પર બનવું જોઈએ, — આખા દેશે તેમ બનવાનું છે. પાકિસ્તાનમાં થયેલી તાજી રાજદ્વારી ક્રાંતિ બાદ તેવો ભાવ ત્યાં જમાવવામાં નવા વડા પ્રધાન શ્રી મહંમદઅલીને વિજય મળે એવી આશા રાખીએ.

૨૪-૮-'૫૩ મ૦

કોરિયામાં હિંદી સૈન્ય

કોરિયા અને કાશ્મીરના પ્રશ્નમાં પહેલેથી અમુક જાતનું સરખાપણું ચાલતું આવ્યું છે. બંને દેશોમાં બે ભાગ પડ્યા તે બંને તરફના લોકોને લડવાનું થયું. બંનેમાં 'યુનો'ને વચ્ચે પડવાનું પણ થયું, અને સોકટા-બાજીમાં જેમ ખરડિયું થાય તેમ રમતનો પાર આવતો નથી. છતાં કાંઈક કાંઈક, ગોકળગાયની ગતિએ પણ, આગળ ચાલતું લાગે છે.

કાશ્મીર પેઠે કોરિયામાં હવે તહકૂબી થઈ છે અને તેની એક શરત મુજબ હિંદ કોરિયામાં સેના મોકલે એમ ઠર્યું છે, અને તે મુજબ આપણી સેના મદ્રાસથી આજકાલમાં રવાના થાય છે. કાશ્મીરમાં પણ આપણે સેના મોકલી હતી; તે શાંતિ અને સુલેહ માટે હતી, પણ તેને સારુ એને લડવાનું હતું એટલું ખરું. કોરિયામાં સૈન્ય મોકલીએ છીએ તે લડવાને નહીં, પણ ખરેખર શાંતિનું કામ કરવાને. આપણી સેનાને એ કામ સોંપ્યું છે કે, તે બંને પક્ષોએ પકડેલા યુદ્ધકેદીઓનો કબજો લઈ તેમને પોતપોતાના દેશમાં મોકલવા બંદોબસ્ત કરે. આ કામથી હિંદની આબરૂ દુનિયાના દરબારમાં વધી છે ને હજી વધશે. શ્રી રાજાજીએ કહ્યું તે સાચું છે કે, ગાંધીજી જો આજે હોત તો આપણી સેના આવા કામમાં આવે છે તે જોઈને રાજી થાત. જેમ એમણે કાશ્મીરમાં ઇન્સાફ અને અમન સ્થાપવા ગયેલી ફોજના ધર્મયુદ્ધને આશીર્વાદ આપેલા, તેથીય વધારે આ કોરિયા જતી આપણી ફોજને તે આપત.

૧૭-૮-'૫૩ મ૦

કોરિયા અને અમેરિકા

કોરિયામાં તહકૂબી થવાની સાથે અમેરિકાએ દક્ષિણ કોરિયાની સરકાર જોડે ઔચિત્યા લશ્કરી કરાર કરી પાડ્યા છે. આમ કરીને તેણે શું સાધવા તાકયું હશે? એક બાજુ ચીનના ચાંગ-કાઈ-શાઈને ફોર્મોસામાં મદદ આપી ઊભો રાખ્યો છે અને એમ લાલ ચીન જોડે ઝઘડો ઊભો રાખ્યો છે; લગભગ તેમ જ આ કાર્યથી ઉત્તર કોરિયા અને લાલ ચીન જોડે ન પતવવાની આ આડી વાત જ કહેવાય. આ પરથી એ સમજી જ લેવાનું કે, સામેથી ઉત્તર કોરિયાએ પણ લાલ ચીન જોડે જોઇતા કરાર કરી જ લીધા હશે એમાં ફેર નહીં.

કોરિયામાં જો 'યુનો' વચ્ચે પડ્યું હતું, તો આગળ શું કરવું શું નહીં, તેની મસલત કરવા તે સંસ્થાને પૂછ્યા પૂછ્યા વિના ચાલવું એ કેવું કહેવાય? જવાહરલાલજીએ કહ્યું કે, 'યુનો'ની મહાસમિતિને હવે બોલાવવી જોઈએ, તે સૂચના અમેરિકાના મુત્સદ્દીઓને ના ગમી, — કોણ જાણે તે શું કરી બેસે ને અમેરિકાને તે ના ફાવતું આવે તો? તેના કરતાં આપણે જ ફાવતું કરી બેસો, એ જ ઠીક. એમ જ યુદ્ધ ફાટી નીકળે છે. જો યુદ્ધ ખરેખર ના જોઈતું હોય તો આવું કોઈ ન કરે. પણ આજે અમેરિકાને યુદ્ધ નથી જ જોઈતું કે રશિયાને નથી જ જોઈતું, એમ નક્કી કહી શકાતું નથી. એ પ્રકારની શ્રદ્ધા હિંદ વિષે પ્રજાઓને પડે છે, એ આપણી મોટી કમાણી છે.

૧૭-૮-'૫૩ મ૦

ફરજિયાત લશ્કરી તાલીમ

હિંદમાં ફરજિયાત લશ્કરી તાલીમ દાખલ કરો, એવો ઠરાવ એક સભ્યે પાર્લમેન્ટમાં મૂકેલો. તેની ચર્ચા થઈ તેમાં સરકાર વતી એક વાત એમ કહેવામાં આવી કે, તેમ કરવા માટે ખર્ચને પહોંચી વળાય એમ નથી.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

એટલે શું એમાં ખર્ચનો જ સવાલ છે? કે તેમાં તાત્ત્વિક પણ પ્રશ્ન છે? લડાઈખોર યુરોપે ખોળી કાઢેલી આ માનવતાદ્રોહી જબરદસ્તી હિંદમાં પણ આવે એમ? ઈ. સ. ૧૯૪૦માં કૉંગ્રેસે વ્યક્તિગત સત્યાગ્રહ કરી આનો વિરોધ કરેલો. લશ્કરી તાલીમ જે ચાહે તેને મળે એ એક વાત; પણ જેને તેને જબરદસ્તીથી લઈ જઈ ને આપવામાં આવે એ બીજી વાત છે. એ તો સુધરેલો એક જુલમ જ છે. હિંદમાં એ સામે પ્રજાએ સાવધ રહેવાની જરૂર છે. શાંતિચાહક પ્રજા લશ્કરી તાલીમ ફરજિયાત કરે એનો અર્થ જ એ કે, તે શાંતિ ચાહતી નથી. કેમ કે જેવી તાલીમ તેવી વૃત્તિ ઘડાય જ. ફરજિયાત લશ્કરી તાલીમ લેનારાં અંતે ફરજિયાત લડાઈ કરી જ બેસે. એવી તાલીમનો હેતુ જ એ છે કે, લડવું છે ને તેને માટે તૈયાર રહો.

૧૭-૮-'૫૩ મ૦

અંગ્રેજી માધ્યમની શાળાઓમાં પ્રવેશ

"અંગ્રેજ" શાળાઓની ચર્ચા આ પત્રમાં બે માસથી આવે છે. આ વિષે સરકારે અદબોબડી નીતિ લીધી છે અને તેથી સરકારી નોકરો તે વિષે ઝાઝો આગ્રહ રાખતા નથી. આ શાળાઓમાં દાખલ કોણ થઈ શકે તે માટે જે નિયમો અત્યારે છે, તે વિષે મુંબઈની એક હાઈસ્કૂલના આચાર્ય લખે છે તે જોવા જેવું છે :—

"અંગ્રેજી માધ્યમની હાઈસ્કૂલોમાં પ્રવેશ માટેના નિયમો :

"(૧) જેમનાં માબાપની માતૃભાષા અંગ્રેજી હોય તે બાળકો ત્યાં દાખલ થઈ શકે.

"(૨) જેમના વાલીઓને ભારતનાં અન્ય રાજ્યોમાં વેપાર કે નોકરી માટે જવાનો યોગ હોય તે દાખલ થઈ શકે.

"(૩) રહેઠાણની નજીકમાં (માઈલની અંદર) વિદ્યાર્થીની માતૃભાષાવાળી શાળા ન હોય તો તે વિદ્યાર્થી પેલી (Eng. Teaching) શાળામાં દાખલ થઈ શકે. (તે શાળા માઈલ ત્રિજ્યાથી દૂર હોય તો? મ૦)

"મારો વિરોધ નીચેનાં કારણો અંગે છે :—

"(૧) 'અંગ્રેજી-ટીચિંગ' શાળાઓ ભારતની બહાર રજિસ્ટર્ડ થયેલ સોસાયટીઓ ચલાવે છે;

"(૨) ભારતમાં આંતર-પ્રદેશીય માધ્યમ અંગ્રેજી નથી અને ન રહેવું જોઈએ. રાષ્ટ્રભાષાનો હેતુ શો? નોકરી કે વેપારનો યોગ એટલે શું?

"(૩) ખ્રિસ્તી વિદ્યાર્થીઓની માતૃભાષા પણ અંગ્રેજી નથી.

"(૪) ધારાસભ્યો અથવા પ્રધાનો કોઈ પણ અંગ્રેજી માધ્યમવાળી શાળાઓમાં જાતે જતા નથી અને જુએ કે વિદ્યાર્થીઓની માતૃભાષા કઈ છે.

"(૪) આ શાળાઓ Exclusiveness—અલગતાની ભાવનાને પોષે છે."

સ્વાભાવિક નિયમ એક જ હોઈ શકે કે, જેની માતૃભાષા અંગ્રેજી હોય તેને માટે આ જાતની શાળાઓ હોઈ શકે. બાકી બીજા બધા હિંદીઓ માટે હિંદની દેશી ભાષાઓની જ શાળા સંભવે. આ કુદરતી નિયમનો ભંગ કરીને જે ભળતી વાતો કરાય છે તેમાં છૂપું કારણ અંગ્રેજીનો હજી સંતાયેલો વળગાડ જ છે, બીજું કાંઈ નહીં, એમાં કોઈને શંકા છે?

૧૭-૮-'૫૩ મ૦

બેકારીનિવારણ માટે મૂડીસંગ્રહ!

ભારત સરકારે કરવેરાની તપાસ માટે એક કમિશન નીમ્યું છે, તેની વિચારણા માટે એક એવી રજૂઆત કરવામાં આવી છે કે —

'ભારતમાં પૈસાદારો ઉપર કરવેરાનું ભારણ ઘણું છે તે ઓછું કરો. તેમ કરવાથી તેઓ વધારે મૂડી એકઠી કરી શકશે અને તે દ્વારા નવા ધંધા ઊભા કરીને દેશમાં બેકારી ઓછી કરી શકશે.'

આમાં મોટી મૂડી એકઠી કરીને યંત્રોદ્યોગ વધારીને બેકારી ઓછી કરવાની વાત છે. યંત્રનો તો સ્વભાવ છે કે, ઘણા માણસોનું કામ થોડા માણસોથી કરવું. એ સ્થિતિમાં મોટી કિંમતનાં યંત્રો વસાવવાથી બેકારી કેમ ઘટે? ધારો કે તેલ ઘાણીથી પીલવાને બદલે ઘણી મૂડી ઊભી કરીને તેલની મિલ કાઢવામાં આવે, તો તેથી બેકારી શી રીતે ઓછી થાય? ખરી રીતે પરદેશથી તૈયાર આવતી વસ્તુઓ બંધ કરીને દેશમાં એ બનાવવાથી સ્વદેશી ઉદ્યોગ વધે; અને તે ઉદ્યોગ ઘરગથ્થુ ચાલે અગર કારખાનાંમાં બનતી વસ્તુઓ ઘરગથ્થુ બનાવવામાં આવે, તો ઘણાં માણસોને કામ મળે. તેમાં કામ માટે જે થોડી મૂડી જોઈએ તે લોકો પોતાની મેળે ઊભી કરી શકે છે અને જરૂર પડે તો મહારાષ્ટ્રની માફક પૈસાફંડ કરીને પણ ઊભી કરી શકાય. એટલે થોડાઓને બચત કરવા ઉત્તેજન આપવું તે કરતાં ઘણા લોકો બચત કરીને થોડું આપે એમ કરવું જોઈએ.

કેટલાક લોકો દાનનો પ્રવાહ ચાલુ રાખવા માટે પણ આવી જ દલીલ કરે છે. તેઓ કહે છે : 'દેશમાં લાખોપતિ નહીં હોય તો મોટી સખાવતો કોણ કરશે?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

પણ વિચારવાનું એ છે કે, ઘણાંને ભૂખે મારીને ધન એકઠું કરવું અને પછી દાન કરવું તે કરતાં પોતાના હાથ નીચેનાં બધાં સુખેથી રહે અને તેઓ બચત કરીને થોડું થોડું આપે એમ કરવું ઇષ્ટ નથી?

વળી જે લોકો ધન એકઠું કરે છે તે બધા દાન કરવા કરતા નથી; અને તેઓ જે ધંધા કરે છે તે નફાની દૃષ્ટિથી જ કરતા હોવાથી ઘણા નિરુપયોગી હોય છે. એટલે સખાવતો માટે કે બેકારીનિવારણ માટે પૈસાદારોને કરવેરામાં રાહત આપવાની દલીલ વજૂદ વગરની છે. ખરી રીતે લોકોને બહોળા પ્રમાણમાં કામ મળે એ દૃષ્ટિથી જ વિચાર કરવો જોઈએ. લાખોની મૂડીથી ઊભા કરેલા થોડા મોટા ઉદ્યોગો તે નહીં કરી શકે. તેનાથી કેટલાક માણસોને વધુ રોજી મળશે, પણ લાખોની બેકારી ઓછી નહીં થાય.

વિ૦

દેશની મહાનતા શામાં રહેલી છે?

નવેમ્બર ૩, ૧૯૫૨, ના રોજ, અમેરિકાના પ્રમુખપદની ચૂંટણીની આગલી રાતે જનરલ આઇઝનહૉવરે એક ભાવ વ્યક્ત કર્યો હતો, તે તા. ૧૭–૬–૧૯૫૩ના 'ન્યૂ યૉર્ક ટાઇમ્સ'માંથી ભાઈ ગોપાળદાસે વાચકોને કહેવા જેવો માનીને મને મોકલ્યો છે, તે નીચે ઉતારું છું:

"અમેરિકા દેશની મહાનતા અને પ્રતિભાનાં દર્શન કરવા મેં તેનાં વિશાળ બંદરો અને તેની મોટી નદીઓ તરફ દૃષ્ટિ કરી; પણ તે ત્યાં ન હતી... તેનાં ફળદ્રુપ ખેતરો અને તેમના અમર્યાદ પાક તરફ દૃષ્ટિ કરી; પણ તે ત્યાં ન હતી...તેની કીમતી ખાણો અને તેના વિશ્વવ્યાપી વ્યાપાર તરફ દૃષ્ટિ કરી, પણ તે ત્યાં ન હતી . . . તેની લોકશાહી કૉંગ્રેસ અને તેના અન્નેડ બંધારણ તરફ દૃષ્ટિ કરી; પણ તે ત્યાં ન હતી. હું જ્યાં સુધી અમેરિકાનાં દેવળોમાં ન ગયો અને તેનાં વ્યાસપીઠોને ધર્મભાવનાની ઘોષણાથી જળહળતાં મેં ન જોયાં, ત્યાં સુધી મને અમેરિકાની પ્રતિભા અને સામર્થ્યનું રહસ્ય સમજાયું નહીં. અમેરિકા મહાન છે, કારણ કે તે ધર્મવાન છે; અને અમેરિકા ધર્મવાન મટશે તેની સાથે તે મહાન પણ નહીં રહે."

આ વસ્તુ કેવળ અમેરિકા માટે જ નહીં, કોઈ પણ રાષ્ટ્ર અને માનવસમાજ માટે સાચી છે. છેવટે, ધર્મ જ માનવજાતની શોભા અને તેની વિશેષતા છે; તેથી તે વિનાની તેની મહત્તા નિરર્થક છે.

૧–૮–'૫૩ મ૦

ઉચ્ચ કેળવણીનું ખર્ચ અને ફી

ભાઈ ગોપાળદાસ લખી જણાવે છે કે:

"અમેરિકામાં સરકારી મદદ વિના સ્વતંત્રપણે ચાલતી ઉચ્ચ કેળવણીની લગભગ અર્ધા જેટલી સંસ્થાઓ નાણાંકીય મુશ્કેલીમાં સપડાઈ રહી છે. પહેલાં કદી અનુભવવામાં ન આવેલ નાણાકીય પ્રશ્નો કૉલેજો અને યુનિવર્સિટીઓને મૂંઝવી રહ્યા છે.

"જાહેર તેમ જ ખાનગી, બંને પ્રકારની કૉલેજોની ફીમાં કદી ન જોવામાં આવેલો એવો વધારો થયો હોવા છતાં, ફુગાવા હેઠળની કિંમતો અને વિદ્યાર્થીઓની ભરતીમાં થયેલ ઘટાડો એ બે કારણે ઉચ્ચ કેળવણી અત્યારે ભારે સંકડામણ અનુભવે છે.

"કમનસીબે વિદ્યાર્થીને જ વધારેમાં વધારે વેઠવું પડે છે. કૉલેજમાં જવાનું ખર્ચ — ઓરડી ભાડું અને ખાવાપીવાનું ખર્ચ મળીને — છેલ્લાં દશ વર્ષમાં ૭૦ ટકા વધી ગયું છે. આ ઊંચા દરોને કારણે લાયક વિદ્યાર્થીઓને કૉલેજોમાંથી નીકળી જવું પડે છે, એવો કેળવણીકારોને ડર છે.

"'ન્યૂ યૉર્ક ટાઇમ્સે' બધા પ્રકારની તથા બધાં રાજ્યોની કુલ ૮૧૦ અમેરિકન કૉલેજો અને યુનિવર્સિટીઓની કરાવેલી તપાસથી જણાય છે કે, તેમની આર્થિક સ્થિતિ ચિંતાજનક થઈ પડી છે અને વધુ બગડતી જવાનો સંભવ છે.

"વધતી જતી ખાધને પહોંચી વળવા માટે કૉલેજો હવે ફંડ ઊભાં કરવાના વિશાળ કાર્યક્રમો હાથ ધરીને લગભગ ૧૫ કરોડ ડૉલર જેટલી રકમ ઊભી કરવા પ્રયત્ન કરી રહી છે. કેટલાક દાખલાઓમાં એ પૈસા નવી પ્રયોગશાળાઓ તથા રહેવાના ઓરડાઓ બાંધવા માટે જોઈએ છે, તો કેટલાક દાખલાઓમાં એ પૈસા શિક્ષણખર્ચમાં આવતી ખાધ માટે અથવા અધ્યાપકવર્ગના પગારોમાં વધારો કરવા માટે જોઈએ. પરંતુ લોકો હવે પાછલાં વર્ષોની જેમ તત્પરતાથી આ અપીલોનો જવાબ વાળતા નથી. કૉલેજોના સંચાલકોમાંથી ૮૨ ટકા જેટલા ફરિયાદ કરે છે કે, એક વર્ષ પહેલાં અથવા દશ વર્ષ પહેલાં આ માટે પૈસા ભેગા કરવા એ જેટલું સહેલું હતું તેટલું હવે નથી. . . .

"વધેલી ફીઓનો પ્રશ્ન પણ કૉલેજના અધિકારીઓને મૂંઝવી રહ્યો છે. ૧૯૪૨–૪૩માં જાહેર કૉલેજોમાં સરેરાશ વાર્ષિક ફી ૯૧ ડૉલર હતી. ૧૯૫૨–૫૩માં તે ૧૨૮ ડૉલર થઈ અને ૧૯૫૩–૫૪માં તે ૧૩૪ ડૉલર થશે — અર્થાત્ ૧૧ વર્ષમાં ૪૬ ટકા વધારો.

"ખાનગી કૉલેજોમાં તો ફીનો વધારો તેથી પણ વધુ મોટો છે. ૧૯૪૨–૪૩માં ફી ૨૬૬ ડૉલર હતી,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

૧૯૫૨–૫૩માં તે ૪૪૬ ડૉલર થઈ અને ૧૯૫૩–૫૪માં તે ૪૬૨ ડૉલર થશે એવો અંદાજ છે — અર્થાત્ ૭૧ ટકા વધારો.

"પરંતુ આ સરેરાશ ઉપરથી સાચો ખ્યાલ આવતો નથી. ઘણી નાણીતી સંસ્થાઓ ૭૦૦થી ૯૦૦ ડૉલર જેટલી ફી લે છે. સ્ત્રીઓ માટેની નાણીતી કૉલેજોમાં સામાન્ય રીતે ૧૮૦૦ થી ૨૨૦૦ ડૉલર ફી લેવાય છે. (તેમાં રહેવા-ખાવાનું ખર્ચ આવી જાય છે.)

"ફીમાં વધારાનાં ચાર કારણો જણાવાય છે, કામકાજના ખર્ચમાં વધારો; પગારમાં વધારો; ભરતીમાં ઘટાડો; અને મકાનો, સાધનસામગ્રી આદિમાં સુધારો."

'ન્યૂ યૉર્ક ટાઇમ્સ'ના ૨૨–૬–'૫૩ના અંકમાંથી ઉપરની ખબર છે. આ વિષે ઇંગ્લન્ડમાં શી દશા છે તે કોઈ જાણકાર કહે તો સારું. આપણે ત્યાં પણ ઉપરના જ ઘાટ છે. એ પરથી એમ કયાસ કાઢી શકાય કે, જે પદ્ધતિ પર આજે ઉચ્ચ શિક્ષણનું સંયોજન કરાય છે તેમાંથી નીપજતી આ વસ્તુસ્થિતિ છે? ઉચ્ચ કેળવણી પરાવલંબી જ હોય? સરકાર પર જ તે નિર્ભર રહે? આ બાબતમાંય ગાંધીજીની સૂચના ધરમૂળથી નવો વિચાર સૂચવે છે કે, તે સ્વાવલંબી હોવી જોઈએ અને તેનું સંગઠન આજના કરતાં જુદી રીતે થવું જોઈએ. આ વિચાર હવે પછી વધુ વિગતે જોવા ઉપર રાખું છું.

૧૮–૮–'૫૩ મ૦

નવું વાચન

સ્વદેશી શા માટે?: લે૦ અને પ્ર૦ ઇન્દુલાલ યાજ્ઞિક; પ્રાપ્તિસ્થાન: ભારતી સાહિત્ય સંઘ, અમદાવાદ; કિં. રૂ. ૦–૪–૦; પૃ૦ ૩૬.

ખાદી, સ્વદેશીવ્રત વગેરેના પ્રચારની હવે સ્વરાજ્ય મળ્યા પછી જરૂર નથી એમ કેટલાક ભૂલથી માને છે અને આજે પરદેશી માલ મંગાવવામાં-ખરીદવામાં ઘણાને સંકોચ થતો નથી. પણ સ્વદેશી વ્રતના પાલનનું મહત્ત્વ આજે પણ જરાય ઓછું નથી તે પ્રજાને સમજાવવાની આજે જરૂર ઊભી થઈ છે. એટલે શ્રી ઇન્દુલાલ યાજ્ઞિકે આ પુસ્તિકા લખીને એ તરફ સરકારનું અને લોકોનું ધ્યાન ખેંચવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે તે યોગ્ય છે.

તેમણે આંકડા આપીને તેમાં બતાવ્યું છે કે, દેશમાં પરદેશી મૂડી અને માલનું પ્રમાણ કેટલું વધ્યું છે, બૅન્કો, વીમા કંપનીઓ, સ્ટીમરો વગેરેમાં હિન્દીઓનો હિસ્સો કેટલો ઓછો છે. આ રીતે મૂળ અભ્યાસી ઇન્દુભાઈ આમાં પણ દેખાય છે.

સાથે તેમાં પ્રચારનું તત્ત્વ પણ ભળ્યું છે. તે ન ભળ્યું હોત અને તટસ્થ ભાવે સ્વદેશીનું મહત્ત્વ સમજાવ્યું હોત, તો પુસ્તિકા વધારે ઉપયોગી થાત. 'આંધળાને દેખાય છે તે શોધવાને કૉંગ્રેસના મહામંત્રીને છ વરસ લાગ્યાં'; 'દિલ્હીના માંધાતાઓને કેમ કંઈ સાન નથી આવતી', આવાં વાક્યો પુસ્તકના તટસ્થ ભાવમાં ઊણપ લાવે છે.

વળી અમેરિકાને કાઢવાની વાત અને ચીન-રશિયા સાથે સંબંધ વધારવાની ભલામણ પણ સ્વદેશીવ્રતની સાથે બંધબેસતી નથી. આપણે તો પરદેશી બધા દેશો સામે આપણા ઉદ્યોગોને રક્ષણ આપવાનું છે. પરદેશીઓ સામે નહીં પણ દેશના કેન્દ્રિત ઉદ્યોગો સામે પણ. કેમ કે દેશી મૂડીદારોને હાથે કેન્દ્રિત ઉદ્યોગો વધારવાથી દેશના કરોડોની બેકારી ટળવાની નથી; એટલે સ્વદેશીની વાત કરતાં ગૃહોદ્યોગોની વાત કરવાની પણ જરૂર છે. તેનો કંઈ ઉલ્લેખ કે ચર્ચા આ પુસ્તકમાં જડતાં નથી. એટલે સ્વદેશીની ચર્ચા એ દૃષ્ટિએ અધૂરી છે. બાકી, સ્વદેશી આંદોલનો વખતે દેશી મૂડીદારોએ વખતોવખત કેવો દગો દીધો છે એ જાણીતી વાત છે. એટલે તેમના ઉપર આધાર રાખીને સ્વદેશીનો પ્રચાર થઈ શકે તેમ નથી. ગોરા અમલદારોને બદલે ભાવના અને જવાબદારી વિનાના સ્વાર્થી દેશી અમલદારો નીમવાથી જેમ લાભ થતો નથી, તેમ પરદેશીને બદલે સ્વાર્થસાધુ દેશી મૂડીદારોના હાથમાં ઉદ્યોગો આવે તેથી પણ સંગીન લાભ થવાનો નથી. એટલે સ્વદેશી કેવી જાતનું જોઈએ એની ચોખવટ જરૂરી છે. તેથી ગાંધીજી મિલોને બદલે ખાદીની જ હિમાયત કરતા. પ્રદર્શનોમાં પણ ખાદીની સાથે મિલનું કાપડ રાખવા નહોતા દેતા. આજે કેટલાક ગ્રામસેવકો દેશી કારખાનાના માલનો પણ બહિષ્કાર પોકારી રહ્યા છે અને તેલની, આટાની, છડવાની મિલો બંધ થવી જોઈએ એમ કહે છે. તો સ્વદેશીની વાત કરતી વખતે આ બાબતમાં પણ પ્રજાને દોરવણી આપવી જોઈએ. એ દૃષ્ટિએ સ્વદેશીની ચર્ચા આ પુસ્તિકામાં અધૂરી છે; અને તેમાં પ્રચારનો રંગ ભળ્યો છે એટલે તેની રજૂઆતમાં દોષ દાખલ થયેલ છે. બાકી સ્વદેશીની બાબતમાં આજે સરકારે અને લોકોએ ફરી કસો ઘૂંટવાની જરૂર છે. તે માટે પક્ષાપક્ષીમાં પડ્યા વગર દેશહિતની દૃષ્ટિએ ઘણા પ્રચારની જરૂર છે.

શ્રી ઇન્દુભાઈ અંગ્રેજી ભાષાની ગુલામી પણ ટાળવાનું કહે છે તે યોગ્ય છે. પણ સાથે આપણી પોતાની ભાષા વ્યાકરણશુદ્ધ અને જોડણીશુદ્ધ લખવાનો છાપવાનો આગ્રહ રાખવાની જરૂર છે. આ પુસ્તિકામાં તે બાબતનો આગ્રહ જણાતો નથી. વિ૦

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

અમારા કેટલાક શાળોપયોગી પુસ્તકો

૮૪૫૮૯

અચલાયતન	૧-૦-૦	બાપુની સેવામાં	૨-૦-૦
અપંગની પ્રતિભા	૧-૮-૦	બાપુની પ્રસાદી	૨-૦-૦
અમારાં બા	૧-૮-૦	બાપુ — મારી મા	૦-૮-૦
અર્થશાસ્ત્રની પરિભાષા	૦-૧૪-૦	બુદ્ધલીલા	૦-૧૨-૦
અહિંસાનો પહેલો પ્રયોગ	૧-૦-૦	બે ભુદાઈ ખિદમતગાર	૦-૧૨-૦
આત્મકથા	૨-૦-૦	બ્રહ્મદેશનો પ્રવાસ	૦-૧૦-૦
સંક્ષિપ્ત આત્મકથા	૧-૦-૦	ભાઈ અને વેરી	૦-૮-૦
આત્મરચના અથવા આશ્રમી કેળવણી	૪-૮-૦	મધપૂડો	૧-૪-૦
આરોગ્યની ચાવી	૦-૧૦-૦	મલેરિયા	૦-૭-૦
આહાર અને પોષણ – ૧	૦-૧૦-૦	મહાદેવભાઈની ડાયરી – ૧	૦-૪-૮
આહાર અને પોષણ – ૨	૦-૧૨-૦	મહાદેવભાઈની ડાયરી – ૨	૫-૮-૦
આંધળાનું ગાડું	૦-૪-૦	મહાદેવભાઈની ડાયરી – ૩	૫-૦-૦
ઉદુને પત્રો	૧-૦-૦	મહાદેવભાઈની ડાયરી – ૪	૩-૦-૦
ઉર્દૂ લિપિ શિક્ષિકા	૦-૧૦-૦	મહાદેવભાઈની ડાયરી – ૫	૭-૦-૦
ઊધઈનું જીવન	૧-૦-૦	માનવી ખંડિયેરો,	૨-૮-૦
ઓતરાતી દીવાલો	૦-૧૨-૦	મારી જીવનકથા — જવાહરલાલ નેહરુ	૬-૦-૦
કન્યાને પત્રો	૧-૦-૦	મારી જીવનકથા — રાજેન્દ્રપ્રસાદ	૮-૦-૦
કરંડિયો	૧-૪-૦	મારું ગામડું	૧-૪-૦
કાવ્યપરિચય – ૧, ૨ દરેકની	૧-૮-૦	યંત્રની મર્યાદા	૧-૦-૦
કુંવરબાઈનું મામેરું	૧-૦-૦	રચનાત્મક કાર્યક્રમ — કેટલીક સૂચનાઓ	૦-૩-૦
કેળવણીવિકાસ	૧-૪-૦	રચનાત્મક કાર્યક્રમ — તેનું રહસ્ય અને સ્થાન	૦-૫-૦
કેળવણીવિવેક	૧-૪-૦	રાષ્ટ્રભાષાનો સવાલ	૦-૭-૦
કૌશિકાખ્યાન	૦-૩-૦	રાષ્ટ્રીય મહાસભા અને વિદ્યાર્થી પ્રવૃત્તિ	૦-૬-૦
ખાદીવિદ્યાપ્રવેશિકા	૧-૪-૦	વિદાય વેળાએ	૧-૦-૦
ખિસ્સાકોશ	૧-૦-૦	વિદ્યાર્થી ગ્રીષ્મપ્રવૃત્તિ	૦-૬-૦
ખેડૂતનો શિકારી	૦-૬-૦	વિરાજવહુ	૧-૪-૦
ગાંધીજી	૦-૧૦-૦	વિશ્વશાંતિ	૦-૪-૦
ગાંધીજીની સાધના	૨-૪-૦	વૈજ્ઞાનિક શબ્દસંગ્રહ	૬-૦-૦
ગીતાધ્વનિ	૦-૬-૦	શિક્ષણ અને સંસ્કૃતિ	૧-૪-૦
ગ્રામસેવાના દસ કાર્યક્રમો	૧-૦-૦	શ્રાદ્ધના તેર દિવસ	૦-૭-૦
જમનાલાલજી	૦-૬-૦	શ્રી નેત્રમણિભાઈને	૦-૧૪-૦
જીવતા તહેવારો	૨-૦-૦	સંકલિતા ભગવદ્ગીતા	૧-૪-૦
જીવન દ્વારા શિક્ષણ	૧-૮-૦	સંક્ષિપ્ત કરણઘેલો	૧-૦-૦
જીવનનું પરોઢ	૮-૦-૦	સંત ફ્રાન્સિસ	૦-૬-૦
જોડણીકોશ	૧૨-૦-૦	સુદામાચરિત	૦-૧૪-૦
ત્રણ વાર્તાઓ	૧-૪-૦	સુદામાના કેદારા	૦-૧-૬
દક્ષિણ આફ્રિકાના સત્યાગ્રહનો ઇતિહાસ	૩-૦-૦	સીતાહરણ	૧-૦-૦
પ્રહ્લાદ નાટક તથા સહનવીરનાં ગીતો	૦-૧૦-૦	સ્ત્રી-પુરુષ-મર્યાદા	૧-૮-૦
પ્રાકૃતિક ભૂગોળ	૦-૧૨-૦	સ્મરણયાત્રા	૨-૦-૦
પ્રાચીન સાહિત્ય	૧-૦-૦	હિમાલયનો પ્રવાસ	૧-૮-૦
પ્રેમપન્થ – ૧, ૨, ૩, ૪ દરેકની	૦-૪-૦	હિંદની અંગ્રેજ વેપારશાહી	૪-૦-૦
બહેનોને	૦-૬-૦		

નવજીવન કાર્યાલય, પોસ્ટ બૉક્સ નં. ૧૦૫, અમદાવાદ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ધર્મ અને નિયંત્રિત અર્થવ્યવસ્થા

આજના જમાનામાં, કે જ્યારે ખરચાળ જીવનધોરણ કાયમી બન્યાં છે અને વધી ગયેલી વસ્તીને કારણે ઘણા મુશ્કેલ પ્રશ્નો ખડા થયા છે, ત્યારે સમાજના સામાન્ય હિતને દરેક વ્યક્તિની પ્રવૃત્તિ ઉપર આગળપડતો હકદાવો હોવો જોઈએ તથા લોકોએ જાત પર કાબૂવાળા થઈને નિયંત્રણવાળી અર્થવ્યવસ્થા હેઠળ રહેવા તૈયાર થવું જોઈએ. આ જાતનાં નિયંત્રણથી વિસ્તૃત પ્રમાણમાં તથા ઊંડું એવું દુઃખ લોકોને લાગે છે. એ દુઃખ આમ કઠવાનું કારણ એ છે કે, વ્યક્તિમાં રહેલી સ્વતંત્ર રહેવાની સાહજિક ઇચ્છાથી તે વિરુદ્ધ જાય છે. તેથી કરીને, નિયંત્રણ પણ એવી રીતે યોજવું જોઈએ કે જેથી વૈયક્તિક સ્વાતંત્ર્ય અને પ્રેરણાને તથા તેમાંથી નીપજતા આનંદને તે છેક જ રૂંધી ન નાખે. નિયંત્રિત અર્થ-વ્યવસ્થાનું જે દુઃખ લાગે છે તેનું કારણ એ છે કે, એ નિયંત્રણ બહારથી આવ્યું હોય છે અને બહારની સત્તાએ લાદ્યું હોય છે. એ નિયંત્રિત અર્થવ્યવસ્થા જો યોગ્ય રીતે યોજવામાં આવે તથા તેને આધ્યાત્મિક પાયા ઉપર રચવામાં આવે, તો તે વૈયક્તિક સંતોષ અને વૈયક્તિક ઉત્સાહથી વિસંગત જ રહે એવું કાંઈ નથી. સ્વાર્થ માટેની નહીં પણ સર્વોદય માટેની પ્રવૃત્તિ કરવા માટે જે માનસિક સંયમો અને ટેવો વિકસવાં જરૂરી છે, તે આંતરિક શ્રદ્ધા અને દર્શનમાંથી નીપજવાં જોઈએ. સામુદાયિક પુરુષાર્થ પણ છેવટે તો વૈયક્તિક પુરુષાર્થોનો સરવાળો જ છે; અને વ્યક્તિઓ ઉમંગ સાથે કામ કરે નહીં તથા તેમાંથી તેમને આનંદ મળે નહીં, ત્યાં સુધી તેને અસ્તિત્વમાં લાવી શકાય નહીં. આનંદ તો વ્યક્તિગત જ હોઈ શકે; કારણ કે સમુદાયને પોતાને તો કશી લાગણીઓ હોતી નથી. તેથી કરીને આપણે વ્યક્તિને ફરજ પાડે એવો કોઈ હેતુ શોધી આપવો જોઈએ તથા પૂરો પાડવો જોઈએ; અને છતાં તે હેતુ ભયનિષ્ઠ નહીં પણ આનંદનિષ્ઠ હોવો જોઈએ. મારો એવો દાવો છે કે, અસરકારક અને ન્યાયી નિયંત્રણ માટે ધર્મ જ એક આવશ્યક અને યોગ્ય એવી શક્તિ છે. કોઈ આધ્યાત્મિક શ્રદ્ધા અને શક્તિ જ માણસોને કામ કરવા પ્રેરી શકે તથા સામુદાયિક કલ્યાણ માટે કામ કરવા-માંથી આનંદ પ્રાપ્ત કરવા શક્તિમાન બનાવી શકે. અને જીવન વિષેનો આ સિદ્ધાંત જ હિંદુ ધર્મવિચારનો સારભાગ છે, તથા ગીતાએ કેટલાય સમય પહેલાં તેને ઉપદેશ્યો છે.

[પટના: તા. ૧૧ મે, ૧૯૫૩ના રોજ શ્રી રાજગોપાલાચારીએ આપેલા ભાષણમાંથી]

મુદ્રક અને પ્રકાશક: જીવણજી ડાહ્યાભાઈ દેસાઈ, નવજીવન મુદ્રણાલય, અમદાવાદ-૯

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079468

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri